Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

कहानियों और कथा जगत की संपूर्ण पत्रिका

वर्ष : 28; अंक : 439; नवंबर, 88

The Times of India — One Hundred and Fifty Years

प्रकाशक :
रमेश चंद्र

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल

उपसंपादक :
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन

प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
सुनील चौहान

सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

आवरण पारदर्शी
भगवानदास रूपानी

आवरण एवं अंक सज्जा
हरिप्रकाश त्यागी

आत्मस्वीकृति विशेषांक : दो

आत्मस्वीकृति खंड

34 और खुदा खामोश है : अमृता प्रीतम

36 आतंक : जान ओ' हारा

41 खुद से फरार होकर कहां जायेंगे हम? : तालस्तोय, टैगोर, नेहरू, दिनकर

43 गांधीजी से पार पाना... : चार्ली चैप्लिन

44 असत्य रूपी विष : मो.क. गांधी

47 मृत्यु से साक्षात्कार : सोफिया लारां

49 उस हरकत पर मैं शर्मिंदा हूं : बलराज साहनी

51 हर दुर्व्यवहार के बाद... : रूसो

53 इसे जल्दी से गुड़ खिला दो : अमीर अली

55 मैं स्तालिन की मुलजिमाना नीतियों का गवाह रहा : ख्रुश्चेव

57 जीवनभर मैं जिनसे प्रभावित रहा : चर्चिल

59 गिरफ्त: बाला दुबे

लंबी कहानी

8 देहगाथा : रामेश्वर शुक्ल अंचल

अन्य कथा-रचनाएं

26 कुछ डायरियां : ज्योतींद्र हरिहरशंकर दवे

28 हड़ताल : मधुरिमा कोहली

31 अपराधी के अंतिम क्षण : आल्बेयर कामू

45 चार लघुकथाएं

धारावाही आयोजन

62 खेल : प्रेमचंद की दुर्लभ रचनाएं : दो

66 दास्ताने अलफ लैला...

68 रुपहली रातें : दास्तोयेव्स्की

71 डा. नामवर सिंह से उदयप्रकाश और सुधीश पचौरी की बातचीत

विशिष्ट आयोजन

23 रचनाकार का आत्मसंघर्ष : डा. लक्ष्मीनारायण लाल

39 रचना की जन्मभूमि : वीरेंद्र अस्थाना

स्थायी स्तंभ

25 कथा दर्शन

35 धारा के विरुद्ध

61 नयी पौद

65 कथा पहेली

75 कृतियां

79 हलचल

80 आपकी बात

कापीराइट © 1988. बैनेट, कोलमैन एंड कंपनी लि., विश्वभर में सर्वाधिकार सुरक्षित, बिना पूर्वानुमति के सामग्री का किसी भी रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण वर्जित.

संपादकीय, विज्ञापन, प्रसार एवं व्यवस्था :
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 271911

टाइम्स हाउस
7, बहादुरशाह जफर मार्ग,
नयी दिल्ली-110 002
दूरभाष : 3312277 (20 लाइनें)

अन्य कार्यालय

डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग
बंबई-400 0001

फ्रेजर रोड, पटना

अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड
जयपुर

139 आश्रम रोड
अहमदाबाद-1

13-1-2, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट
कलकत्ता-700062

''गंगा गृह'' तीसरी मंजिल
6-डी, नंगामवक्कम हाई रोड
मद्रास-600034

88, महात्मा गांधी रोड,
बंगलूर

407-1, तीरथभवन, क्वार्टर गेट,
पुणे-411 002

326, स्टेशन एप्रोच, सडबरी
वैंबले मिडिलसेक्स, लंदन यू.के.

88/364

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : 1915
प्रमुख : कहानी-संग्रह : 'तारे', 'ये वे बहुतेरे', 'कुंवर की दुलहिन'
संपर्क : दक्षिणी सिविल लाइंस, पचपेड़ी, जबलपुर, (म.प्र.)

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

देहगाथा

फिर सूखी घास अंकुरायेगी... फसल लहलहायेगी... किस लुभावनी माटी की कोरी अनलिखी, कुंई के फूलों-सी क्वारी गंध ने इतने दिन तक दुनिया से विरक्त बूढ़े को पुकारा है...?

लंबी कहानियों के सिलसिले की पहली कड़ी में आपने पढ़ी थी द्विजेंद्र नाथ मिश्र 'निर्गुण' की कहानी– 'सरस्वती'... इसी सिलसिले को आगे बढ़ा रही है वरिष्ठ कवि-कथाकार की यह कहानी–

बलई मिसिर त्रेसठ साल की उमर में विवाह करने की ठान ठाने हैं, यह समाचार पूरे गांव में फूस की आग की तरह फैल गया. नींद से जागे हुए की तरह प्रत्येक व्यक्ति जैसे अपने से ही पूछता– "क्या यह भी संभव है! इतने दिन का पूजा-पाठ, ज्ञान-ध्यान, नेम-व्रत क्या दिखावा ही था! फिर सूखी घास अंकुरायी, फसल लहलहायी! किस लुभावनी माटी की कोरी अनलिखी, कुंई के फूलों-सी क्वारी गंध ने इतने दिन तक दुनिया से विरक्त बूढ़े को पुकारा है? बलई मिसिर का यह नया मनसूबा सभी को किसी अबूझ पहेली से कम न लगता. ऐसा था तो भरी जवानी में चंदू की मां के मरने के बाद मौर बांध लेता. नाते-रिश्तेदारों ने तब उसे कितना नहीं समझाया. उनका यही कहना रहा– चंदू को पालपोसकर घरवाली सोहागवती स्वर्ग सिधारी है. विवाह अब किसलिए? धोयी-धायी मछली कहीं फिर कीच-कादों में गिरती है!

कहानी वहां से शुरू करनी होगी जहां से उसका बचपन, जवानी की रंगीन छायाओं का लहराता समूह बनता है. बलई मिसिर का अपना घर, द्वार पर पक्का कुआं और पचीस एकड़ उपजाऊ जमीन थी. दो जोड़ी बैल थे– घर की अपनी गाड़ी थी जो गांव के साधारण खेतिहरों के बीच बड़ी बात मानी जाती थी. कुलीनता के नील रक्त से भव्य उनका युवा रूप लोगों को भूला नहीं है. कुएं के बगल में उनके बाबा का बनवाया मंदिर आज भी साल में एक बार पुताई से सजीव हो उठता है. परिवार का ही व्यक्ति रोज तीन पीढ़ी पहले स्थापित शंकर की पूजा करता है– बिल्व-पत्र, पुष्प, नैवेद्य चढ़ाता है. आती-जाती कुल-वधुएं, गांव की बेटियां, प्रौढ़ाएं शीश नवाती हैं. बाबा के बाद उसके पिता, पिता के बाद स्वयं बलई मिसिर नियम से पूजा करते हैं– संध्या-दीप जलाते हैं. शिवरात्रि को विशेष आयोजन होता है. भांग बूटी छनती है– प्रसाद बंटता है, रतजगा होता है. बलई मिसिर

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का परिवार भले ही सूखता, सिकुड़ता, छोटा होता चला गया हो पर गांव में उनकी प्रतिष्ठा है. आपसी झगड़ों में जो निर्णय वे अपनी अधपढ़ी सहज बुद्धि और सद्भावी मानसिकता से दे देते हैं, वह प्रायः स्वीकार किया जाता है.

बलई मिसिर का लड़का चंदू इकलौता था. बहू का असमय देहांत पिता-पुत्र दोनों के लिए आघातकारी था. चंदू ने समीपवर्ती नगर के कालेज में इंटर तक शिक्षा पायी थी. स्वभाव से भावुक, कुछ-कुछ कवि-हृदय चंदू अपनी पत्नी को बेहद चाहता था. बलई मिश्र संध्या-पूजन के बाद व्यालू करके गांव की ओर चले जाते थे. जहां बैठते थे, वहीं गोष्ठी जमा लेते थे. पर चंदू शाम से 'किशोरी' के नवयौवन से

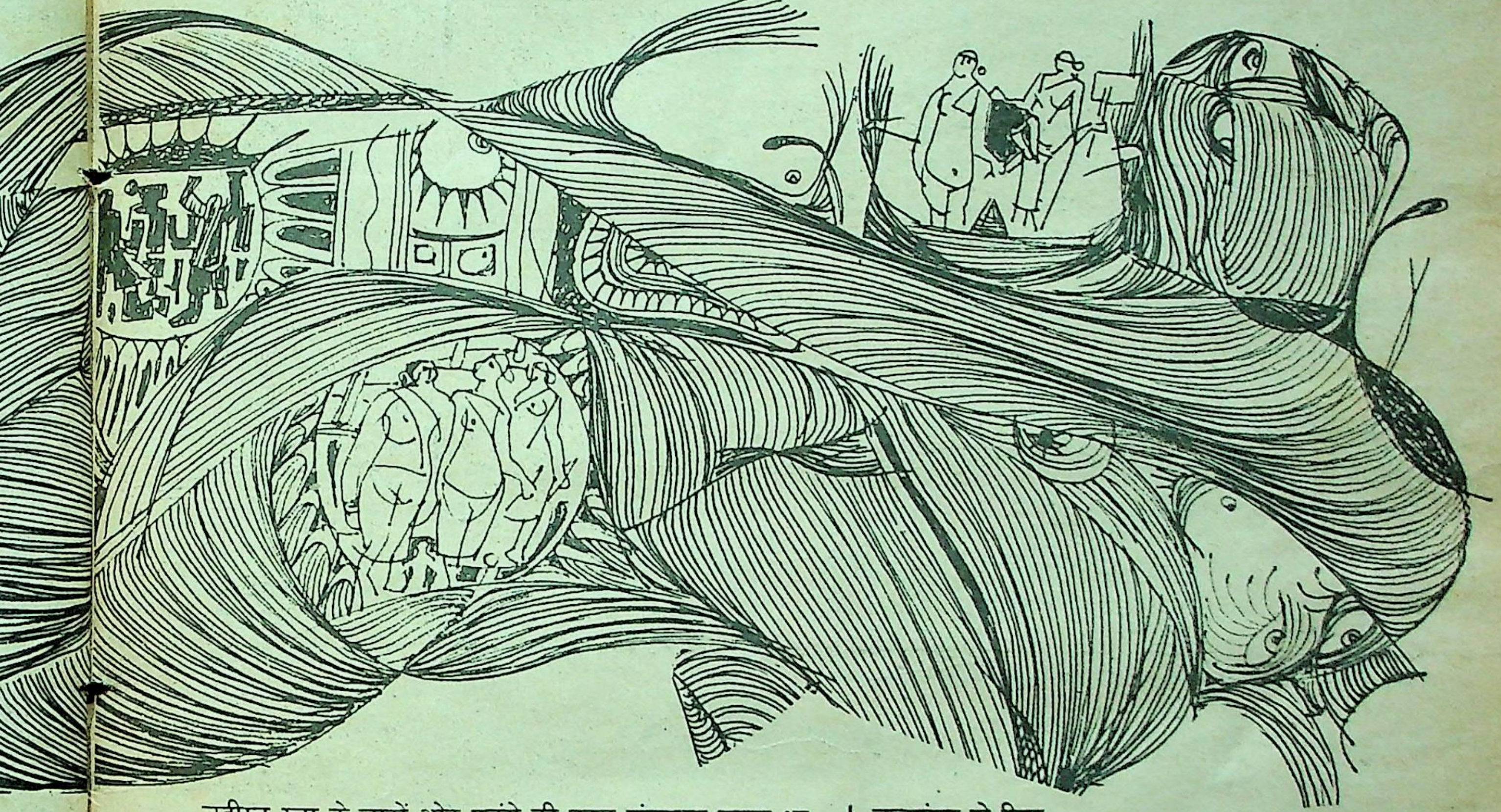

उदीप्त रूप के चारों ओर पतंगे की तरह मंडराता रहता था. किशोरी को मन ही मन शमा मानकर वह उसकी लौ से जैसे अघाता ही न था. पिता डेढ़ पहर रात बीते कब आकर ओसारे में लगे अपने बिस्तर पर लेट जाते, यह उनके नियमित चलते घुर्राटों से ही वह जान पाता था. किशोरी का अपने हाथ से वह श्रृंगार करता तो वह भीतर-भीतर न जाने किस भाव-लोक में पहुंच जाती— केलि-कुसुमों में गुंथी-रची रूप-प्रतिमा बन जाती. गांव भर में उसके सुख-सौभाग्य की चर्चा चलती. मुग्धाएं चंदू जैसा प्रणय-स्वप्न-विभोर पति पाने की कामना करतीं. बड़ी-बूढ़ी इस बेहयाई पर नाक-भौं सिकोड़तीं.

भगवान से किशोरी का वह सुख देखा न गया. न जाने कैसा प्राणघाती रोग था जो तेज बुखार की शक्ल में आया और पूस की अधेड़ सरदी उसके फेफड़ों में सन्निपात बनकर जमाता हुआ उसे इस लोक से उठा ले गया. सारे गांव में शोक की लहर दौड़ गयी. सोहागिनों ने रच-रचकर शव का सिंगार किया और एक धंसी कराह समय की सांस-सांस में भरती किशोरी की अर्थी उठी. चंदू जैसे किसी हृदयबेधक दुखांत उपन्यास में जी रहा था. उसके प्यार की प्रतिमा, अगाध प्रेम की अंतर्लक्ष्मी और पूरे घर की उजास अपनी मोहक मदालस छवि लिये उसे छोड़कर चली जा रही है. यह उसे जिया-जिया नहीं वरन् पढ़ा-पढ़ा जैसा लग रहा था. किताब की गहन विषाद-कथा के समाप्त होते ही सब कुछ पहले-सा हो जायेगा. वह मिलन के पहले दिन से ही पूजित अपनी देव-प्रतिमा को फिर पा जायेगा. पर ऐसा कुछ न हुआ. न जाने कौन सपनों के ज्वार-फेनिल समुद्र के उस पार खड़ा किशोरी को बुला रहा था जो वह चली गयी— जन्म जन्मांतर के लिए

चंदू (चंद्रकांत मिसिर) ने छाती पर पत्थर रखकर प्रिया का दाह-संस्कार किया. कलेजा मुंह को आ रहा था, पर बड़े-बूढ़ों के सामने युवा पति को लोक-लाजवश अपनी मर्मबिद्धता दबानी पड़ी. धीरे-धीरे सब ज्यों का त्यों हो गया. तेरही के बाद सारा वातावरण जैसे दिवंगता को भूलकर अपने सामान्य दैनिक क्रम पर चल पड़ा. पर चंदू किशोरी को न भूल सका. उसे वह घर के लोगों से छिपाकर प्यार से 'चांदनी' कहकर संबोधित करता था. प्यार का यह नाम सोते-जागते प्रकाश के स्थान पर उसके मन में तमिस्रा की कालिमा भर देता, निराशा की ऐसी घनी अंधेरी जो उसका साथ कभी छोड़ती ही न थी. उसने बाल बढ़ा लिये और खोया-खोया-सा जब भी गांव में कहीं आता जाता तो वियोगी यक्ष-सा सबका ध्यान खींचता. चेहरे की कांति खो गयी थी. हृदय जैसे अपने सतत उद्वेलन को भूलने का नाम न लेता था. पहले की तरह अब भी घर से कम निकलता. गांव का सारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक-व्यवहार बलई मिसिर निभाते. लड़के की करुण दशा देखकर यही सोचते— धीरे-धीरे मन शांत होगा. नया पत्नी-विछोह है. कोई बच्चा भी नहीं है जिससे मन का दुख बंटता-भूलता. वे दुनिया देखे हुए थे. पहले सभी की यही स्थिति होती है. बाद में रास्ते पर आ जाते हैं. नयी बहू आकर सब ठीक कर लेती है. दुनिया का यही चलन है. बेटा किस प्रेमाकुल चेतना में तैरता-उतराता है, इसे समझना बलई मिसिर जैसे भावनाविहीन, जड़ संस्कारों में पले, दुनियादारी में आजीवन रमें पूजा-पाठी ब्राह्मण के लिए संभव न था. वे पहले की तरह सारे काम करते. चंदू से कुछ न बोलते. देखना है, कब तक घर-गृहस्थी की ओर नहीं लौटता. यह प्रेम सुमिरनी कितने दिन चलती है.

दो साल बीत गये. ऐसे खाते-पीते घर का ब्राह्मण लड़का— संतानहीन विधुर किस लड़कीवाले का ध्यान नहीं खींचता? कोई न कोई आता ही रहता और बलई मिसिर प्रायः देखुओं से घिरे रहते. अच्छे कुलीन घर, कामकाज में निपुण कही जाने वाली सुशील लड़कियों— चाहे तो मिसिरजी देख लें. रूप-गुण और सुमति में साक्षात् देवी. सुपात्र की तलाश में ही जैसे अब तक कुंआरी बैठी रह गयी हो. बलई मिसिर भी अब कितने दिन रास्ता

> देखो बेटा! बात दो टूक होती है. तुम ब्याह करोगे नहीं. वंश डूबने मैं दूंगा नहीं. ब्याह होकर रहेगा... तुम्हारा नहीं तो मेरा... वंश चलाने के लिए मैं सब करूंगा— जग हसाई होती है, हो ले.

देखे लड़के के मन के लौटने का. पराये हाथ की रोटी खाते-खाते ऊब गये थे. बिरादरी की एक आश्रयहीन विधवा दोनों जून खाना बना जाती है. जैसा बनता है, थोपकर रख देती है. बुढ़ापे में अफ़ीम के आदी बलई मिसिर गोरसी के अधऔटे गाढ़े दूध से ही काम चला लेते हैं— छककर पीते हैं. पर एक जून तो कच्ची रसोई जीमनी ही पड़ती है. बहू आवे तो मन का भोजन बने— चौका जब-तब सुस्वादु व्यंजनों से भरे-पूरे. अब कितने दिन रुका जाये आखिर! बिना चंदू से स्वीकृति लिये उनकी सहज बुद्धि भी बाला-बाला संबंध तय कर लेने से उन्हें रोकती.

एक दिन बलई मिसिर ने चंदू को बाहर चौपाल में बुलाया. दोपहर में अक्सर कोई न कोई एक-दो मेल-व्यवहारी बैठे ही रहते थे. उस दिन कोई न था. चंदू आया और पिता की पूरी बात सुनकर बोला, "दादा, मैंने तय कर लिया है— विवाह नहीं करूंगा. आप देख रहे हैं, जैसी जिंदगी मैं जी रहा हूं उसमें किसी को भागीदार बनना मुझे मंजूर नहीं. भगवान ने जो किया, ठीक किया."

बलई मिसिर ने अपने आश्चर्य को भीतर ही भीतर पूरा छिपाते हुए कहा, "ऐसा नहीं हो सकता. बिना गृहिणी घर भूत का डेरा. खाऊ-मारू लोगों के लिए रास्ता साफ. मैं अब घर की घुटन नहीं सह सकता. तुम चाहो तो लड़की देख लो. वैसे गांव में यह चलन रहा नहीं है, पर तुम्हारे जैसे पढ़े-लिखे लड़के के लिए मैं इतना कर दूंगा... ब्याह तुम्हें करना होगा."

भग्न प्रेम, छायावादी नैराश्य, वियोग और गता पत्नी में खोये मन ने चंद्रकांत को सर्वाभिभूत कर रखा था. पत्र-पत्रिकाओं के साहित्यिक रस में दिन-रात डूबा युवा विधुर प्रतिज्ञा किये बैठा था कि अपना दुबारा ब्याह न रचायेगा. उसने दृढ़तापूर्वक कहा, "आप मुझे मजबूर न कीजिये. ब्याह एक बार होता है— बाकी अपने साथ और जो सदा को छोड़ गयी है, उसके साथ छल है. मुझे ऐसा नहीं करना... मैं जानता हूं लोग आपको घेरे हैं... पूरा गांव यही दिन-रात आपको सुनाता है. आप मेरी ओर से सबको यह बता दें..."

पिता-पुत्र दोनों अपनी जिद पर कायम रहे. बलई मिसिर को सबसे बड़ी चिंता वंश चलने की थी. यों भी वे घर में दुबारा बहू लाना चाहते थे. भगवान ने सब कुछ दिया है. थोड़ा बहुत लेन-देन भी कर लेते हैं. सूदखोरों की तरह कर्जदारों से उनकी जरूरतमंदी का नाजायज फायदा उठाने की उनकी प्रवृत्ति नहीं. उचित ब्याज लेते हैं— विश्वास वालों को ही देते हैं. किसी का गहना-गुरिया नहीं रखते. इसलिए सभी उनको समय पर पैसा दे जाते हैं, सहर्ष ब्याज पटाते हैं. चंदू कुछ नहीं करता— न करे. उनकी नेकदिली के कारण खेतिहर मजदूर उनके यहां काम पाने के लिए उत्सुक रहते हैं. किसी को कभी कोई अपशब्द नहीं— देर-सबेर काम पर आने-जाने की डाट-फटकार नहीं. सभी को मजदूरी से अधिक ही मिलता है. बलई मिसिर सबके सुख-दुख में काम आते हैं. सारा गांव उनका अनुरोध मानता है— उनकी बात टाली नहीं जा सकती. वे कुछ अनुचित कभी कहते भी तो नहीं. उन्हीं का लड़का उनकी ऐसी सुभेषणा स्वीकार नहीं कर रहा! बलई मिसिर के मन का क्लेश बढ़ता जाता है. वे चंदू से अधिक बात करना छोड़कर अब कुछ और संकल्प बांधने लगे हैं. चंदू ने अपने को समझ क्या रखा है. गांव का उज्ज्वल ब्राह्मण मिसिर बंस डूबने न पायेगा.

बलई मिसिर ने अंतिम निश्चय कर लिया. चंदू को बुलाकर निर्णायक स्वर में कहा, "देखो बेटा! बात दो टूक होती है. तुम ब्याह करोगे नहीं. वंश डूबने मैं दूंगा नहीं. ब्याह होकर रहेगा. तुम्हारा नहीं तो मेरा..." कहते-कहते उनके मुख पर पौरुष की सोयी दीप्ति जाग उठी. चंदू विस्मय-विमूढ़ उनकी ओर देखता रहा. बलई मिसिर फ़िर बोले, "मैं विवाह करूंगा. बच्चा पैदा करने की कूबत रखता हूं. करके दिखा दूंगा. पर जवान बेटे के रहते बाप इस उमर में विवाह करे यह जग-हंसाई की बात हो जायेगी. मुझे शोभा न देगा. मेरी यह उमर ब्याह करने की नहीं— चारों धाम करने की है. तुम दोनों को घर सौंपकर दो-चार महीने तीरथ करूंगा, ऐसा सोच रखा था. लेकिन वंश चलाने के लिए मैं सब करूंगा— जग हंसाई होती है तो हो ले."

हठात् आयी इस स्थिति के बीच चंदू गूंगा-सा खड़ा था क्या जवाब दे, समझ न आता था. पर अपने निश्चय पर अडिग रहा और बोला, "आप मुझे यह धमकी दे रहे हैं— सबक सिखा रहे हैं. आपके घर-द्वार, जमीन, रुपये-पैसे की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुझे परवाह नहीं. मैं स्वयं अपने से बेजार हूं. आप शौक से ब्याह कीजिये. भगवान आपकी अभिलाषा पूरी करे.''

बलई मिसिर के पास वंशारोपण के लिए फिर से शादी करने के योग्य दूसरा रास्ता ही न बचा. एक सामान्य गृहस्थ की छब्बीस वर्ष तक विवाह की राह देखती बैठी लड़की ब्याह कर वे ले आये. लड़की के स्वभाव, चरित्र और परिवार के संबंध में उन्होंने खोजबीन कर ली थी. पुरानी नातेदारी का घर था, उनकी ननिहाल का निकटवर्ती रिश्ता. सारा गांव इस विचित्र घटना पर तरह-तरह की बातें कर रहा था. उपहास से हटकर बूढ़े पिता की सनातन चाहना की आपूर्ति की दयनीय दशा पर लोगों का ध्यान न जाता हो, ऐसा न था. पर संतान-प्राप्ति में जिद्दी असहाय वृद्ध को निराशा भी तो हाथ लग सकती है. घर में एक विषवृक्ष सदा के लिए लगा दिया. मूक अभिनयहीन दर्शक की तरह चंद्रकांत ने सब देखा– जो हो सका, यशाशक्ति अपने को संयत रखकर किया. विधिवत् विवाह हुआ. बलई मिश्र ने श्वेत केश-मंडित सिर पर मोर रखा– सारी रीति रस्में निबाहीं. थोड़े से चुने हुए रिश्तेदारों को बारात में ले गये. छोटे-बड़े, गांव के सभी लोगों ने निमंत्रण की आशा बांधी थी. पर बिरादरी का एक साधारण भोज होकर रह गया. न अधिक लोगों का आवागमन, न कोई धूमधाम, न कोई तंबू-शामियाना. बलई मिसिर, जितना नितांत आवश्यक था, उतना ही कर रहे थे. चंदू के दिल से जैसे कोई भार उतर गया हो, इस तरह के एक अपूर्व हलकेपन का अनुभव करता हुआ वह लगातार बिना बुलाये भी आते-जाते लोगों का सत्कार कर रहा था. चेहरे पर विकार की कहीं कोई रेखा नहीं. विधुर लड़के को संसारी बनाने में असफल वृद्ध पिता जिस परिहास-जन्य मनोदशा से होकर गुजर रहे थे, वे ही जानते थे. पर नकद वर्तमान के आगे वे संदिग्ध, उधार भवितव्य का कोई उज्र अब सुनने को तैयार न थे. शिवबालक सुकुल ने सिर्फ इतना ही कहा था, ''सभी कुछ ठीक चल रहा था, कहां तुमने इस उमर में यह सब किया! साल दो साल में चंदू का मन बदलता ही. शादी करने का यह शौक क्यों चढ़ा? बुढ़ापे का इतने दिनों से छूटा मन क्या घर-गृहस्थी में रम पायेगा?''

आहत अभिमान से क्षुब्ध बलई मिसिर बोले, ''क्यों नहीं रमेगा? मेरे भीतर भी मर्द का हौसला है. चंदू की नयी मां सब संभाल लेगी. उस घर की लड़कियां जहां जाती हैं, फलती-फूलती हैं. मुझे केवल वंश की रक्षा चाहिए. चंदू समझदार है, सुशील है, उसे पूरा मान देगा.''

ब्याह का पहला साल बीतते-बीतते पत्नी के पैर भारी हैं, यह जानकर वृद्ध बलई मिश्र ने पतिजनोजित संतोष की सांस ली. लहलहा तो शिवा आने के बाद ही उठी थी पर इस उभार, देह के इस लहराते और अपने में न समाते भराव की छवि ही दूसरी थी. वे अब बाहर से जल्दी– घड़ी दो घड़ी सांझ बीतते ही आ जाते और खुली आंखों दिये की लौ तेज कर शिवा की गर्भवती कमनीयता को देख-देखकर न अघाते. सरसों की कोपलों और मटर की ओसभीगी फलियों को देखकर; गेहूं, धान की नयी बालों की सिहरन को छूकर जीवन का जो उन्मेष जागता है, वह बलई मिसिर को शिवा की पोर-पोर अंकुरायी देह में मिलता.

पूरे दिनों में शिवा के जब लड़की हुई तब बलई मिसिर को धक्का लगा. नाउन उन्हें शिवा के लक्षणों से लड़का होने का विश्वास दिलाये थी. उन्होंने उसे मुंहमांगा नेग देने का वचन दिया था. फिर भी यह सोचकर मन का समाधान करते रहे कि बिना लड़की के पांव पूजे मुक्ति नहीं मिलती. इस बात की ओर ध्यान भी न जाता कि क्या उसके पैर पूजने तक वे जीते रहेंगे? सोवर के भीतर शिवा अपनी दृष्टि में आप ही गिरी नहीं, जमीन में गड़ी जा रही थी. पति के इतनी उम्र में उस जैसी अधेड़ से विवाह करने का कारण उसे साफ मालूम था. तरह-तरह की मानता उसने मान रक्खी थीं. भगवान शिव का ध्यान उठते-बैठते करती हुई वह अपनी कोख से जनमने वाले पुत्र की कल्पना में विभोर रहती थी. प्रथम प्रसव का सारा चाव, आनंद जैसे आत्म-ग्लानि में डूबा पड़ा था. स्वस्थ सुंदर लड़की भी उसे मातृत्व के उस बोध से वंचित किये थी जो नवप्रसूता में उल्लास भर देता है– उसे अपनी उर्वरता का गर्वीला मान देता है.

विवाह के बाद पांच वर्षों में लंगोट के सच्चे बलई मिसिर के जब एक के बाद एक चार लड़कियां ही हुईं तो उनका दम इतना छूट गया कि वे सहन न कर पाये. उनके अंतर की आशा-अभिलाषा लगातार चार बार मरी. इस बार वे स्वयं उसकी विदीर्णता के शिकार होते गये.

शिवा ने जिस आखिरी लड़की को जन्म दिया था वह विकलांग थी. बलई मिसिर की एक भूल से शुरू हुआ सारा कांड अंत में एक अबोध, फूहड़ संतान पर आ टिकेगा, इसे कौन जानता था! उस कन्या की आकृति अष्टावक्र थी. बात को समझने की हरकत से वंचित केवल भयभीत टकटकी से सबकी ओर देखती रह जाती थी. कंपन की लहरें उसके अस्थिपंजर को झकझोर देतीं पर वह कुछ भी न चल पाती. एक विचित्र आदिम आवेग से उसका गला दबा का दबा रह जाता. सामने भाग जाना चाहती पर पैरों में न कोई शक्ति थी

भूखे लोग

रॉबर्ट शरवुड नाइट-क्लबों में गानेवाली बहुत मशहूर स्त्री है, जो एक रात गाने के हज़ारों डालर लेती है.

कुछ वर्ष पहले वह बहुत ही साधारण क़िस्म के होटलों में गा कर गुजारा किया करती थी.

एक बार उससे पूछा गया कि वह उन होटलों में रोज दे कितने पैसे कमाया करती थी.

''कई बार तो रात भर गा कर दस डालर भी नहीं कमा पाती थी.''

''भला वे कैसे लोग होंगे, जो दस डालर के बदले में सारी रात गाने का साहस कर सकते हैं?'' प्रश्न पूछनेवाले ने हैरानी प्रकट की.

''भूखे लोग.'' शरवुड ने सहज भाव से कहा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न शैशव की चपल गति का उन्मेष. मां के द्वारा निर्दयता के साथ एक ओर पटक दिये जाने पर उसके रोने की धारा कटती नाड़ी के बह उठते खून के आवेग-सी फूट पड़ती.

बलई मिश्र इस 'गों गों' करती अपनी चौथी कन्याकृति को देखते तो उनके हृदय की गति रुकने लगती. अपनी ही संतान उन्हें जलती रस्सी के ऐसे निदारुण फंदे जैसी लगती जो उन पर और पूरे घर पर जीवन भर पड़ा रहेगा. वे एक भयावह आतंक में बर्फ की तरह जमने लगते. लड़की की पंगु टांगें उनकी सांसों की गति रोक देतीं. शिवा जब उसे कोसती हुई अपशब्दों की झड़ी लगाती, निश्चेष्ट, निष्प्राण हो उठते उनके भय से पीले पड़े चेहरे पर पसीना बहने लगता.

बलई मिसिर ने मौत का 'रिहर्सल' करते हुए तीन साल गुजार दिये. उन्हें शिवा का शरीर छूने तक से विरक्ति हो गयी थी. चंदू को लड़की की दुबली-पतली देह को उठाकर एक स्थान से दूसरे पर रखते वे देखते तो अपनी विकृत मुद्रा लिये पास ही खड़ी शिवा उन्हें प्रेतिनी-जैसी लगने लगती. सारा दोष उसी की करमजली कोख का है जो अपनी खिसियाहट को, अपराध-बोध को अपनी कटु झुंझलाहट और तिरस्कार द्वारा उठते-बैठते जाहिर करती रहती है. पहले की तरह दालान में अपनी खटिया उन्होंने डाल दी थी.

आज मुझसे तुम्हारा एक भाई भी होता तो मैं न कहती. पर ये लड़कियां ही लड़कियां... तुम्हारे दंद्दू की आत्मा मुझे धिक्कारा करती है. मुझे इस धिक्कार से बचा लो...

मरने के पहले असहाय करुण दृष्टि से शिवा और उससे पैदा की गयी अपनी चार कन्याओं की ओर देखते हुए हृत्शूल की छटपटाहट में उन्होंने चंदू को तलाशा. वह पिता के पास आया और मृत्यु की भयावहता से घिरी उनकी मुखाकृति को देखकर अवसन्न रह गया. बलई मिसिर बोले, "चंदू,मैं चला विधवा विमाता और चार अबोध-अपंग बहनें तुम्हारे माथे छोड़कर, मन की मन में ही रह गयी. हे भगवान... हे भगवान! क्या सोचा था... क्या हुआ..." कहते हुए उनके प्राण पखेरू उड़ गये. शिवा ने दहाड़ मारकर चारपाई की पाटी पर जोर से हाथ पटकते हुए अपनी चूड़ियां फोड़ डालीं.

बलई मिसिर का दाह संस्कार, दसवां, तेरही सब ऐसी धूम से हुए कि लोग चंदू की पितृभक्ति और मर्यादापालन की प्रशंसा कर उठे. पूजा-पाठ, दान-पुण्य और भागवत पुराण की जैसे झड़ी लगी हो. दरवाजे पर विशाल शामियाना लगाकर ब्रह्मभोज हुआ— गांव भर का ही नहीं आसपास के व्यवहारी अभ्यागतों का विधिवत भोजन हुआ. शिवा इस बीच में यह सब देखकर संभल चुकी थी. मन के भीतर परिचित आतंक का सांप अपना फन उठाये न जाने किस ओर सरसराता हुआ निकल गया था. चंदू हर बात उससे इस प्रकार पूछता जैसे वही उसकी पुरखिन मा हो. उसके मायके के लोगों को सम्मान देते हुए भी चंदू ने शिवा को ऐसा लगने ही न दिया कि वह उनकी किसी भी प्रकार की विषाक्त हितैषिता की मोहताज हो, तेरही के बाद घर लौटने के पहले शिवा के पिता और बड़े भाई एकांत में उससे बोले, "हम आते रहेंगे. लड़के पर ज्यादा भरोसा न करना. भले कानूनी हक उसका बनता हो पर तुम्हारी ये चार लड़कियां... इनका पालन-पोषण, ब्याह उसे करना होगा. अगर कहीं अपना ब्याह कर बैठा तो तुम्हीं मारी जाओगी. सारा अधिकार छिन जायेगा— तुम्हारा... इन लड़कियों का..."

एक अजीब-सा करुणा मिश्रित तेज शिवा के झुके चेहरे पर झलक आया. जिन्हें ऐसे में हिम्मत बंधानी चाहिए, वे भविष्य का भय दिलाते जा रहे हैं. मन में फूटते ज्वार को वश में करके बोली, "चंदू पर मुझे भरोसा है. वह मुझे और इन चारों को पार लगा देगा. मैं और घटनाओं को गोद नहीं लेना चाहती."

चंदू कामकाज खत्म होते ही लगभग पहले जैसा हो गया. वही क्लांति, वही शून्यता जीवन में फिर उतर आयी. तूफान जैसा कुछ आया था— पिता की मृत्यु और उनके द्वारा छोड़ी गयी निविड़ भावार्द्र करुण छायाएं उसमें जो इतने दिनों का भूला-बिसरा, खोया जीवन लौटा लायी थीं वे फिर उसके एकांत विषाद में डूब गयीं. मां से बोलता, छोटी बहनों से भी प्यार जताता पर अपने से जैसे कहीं दूर, किसी गहन तमिश्रा में खोया-खोया. शिवा का ध्यान अपनी छोटी बड़ी लड़कियों को संभालने में— लंगड़ी की देखभाल में निकल जाता— फिर भी चंदू पर उसकी पूरी दृष्टि रहती. मरकर बलई मिसिर उसे जिसके संरक्षण में छोड़ गये हैं, वह तो जीवन-मृत्यु, हंसी-खुशी, घर-संसार, मां-बहन सबको भूलकर न जाने किस अनदेखे छुटकारे के लिए बेसुध बना रहता है! कोई बात पूछो या काम बताओ तो समाधि टूटने के-से भाव में बोलता है.

शिवा को पति के अभाव में घर सूना ही नहीं अतृप्ति और अभाव की विकरालता में समाया लगता. पिछले वर्षों से उससे कोई सरोकार की छुवन तक छोड़े, घर के बाहर रहकर जब वृद्ध पति उसके मन को इतना संवारता रहता था, तब निकट की मगनमन प्रतीति की बात ही क्या! जीवन भर के अभेद्य कुंआरेपन से उबारकर जिसने उसकी मांग भरी, उसके तन की तरंगहीनता को हिल्लोलित किया— चार बार उसे गर्भवती बनाकर उसके नारीत्व को सफल बनाया, अपना वही भर्ता उसे जब याद आता तो वह भी जीवन से छुटकारा पाने के लिए प्रार्थना करती. पर गले का कांटा बन गयी ये चार लड़कियां जिनमें एक अपंग, एक अविकसित. एक के बाद एक जवान होकर शादी की दरकार का चिंता भार ढोती मां की इन बैरिनों का सोच! शिवा तत्क्षण अपने में लौटकर भूत जैसे भयावने भविष्य की बात सोचने लगती. घर-द्वार सब कुछ होते हुए भी उसे कोई कूल किनारा न सूझता. उसने जो सहा है— कर्म-भोग भोगा है, ये करम जली वैसा कुछ न झेलें. एक-एक कर ठिकाने लगती जायें. चंदू घर का मालिक है. भगवान उसके मन में इनके प्रति दया-माया जगाये रहे— इन्हें कभी पराया न माने.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब चंदू ही कुलदीपक है. उसे पानफूल की तरह सहेज कर रखना है. चंदू यदि विवाह कर ले और वंश चलाये तो बलई मिसिर की आत्मा की लालसा पूरी हो. पर चंदू से वह कैसे कहे? जिसने जन्मदाता पिता की बात नहीं मानी— उन्हें इतना मजबूर किया वह अभागिन विमाता की कैसे सुनेगा! कहीं सनक गया तो और मुसीबत खड़ी होगी. पुत्र पैदा न कर स्वर्गीय पति के प्रति उसने जो पाप किया है उससे प्राण पाने के लिये शिवा की दोषी आत्मा चीत्कार करती. अक्सर रात को नींद खुलने पर वह बाकी रात जागती रह जाती. मां खेती बाड़ी देखती है— घर का पूरा प्रबंध रखती है, यह देखकर चंदू और भी बेफिक्र होता. सारी व्यवस्था उसे पहले से अच्छी नजर आती. अधिया पर न देकर शिवा अब बीच बीच में निर्भीक मन बाहर निकलकर खेती खुद देखती है. मां के इस नये रूप की कर्मठता उनके वैधव्य की सारी मलिनता के बावजूद चंदू से छिपी न रहती.

चार बहनों के भरण-पोषण, जीवन-यापन, विवाह का कर्ज उस पर चढ़ाकर पिता इस संसार से सदा के लिए विदा ले गये हैं, यह सोचकर अब चंदू के विचारों की धारा दूसरी ओर बह चलती. पिता के प्रति कठोरता और क्षमाहीनता का स्थान अब प्यार-ममता स्नेह सहानुभूति की पात्र बनी छोटी बहनों ने ले लिया. सारी रुलाई को सोखकर मन में पिता की छोड़ी अभिशप्त गृहस्थी घूमती रहती जो उसे पार लगानी है. एक नये बंधन में उसका खोया-खोया व्यक्तित्व लौटने लगा. उसे आत्ममर्यादा की करुणा और पितृहीन कन्याओं की विडंबना से घिरा मां का दुख सालता. बहनों की भोली, अनमनी उदासी उसे पुकारा करती.

कमला सबसे बड़ी थी, उसके बाद विमला, फिर सीता और सबसे छोटी जो अब चार वर्ष की थी, उमा. चंदू ने एक दिन मां से दो सौ रुपये की मांग की. शिवा ने ही इधर सब कुछ संभाल रखा है. कारण पूछने का साहस होता भी कैसे. घर के मालिक लड़के ने पहली बार मां से कहा था. निकालकर चुपचाप बेटे के हाथ पर रख दिये. चंदू शिवा की बड़ी बेटी कमला को लेकर घर के बाहर निकला. घंटे भर बाद नये कपड़ों का बंडल लिये लौटा— कमला का हाथ पकड़े. उसके पीछे रामप्रसाद दर्जी था जो गांव में अच्छा कारीगर माना जाता था. चंदू ने चारों बहनों के कपड़े नपवाये— फ्राक, चड्डी, पैजामे.

रामप्रसाद तीन दिन में तैयार कर ले आने को कहकर चला गया. शिवा चौके के काम पूरे कर बाहर बैठी गेहूं बीन रही थी. चुपचाप सब देखती रही. दरजी के आने पर बोली, "इतना कपड़ा ले आये— सिलाई भी कम न लगेगी?"

चंदू ने कहा, "कपड़े उनके पास हैं कहां? अभी और लाऊंगा. तुम घर-बाहर के कामों में फंसी रहती हो. लड़कियों के खाने-पहनने की ओर भी ध्यान रखा करो. जब देखो, उन्हें धिक्कारती रहती हो. उन्हें मां का पूरा प्यार-दुलार चाहिए."

उमर में अपने से बड़े सौतेले बेटे की बात शिवा ने सुनी. चंदू के स्वर में निष्कंप आग्रह था. हंसी-खुशी में

पत्नी

चार्ल्स लाफ्टन अपनी पत्नी के साथ एक बार किसी जलसे में बैठा हुआ था. उसके पास बैठा एक व्यक्ति उसे सुनाकर उसकी निंदा करने लगा और उसके मुकाबले में एक दूसरे अभिनेता की प्रशंसा के पुल बांधने लगा.

लाफ्टन के लिए यह असह्य था. उसका चेहरा तमतमा उठा. इससे पहले कि वह उस व्यक्ति पर हाथ उठाता, उस की पत्नी ने बड़े प्यार से उसका हाथ पकड़ कर दबाया और होंठों पर बड़ी मीठी मुस्कराहट लाकर उसकी ओर देखा, जैसे कहा हो, इसमें गुस्सा करने की कोई बात नहीं है.

लाफ्टन शांत हो गया और उस व्यक्ति की ओर मुस्करा कर कहा, "हो सकता है कि मेरे प्रतिद्वंद्वी अभिनेता के पास सभी गुण हों, पर क्या उसके पास मेरी पत्नी जैसे जादूगरनी पत्नी भी है?" □

फलती-फूलती, महुए के फूल जैसी बेटियों की रसीली कोमलता उसकी आंखों के आगे घूम गयी. चंदू की निष्कपट भावना उसे अपने कर्तव्य का बोध करा गयी. पहन-ओढ़कर ये ही साधारण रूप-रंगवाली लड़कियां सुंदर लगेंगी. उनका लंगड़ा लूलापन, दिमाग की अपंगता इतनी कुत्सित न लगेगी. सिर नीचा किये अपना काम करती रही.

चंदू ने खेती-बाड़ी का काम देखना शुरू कर दिया. अधिक से अधिक फसलें हों और पैसा घर में बढ़े इसको लेकर शिवा से अक्सर बातें करता. शिवा ने बिना पूछे कमला को गांव के लड़कियों के स्कूल में भरती करा दिया पर शिवा ने बुरा न माना. अपनी बच्चियों का बदला हुआ मधुराया रूप उसे अच्छा लगता. चंदू कुछ पूछता तो कहती, "तुम जो ठीक समझो, करो. मुझसे बड़ी समझवाले हो. मैं और ये चार बहनें तुम्हारे ही सहारे हैं... निबाह देना."

गांव के लोग कहते, "सिर पर जब पड़ती है, तब सारी कविता भूल जाती है. चंदू कितना बदल गया है! पुराना बगीचा नया हो गया है. पहले कोई देखरेख न थी. अब आम की फसल में हजारों देगा. बहनों का कितना ध्यान रखता है!"

शिवा का टीसता मन औरतों-मर्दों की ऐसी बातें सुन-सुनकर अपनी सहजता में लौट आता. पति के साथ ही चली गयी जिजीविषा बड़ी होती जा रही लड़कियों के भविष्य की चिंता में प्रबल हो जाती. चंदू अनाज की बिक्री का हिसाब, पिता के समय से चले आ रहे लेन-देन के धंधे की रकम, बाग-बगीचे की आमदनी, पूरी की पूरी शिवा को देता. जरूरत पड़ने पर उसी से मांगता. रहन-सहन, बात-व्यवहार में अपनी लड़कियों को घर के काम से विमुख पाकर वह अब भी झुंझलाती— भला-बुरा कहती. उनके द्वारा अपने काम में बाधा पड़ते देखकर मार बैठती. तीसरी लड़की सीता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानसिक विक्षेप से पीड़ित थी— उसमें उमर के साथ समझदारी का विकास न हुआ था. उसके प्रति शिवा की झुंझलाहट की सीमा न थी. चंदू घर के बाहर रहता. नौकरों के काम की देखरेख करनी पड़ती थी. पर सब से छोटी उमा को वह घर में स्वयं उठा कर यहां से वहां ले जाता.

बाहर से आकर चंदू अपने कमरे में था. शिवा ने चावल बीनकर मटके में भरने को रक्खे ही थे कि सीता ने बिने और अनबिने मिलाकर एक कर दिये. तब तक नाउन किसी घर का बायना ले आयी थी. उसे विदाकर शिवा अब अपनी जगह पर आयी तो उसने यह कांड देखा. सीता ने उसकी तीन घंटे की मेहनत बेकार कर दी थी. क्रोध में आकर शिवा ने 'नासकाटी जब देखो इसी तरह किया करती है!' कहते हुए उसे तीन-चार भरपूर तमाचे लगा दिये. थप्पड़ों से लाल मुंह लिये सीता आर्तनाद करती हुई 'भैया', 'भैया' की करुण पुकार लगाती चंदू के कमरे में दौड़ी आयी. चंदू का अपनी इस मनोविचलन से विकलांग बहन के प्रति विशेष स्नेह था. लंगड़ी उमा करुणा जगाती थी. पर उसके मन को भावार्द्र कर देती थी गों गों करती, भली भांति बोलने को तरसती यही सीता. जो भली प्रकार रो भी न पाकर चोट की पीड़ा से फूल-फूल कर पीड़ित पशु की भांति रिरियाती थी.

साफ बता क्यों नहीं देते, 'हमें अभी दो को पार लगाना है. हम इतना ही दे सकते हैं... बारात की खातिरदारी में कम खर्च होता है...? न मानें, दूसरा घर देखो.'

उमा को असाध्य मानकर चंदू सीता को लखनऊ ले जाकर डाक्टरों को दिखाने की जिद कर रहा था. मां से बोला, "मुझे ज्यादा दिन लग जायें तो तुम घबराना मत. हर रोग की दवा होती है— इसकी क्यों न होगी. साथ में किसे ले जाऊं... एक समझदार आदमी को जो सीता को संभाल सके...

शिवा ने अपनी कुढ़न को दबाते हुए कहा, "छोड़ो, इस अभागिन को कहीं नहीं ले जाना, छोड़ो डाक्टर वैद-हकीम को दिखाना. मेरे पिछले जनम के पाप का फल मुझे भोगवाने को जन्मी हैं ये दोनों. तुम कहां हलकान होते फिरोगे— वहां नाक में दम कर देगी. उमा की तरह इसे भी भाग्य पर छोड़ दो."

चंदू ने शिवा के दुख की गहराई समझी. साधारण मनस्ताप में मां अपनी कोखजायियों के प्रति इतनी निर्मम नहीं होती. लड़की के जीवन का मामला है. पहले ही यह काम करना था. बोला, "ऐसा कुछ नहीं. हफ्ते दो हफ्ते जांच करके डाक्टर दवा लिख देगा. यहां खाती रहेगी. पंद्रह दिन— महीने में जब भी बुलायेगा, हम जांच करा आयेंगे. लखनऊ की दूरी भी क्या है. वहां ठहरने के ठीहे हैं. मेरे साथ... ऊबे-रोयेगी नहीं."

चंदू सीता को नौकरानी के साथ लेकर लखनऊ चला ही गया. शिवा को भीतर-भीतर उस दिन अपना सारा अस्तित्व मृत पति की याद और भविष्य के असाधारण माध्यम में तैरता बीता.

एक सप्ताह बाद लौटकर बेटे ने मां को सब बताया. सीता के अच्छे होकर औरों जैसे हो जाने की आशा है. दवा बराबर चलेगी. हर महीने जाकर जांच करानी होगी.

शिवा ने सहानुभूति से भीगी-भीगी चंदू की आंखों का संतोष देखा. झुंझलायी कटुता लिये वर्तमान की चेतना में लौटती बोली, "कितनी बार इसे ले-ले कर शहर दौड़ोगे? कितना पैसा खर्च करोगे इस करमजली पर! दिन में तीन-तीन बार दवा खायेगी— किसे याद रहेगी..."

चंदू ने कहा, "मैं नियम से दूंगा. तुम सीता को मुझ पर छोड़ दो मां! भगवान ने चाहा तो..."

सीता की दशा में सुधार हुआ. मां को अब पहले की तरह हलकान नहीं करती.

एक दिन चंदू कमला के मिडिल पास होने की बात जब मां से कर रहा था और कक्षा में उसके प्रथम आने की खुशी में मग्न था, न जाने कैसे कमला को आगे पढ़ाने का, अच्छा वर पाने की उसकी पात्रता बढ़ाने का जिक्र कर बैठा. शिवा ने साहस बांधकर कहा, "वह बाद की बात है. पहले भाई का ब्याह होगा... बाद में बहन का."

चंदू ने पहली बार मां के मुख पर उभरे दरिद्र आग्रह को देखा. उसकी धुंधले अंधेरे जैसी मलीनता को पहली बार बिलकुल नये, अचीन्हें स्वर और भाव में मुखरित पाया. मां से कुछ न बोलकर तब तक पास आ गयी विमला के सिर पर हाथ फेरता हुआ बोला, "तू भी अब पढ़ने जायेगी— कमला से कम तेज नहीं निकलेगी."

दो वर्ष हो जाने पर भी सीता का इलाज चला जा रहा था. उसकी बुद्धि का विकास हो चला था— लगभग अपनी आयु जैसा आ गया था. शिवा के मन में आज चंदू से खुलकर बात करने का निश्चय बन चुका था. बोली, "इन लड़कियों की पढ़ाई से ज्यादा जरूरी बात तुम्हारे ब्याह की है. कमला को अब आगे नहीं पढ़ाना. आठवीं पास हो गयी, बहुत है. जो कमी होगी, घर में पूरी कर लेगी. पहले तुम्हारा ब्याह हो जाये तब इसकी बात सोचूं..."

चंदू ने हंसकर कहा, "तर्पण खोजते पुरखों की आत्माएं तुम्हें भी पुकारने लगीं क्या? मैं अब ब्याह करूंगा? आज कैसी बात बोल रही हो मां. मुझे जो सुनना भी गवारा नहीं..."

संकोच त्यागकर शिवा ने कहा, "आज मुझसे तुम्हारा एक भाई भी होता तो मैं न कहती. पर ये लड़कियां ही लड़कियां... तुम्हारे दद्दू की आत्मा मुझे धिक्कारा करती है. मुझे इस धिक्कार से बचा लो. उनकी जो साध मुझसे नहीं पूरी हुई वह तुम्हारी बहू से हो जाये!... मेरी इतनी पत रखी है... बस इतनी और रख लो... तुम सुखी रहो... वंश न डूबे."

चंदू को अडिग पाकर शिवा ने आगे भी बारंबार कहा. उसका साहस एक बार खुला तो खुलता चला गया. पर चंदू ने जब जवाब में कुछ कहना ही छोड़ दिया तो शिवा उसकी दृढ़ता जान गयी. भरी जवानी में जिसने दूसरी जीवन-संगिनी नहीं चाही उसे अब इस आयु में विचलित कर द्विपरिणीता के लिये तैयार करना संभव नहीं. भगवान से प्रार्थना करती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहती— देवी देवताओं की मानताएं मानी कि चंदू को वे सुमति दें. मां की सारी बातें जानसुनकर भैया की मुंह लगी कमला ने भी भाई से भौजी लाने को कई बार कहा पर चंदू ने बातों में बहला दिया. एक बार कमला को पीछे पड़ते देखकर उसने कड़े स्वर में डांटकर कहा, "क्या चाहती हो, मैं यहां से चला ही जाऊं? तुम अपने पढ़ने पर ध्यान दो. प्राइवेट परीक्षा देनी है." तो कमला के साथ-साथ मां शिवा भी बिना बेटी के बताये सब समझ गयी. चंदू की बात ने दोनों को इस संबंध में खामोश कर दिया.

शिवा ने कमला के विवाह की जल्दी मचाना शुरू कर दिया. चंदू कहता, "प्राइवेट मैट्रिक करा लेने दो मां. आजकल अच्छे घरों में लड़की के पढ़े-लिखे होने की बात सबसे पहले पूछी जाती है... कमला पढ़ने में तेज है. पहली बार में पास हो जायेगी तब विवाह की चर्चा चलाना."

शिवा देखती, पगली कहीं जाकर बराबर घर-बाहर तिरस्कार पाने वाली सीता अब स्कूल में भरती कर ली गयी है. कमला को चंदू से पढ़ने की जरूरत नहीं पड़ती. सारा दिन खुद ही पढ़ा करती है. शिवा घर का काम न करने— रोटी-पानी में भली प्रकार रुचि न रखने के लिए बड़बड़ाती है. दूसरी बहनें भी पढ़ने में ही लगी रहती हैं. घर के कामों से जैसे सरोकार ही नहीं. शिवा अकेले सुबह से रात गये तक खटती है. पैसा आता है, फुर्र से उड़ जाता है. शिवा चंदू पर झींखती है जिसने इतना खर्च बढ़ा रखा है. किताबें चली आ रही हैं. सीता की दवा का लंबा बोझा ढोया जा रहा है. पर जिसे सब झेलना पड़ता है, वह निर्द्वंद्व है. खेती की उपज बढ़ गयी है. किसान बीज के लिए दो मन ले जाते हैं— अन्न आने पर खुशी-खुशी चार मन दे जाते हैं. नकद रुपये का ब्याज खुद दे देते हैं. चंदू अक्सर उनके दिये से कुछ लौटा देता है. गहना-गुरिया रखना महाजनों के यहां होता है. खुशहाल ब्राह्मण काश्तकार हंसी-खुशी कर्ज देता है— जरूरतमंद मूल और ब्याज पटाता है. जो कम दे पाते हैं, उनके लिए भी चंदू के मुंह पर फैली तरल सहानुभूति— आंखों के रास्ते सब के सुख-दुख की बातें पीते जानेवाली मुद्रा शिवा देखती है तो कहते-कहते रुक जाती है— कम लेकर ब्याज का पैसा लौटा क्यों देते हो? न हो तो बदले में खेत, बारी, किसानी के काम ही ले लिया करो. चंदू के उसे घर की मालकिन मानने पर भी उसका दासी-भाव उससे छुड़ाये नहीं छूटता. दूसरों के घर में रार-तकरार मचती है. सगे भाई लाठी भांजते हैं, एक दूसरे का हिस्सा हड़पने में नहीं हिचकिचाते. सगी मां को भला-बुरा कहते हैं— लांछन लगाते हैं. उनके बीच बलई मिसिर का घर कच्चे नारियल जैसा दूधिया पवित्र लगता है.

रोज रात को दिन भर का किया चंदू का सत्व्यवहार और अपनत्व उसकी वैधव्य की वर्जना को ठेल-ठेलकर उसका पूरा मन घेर लेता. मरते समय इतने करुण निरीह नयनों से उसे देखकर सदा को आंखें बंद कर लेने वाले उसके अंतःकरण के स्वामी क्या जानते होंगे— कैसे दाता के चरणों पर उसे डाल गये हैं. वे दुश्चिताग्रस्त मरे— दवा-दारू भी न हो पायी. शायद बच ही जाते. पर न बचकर भी बुढ़ापे में मुझसे जन्मी इन चार अभागिनों को जिसके अधीन छोड़ गये थे वह तो पति, पुत्र, पिता, भाई सभी का प्यार समेटे विधवा विमाता को, उसकी पिताहीन बेटियों को सुख से मढ़ देना चाहता है. जिसको केंद्रित कर आशंकादग्ध चिंताओं का पार न था. वह विश्वास और परिवार-पालन की देवमूर्ति निकला. मां से कभी किसी काम के लिए नहीं कहता. उसी की सेवा करने, उसी चंदू के लिए कल्याण का मंगल कवच बनने की कामना शिवा की सांस-सांस में लहरती है. वह मृत स्वामी की प्रतिमूर्ति उसमें पाती रहती है. चंदू के मुंह पर थकावट या फिक्र का चिन्ह पाते ही अकुला कर पूछती है, "क्या बात है भैया? किस सोच में डूबे हो? मैं चौका लिये बैठी हूं."

चंदू हड़बड़ा उठता. अतीत के मटमैले जल में अपनी ही अस्पष्ट छाया देखना तत्क्षण बंद कर मिनटों में नहाकर चौके में बैठ जाता, "परोसो, मैं आ गया."

गरम-गरम रोटियां निकालकर देती शिवा कृतार्थ आनंद में डूबकर न जाने कहां अंतर्हित हो जाती. चंदू कहता, "कमला के लिए लड़का देख आया हूं. बी.ए. पास है— घर भी खुशहाल है. तुम पसंद कर लो... देख लो."

शिवा कहती, "मुझे नहीं देखना है, तुम्हें पसंद है तो मुझे भी है. रुपये-पैसे की बात जरूर साफ कर लेना. एक नहीं तीन हैं, पूरी तीन. चौथी इसी घर में अनब्याही मरेगी. मेरे आगे चली जाये तो अच्छा, तुम्हें सालने को न बचे."

चंदू कुछ न कहता. बीच-बीच में निश्छल-निढ़ाल, पर परोसने में तत्पर मां की ओर देख लेता जिसके शब्दों की सच्चाई मुख की प्रत्येक कठोर रेखा आंकती थी.

अंत में वही बी.ए. पास लड़का तय हुआ. नकद दो हजार का फलदान गया— साथ में एक हजार रुपये का सामान. गहने, कपड़े, बरतन सब मिलाकर कहां तक पहुंच जायेगा, शिवा की बुद्धि में न अंटता. कमला की खुशी

अभिनेता

एक अभिनेता का कद बहुत लंबा था और कुछ अरसे से उसे कहीं काम नहीं मिल रहा था—न नाटकों में, न फिल्मों में.

एक दिन उसे किसी ने कहा, "ईलिया कज़ान अपने एक नाटक में अब्राहम लिंकन के रोल के लिए कोई उपयुक्त व्यक्ति ढूंढ रहे हैं. आप उनसे जाकर मिलिये."

सुनकर अभिनेता बहुत खुश हुआ.

"उनसे मिलने जायें तो बेहतर यह होगा कि पूरी तरह लिंकन बन कर जाइये. यानी मेक-अप, वेश-भूषा, चाल ढ़ाल हर एक चीज़ लिंकन जैसी हो. उस हालत में आप के चुन जाने की अधिक संभावना है."

अभिनेता जब कज़ान से मिलने गया तो वह सचमुच लिंकन प्रतीत हो रहा था. वह अभी कुछ ही दूर गया था कि एक गोली उसके सिर में आकर लगी. दूसरे ही क्षण वह सड़क पर लेटा पड़ा था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाये न समाती. गांव की कोई लड़की बी.ए. पास लड़के के साथ न ब्याही थी. पिता गांव के सरपंच हैं, चाहते हैं लड़का वकालत करे. चंदू ने सहर्ष सब किया. शिवा कन्यादान देने के लिए तैयार नहीं हुई. चंदू ने बड़े भाई का वह दायित्व भी पूरा किया. मां और मां से ज्यादा भाई से लिपट-लिपटकर रोती कमला ससुराल गयी. शिवा के बार-बार कहने पर भी चंदू से उस दिन खाया न गया.

शिवा लड़की के वियोग से जल्द उबरकर विमला की बात सोचा करती. भैया ने उसे भी पढ़ा-पढ़ाकर प्राइवेट मैट्रिक करा दिया था. शिवा अंधेरे में पड़ी पति की बूढ़ी और निरीह याद के पीछे चंदू के अनेक रूपों को चित्रित करती— मन ही मन. उसकी नींद भाग जाती. अंधकार को देखते-देखते उसकी आंखें अंधेरे को इस कदर पहचान गयी थी कि उसके अंधेरे कमरे में पूरा घर घूम जाता. अतीत और भविष्य की बेपहचान आशंकाएं, विडंबनाएं घूम जातीं.

कमला पति-गृह से लौटकर उदास और फीकी-फीकी रहती. मां को यह विचित्र लगा. चंदू ने तो विवाह के बाद

वे एक भयावह आतंक में बर्फ की तरह जमने लगते. लड़की की पंगु टांगें उनकी सांसों की गति रोक देतीं. शिवा जब उसे कोसती हुई अपशब्दों की झड़ी लगाती... उनके भय से पीले पड़े चेहरे पर पसीना बहने लगता.

सयानी लड़की में आयी संयत गंभीरता समझकर उधर ध्यान न दिया. यों भी उसे घर के भीतर की ओर देखने और उसकी किसी भी कही-अनकही भाषा का अर्थ निकालने की फुरसत न थी. कैसे आमदनी बढ़े, खर्च जुटाकर विमला का ब्याह किया जाये— लड़का तलाशा जाये इसी की कोशिश में लगा रहता. शिवा के खोद-खोद कर पूछने पर कमला ने अंसुआये स्वर से जो कहा उसे सुनकर शिवा सन्न रह गयी. कमला की ससुराल में मां के और भैया के संबंध में गर्हित बातें की जाती हैं. सभी में न जाने कैसे, कहां से यह विश्वास भरा संदेह घर किये है कि मां-बेटे में कुत्सित संबंध हैं. उसे सुनाकर बराबर कहा जाता है— बेटा सौतेली मां को रखे है... कहते-कहते कमला की रुलाई रोके न रुकी.

शिवा ने कानों में ही नहीं सीप की तरह स्नायु, स्नायु से यह बात सुनी. किसी विदारक माध्यम में तैरते हुए भी उसकी चेतना ने अपने को खोया न था. पूछा, ''ऐसी पापी बातें क्यों करते हैं? देनी में तो हमने कोई कसर नहीं रक्खी. सास का संदूक भैया ने कितनी महंगी-महंगी साड़ियों, चादरों, ब्लाउजों से भरा था. दामाद कुछ नहीं बोलता? एक जबान किसी को ऐसी निषिद्ध बात कहने से नहीं रोकता?''

''नहीं मां. वे रोज रात में मुझे सताते हैं— तरह-तरह से यही बात कबूलवाते हैं, जैसे अपराधी से अपराध स्वीकार कराने पर तुले हों. मैं सब सहती हूं— सुनती हूं.''

शिवा ने अपने अंतस्तल को हर प्रकार टटोला— चंदू से संपृक्त कर उसमें कहीं भी कोई खोट पाने की हरचंद चेष्टा की है. पर उसे देखकर— उसकी करुणामयी निष्ठा की उष्माहट से पति की मूर्ति यदि गोपन, निभृत, मीठी भाषा में उसके पोर-पोर से बोलने लगती है तो कोई पाप है क्या? बेटा बाप की प्रतिमूर्ति मां को लगता ही है— चाहे अपनी कोख का हो, चाहे अपने से पहलीवाली का जाया हो. मां की, बोझिल, आत्मस्थ, स्थिर भंगिमा की वेदना बेटी को और दुख देने लगी. शिवा ने समझाकर कहा, ''मेरा दुर्भाग्य है बिटिया! खैर पाप को लगना होता है तो खुद लगता है— किसी के लगाये नहीं. तुम कभी इस बात को लेकर किसी से झगड़ना मत. भैया से तो जिकर तक न हो. भूलकर उसके कान में यह बात न पड़े. मुझसे कह दिया— ठीक किया. मां से छिपाना क्या...''

शिवा को रात भर नींद न आयी. आंखें खोलते, मूंदते, मलते-मलते उसने भोर का पहला स्वर सुना. जागरण की कड़आहटभरी उसकी आंखें धूप की तरह उसी के चेहरे को भेद रही थीं. फिर भी घर के कामों में नित्य की तरह लग गयी. कमला की बात में अंतर्ग्लानि के साथ भविष्य का भय भी कम न था. भरी जवानी और हर प्रकार चंदू पर ही आश्रित होने की विवशता में भी उसके नारी जीव ने जो बात कभी नहीं सोची वही उसके संबंधियों, इतने पढ़े-लिखे दामाद द्वारा ही उस पर थोपी जा रही है. कमला को रोज-रोज सुनकर कैसा लगता होगा यह सब! रोज-रोज सुनाया जाकर तो झूठ भी सच लगने लगता है. कहीं भैया के प्रति अपार भक्ति-प्यार में पली पनपी उसकी जीभ खुल पड़ी— ससुराल के लोगों से विकट कलह कर बैठी तो... कैसी छिः छिः होगी. मन ही मन चंदू की आत्मा की पीड़ा की कल्पना पर वह सिहर उठी.

दौड़ धूपकर विमला के लिए लड़का तय हुआ. इंटर तक पढ़ा है. घर का काम देखता है. खासी संपत्ति है— जमीन है. चंदू के बार-बार कहने पर इस बार भी शिवा ने यही उत्तर दिया, ''तुमने देखा है, पसंद किया है तो मेरा देखना क्या? उनके न रहने पर तुम्हीं ने मां-बाप दोनों का धर्म निबाहा है. मुझे घर की दासी ही मानो. तुम्हारी हर मरजी में मेरी पूजा है. खर्च का खयाल जरूर रखना. कहां तक मैं निकाल-निकालकर दूंगी— कहां तक तुम बाहर से लाओगे.''

चंदू ने मां की असमय बूढ़ी और चिंताग्रस्त हो गयी मानसिकता समझी. बोला, ''पैसा तो खर्च होगा ही. लड़की के पिता नहीं है— सौतेला बड़ा भाई विवाह कर रहा है— लड़की मैट्रिक पास है, यही सुनकर लोगों के कान खड़े हो जाते हैं. कितने खर्च का मेरा संकल्प है— बराबर पूछते हैं.''

शिवा ने पूछा, ''तुम क्या जवाब देते हो भैया?''

चंदू कहता, ''मैं उन्हीं पर छोड़ देता हूं. हमारे पास कुश और कन्या है. लड़की रूप, गुण, पढ़ाई-लिखाई में शहर की लड़की से कम नहीं है. मेरे आगे-पीछे कोई नहीं है. बहनों को ब्याह दूं, उऋण हो जाऊं.''

''साफ बता क्यों नहीं देते. हमें अभी दो को पार लगाना है. हम इतना ही दे सकते हैं. शादी में खिलौने-पिलाने, गांव, घर, बरात की खातिरदारी में कम खर्च होता है? न मानें दूसरा घर देखो. तुमने इन्हें पढ़ाकर, पास कराकर भूल की. मैं मना करती रही, तुमने नहीं सुना. सिर पर चढ़ा-चढ़ाकर इनके हौसले बढ़ा दिये. साधारण घर-वर देखो— दाल-रोटी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलती जाये. सब कुछ लुटाकर फकीर नहीं बनना है. अभी इस पगलौट को ब्याहना है— लंगड़ी उमा की जिंदगी पार लगानी है. तुम कितना करोगे...''

विमला का ब्याह उसी धूमधाम से हुआ. दूसरा दामाद शिवा को पहले से ज्यादा शांत स्वभाव का लगा. उसके पिता की मृत्यु हो चुकी थी. मां का अकेला बेटा था. शिवा को संतोष हुआ विमला जैसी दुर्मुख को निभा लेगा. सास भी इकलौती बहू को पूरा प्यार देगी.

सब को आश्चर्य था— कमला के यहां से विवाह में कोई न आया था. कमला को तो चंदू विदा करा लाया था पर इस बार उसकी ससुराल के लोगों का व्यवहार उसे अपमानजनक लगा था. कमला से वहां से चलते समय जो बातें कही गयी थीं, वे कम अपमानजनक न थीं. उसे पूरी शंका थी कि उसकी बहन के विवाह में पति, ससुर, देवर आदि कोई न आयेंगे. यही हुआ भी. पर इसके बाद जब महीनों कमला को कोई लेने न आया— न उसके पति का उसके नाम या घर के नाम कोई पत्र तब वह शंका से भर गया. चलते समय सास ने सबको सुनाकर कहा था, ''ऐसे घर से हमें नाता नहीं रखना जहां कि बहू की मां अपने सौतेले बेटे की रखैल हो.'' भैया को घर की कलह विदित न हो, यह सोचकर कमला खून के घूंट पीकर रह गयी थी. एकांत पा पति से उसने स्वाभिमान से रुंधे कंठ से पूछा था, ''क्या तुम भी औरों जैसा सोचते हो...''

पति ने कहा था, ''बिलकुल. जिसने सौतेली मां को नहीं छोड़ा,वह जवान सौतेली बहनों को छोड़ेगा...?''

कमला रोम-रोम में बिच्छू के डंक की पीड़ा लिये भाई के साथ चली तो आयी थी पर बहन के विवाह का उल्लास ससुरालवालों के इस कलंक-व्यवहार ने भाप की तरह उड़ा दिया था. छाती पर बोझ रखे उसने विवाह में पूरा योग दिया— सारे काम किये. मां को कोई भनक तक न लगने दी. उसकी उदासी चंदू से छिपी न रही. विवाह की हलचल और कामकाज की भीड़-भाड़ में तो सबका ध्यान उसी ओर था. सब कुछ निपट जाने, विमला की पहली विदा करा लाने के बाद भी कमला को वैसा ही विषण्य और किसी अदेखे अंधकार में अंतर्धान जैसा लगातार पाकर एक दिन चंदू ने पूछा, ''क्या बात है, जब से तुम यहां आयी, एक बार भी हंसी नहीं. वे लोग कोई न आये. रज्जन (कमला का पति) से आते-आते मैं आग्रह कर आया था. पिताजी से भी... क्यों नहीं आये आखिर! पांच महीने हो गये. कोई पत्र नहीं— तुम्हें विदा कराने की चर्चा नहीं.''

कमला का हृदय उमड़ पड़ा. मां की सारी हिदायत एक तरफ पड़ी रह गयी. उदासी भरी ग्लानि से रोने को आ गये स्वर से उसने भैया को सब बताया. सुनकर चंदू पहले तो सन्न रह गया— लकवा मारे अंग की तरह. फिर धीरे-धीरे अपने को समेट-सहेजकर बाहर चला गया. युवती विमाता को लेकर उसके सगे-संबंधी उसके प्रति ऐसी गर्हित, पापिष्ठ धारण बना कर उसकी निरपराध बहन को इस प्रकार प्रताड़ित कर सकते हैं— यह उसकी समूची भावना को खून से तर-बतर कर रहा था. शिवा ने कमला द्वारा चंदू से कही पूरी बात बेटी के मुंह से सुनकर केवल इतना कहा था, ''अच्छा हुआ भैया ने तुमसे सब सुन लिया. सच्चे कलंक से जल्दी झूठा कलंक फैलता है... मेरी देह को लेकर उन्हें यह सुनना बदा था... क्या सोचते होंगे?''

पर सारा संवाद सोचने तक ही रह गया. चंदू ने न मां से कुछ कहा, न शिवा ने बेटे से. भीतर-भीतर दोनों का अंतर्मंथन चाहे जितना तीव्र रहा हो, ऊपर से सब वैसा ही प्रकृतिस्थ रहा. कमला पूरे घर पर छाये विषाद का कारण अपने को मानकर जितनी कुंठित रहती, विमला उतनी ही निर्द्वंद्व और हंसती-बोलती, नवयौवना जैसी प्रगल्भ बातें करती. लंगड़ी उमा घर भर की उपेक्षा का पात्र बनी थी. चंदू का जितना भी ध्यान होता उसकी ओर आ जाकर पछाड़ें खाता. घर भर में उड़ने-फिरने, फुदकने को जन्मी चिड़िया के चंचल परों को किसी ने काटकर जैसे उसे कठोर धरती पर पटक दिया हो जिसकी घिसटन देखकर चंदू के मन में स्नेहिल करुणा ही उमड़ती. कमला के इस दुखद अपवाद के साथ चंदू इतने घृणित रूप में लिपटा था यह सोच सोचकर शिवा अकेले में ग्लानि और भय से रोती रहती. ससुराल वालों ने उसे त्याग ही रखा है— कमला भी वहां की बात चलते ही घृणा से कंटकित हो उठती है. उसके होंठ किसी अनहोनी क्रूरता से भिच जाते हैं. उसके तन-मन का मोहक नारीत्व इस बाहर से न दिखाई देनेवाली आग में दह-दहकर रक्तहीन, मज्जाहीन होता जाता है.

जो न होना था,वही हुआ. कमला को उसके पति-परिवार ने सदा के लिए छोड़ दिया. कलंक की सारी अकथनीय लज्जा को छोड़कर शिवा ने चंदू की बात सुनी. वह कमला के ससुराल के लोगों से बात करने गया. उसके सुशिक्षित पति से तरह-तरह से आरजू-मिन्नतें कीं. पर वे लोग तनिक न पसीजे. कमला को बुलाने के लिए— अपने घर में स्थान देने

ओहदा

संत चुआंग त्सू मछलियां पकड़ रहे थे कि च्यू राज्य के बादशाह ने अपने दो उच्चाधिकारी उनके पास संदेश देकर भेजे कि वे उसके मुख्य मंत्री बनकर च्यू राज्य की जिम्मेदारी संभालें.

सुनकर चुआंग त्सू उसी प्रकार मछलियां पकड़ने में व्यस्त रहे और अधिकारियों की ओर मुंह मोड़े बिना उन्होंने कहा, ''मैंने सुना है कि च्यू राज्य में एक बहुत बड़ा पवित्र कछुआ पिछले तीन हजार साल से मरा पड़ा है और बादशाह ने उसे बड़ी सावधानी से एक संदूक में बंद करके अपने पूर्वजों के मंदिर की बलिवेदी पर रखा हुआ है. क्या वह कछुआ यह चाहेगा कि उसके अवशेषों को सुरक्षित रखा जाये, या चाहेगा कि वह जीवित रहे और किसी पोखर के कीचड़ में अपनी दुम हिलाये?''

''बेशक वह जीवित रहना पसंद करेगा,'' अधिकारियों ने कहा, ''और चाहेगा कि कीचड़ में अपनी दुम हिलाये.''

''तो फिर जाओ!'' चुआंग त्सू ने कहा, ''मैं भी कीचड़ में अपनी दुम हिलाना चाहता हूं.'' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शादी से पहले और बाद ताकत व जवानी के लिए मिलें या लिखें

मिलने का समय :
सुबह 11 से 1, शाम 6 से 7.30
रविवार सुबह 11 से 1 (केवल)

कीमती पुस्तक पत्र लिखकर मुफ्त मंगवाएं

अगर आप कई जगह से इलाज करवाकर भटक चुके हैं तो आईए, हम आपको ताकत व जवानी की दौलत से मालामाल कर दें। हमारे खानदानी शफ़ाख़ाना के चार पुश्तों से चले आ रहे कीमती नुस्ख़े जो किसी ज़माने में सिर्फ राजे-महाराजे, खान, नवाब व रईस-लोग ही इस्तेमाल कर सकते थे, अब आप भी हमारे उन कीमती शक्तिवर्धक खानदानी नुस्ख़ों को इस्तेमाल करके अपनी खोई हुई सेहत, ताकत व जवानी फिर से प्राप्त करके दीर्घायु तक सुखी विवाहित जीवन का भरपूर लुत्फ उठा सकते हैं। अगर आप बचपन की गलतकारियों की वजह से अपनी ताकत व जवानी खत्म कर चुके हैं, तो परेशान न हों। हमारे सैक्स स्पैशलिस्ट (Sex Specialist) से जल्द मिलकर या लिखकर जल्द लाभ उठाएँ। अपने दिल की बात आज ही डॉक्टर साहब से स्वयं बता दें या लिख दें। अधिकतर पुरुष शर्म, संकोच या अपनी कमजोरी छिपाकर विवाहित जीवन का पूर्ण आनन्द प्राप्त नहीं कर सकते। ऐसा करने से आपका जीवन नष्ट हो सकता है। लेकिन समय पर सही सलाह और सही इलाज से दुख को सुख में बदला जा सकता है। खानदानी शफ़ाख़ाना दिल्ली में कई मरीज आकर दिल की मुराद पाते हैं।

Note : पत्र व्यवहार से भी इलाज होता है। जो लोग नहीं आ सकते, पत्र में पूरी तफसील लिखकर घर बैठे मशवरा व दवाएँ प्राप्त कर सकते हैं। पत्र व्यवहार गुप्त रखा जाता है। दुनिया के कोने-कोने से खानदानी शफ़ाख़ाना के इलाजों के लिए मनी आर्डर, ड्राफ्ट, पौंड, डालर इत्यादि आते हैं

Note : विदेशों के लिए जरूरी सूचना

हमारे इलाज भारत के इलावा विदेशों के हर मुल्क में भी जाते हैं। विदेशी भाई रकम एडवांस में भेजें। दवाएँ हवाई जहाज से भेजी जाती हैं।

खानदानी शफ़ाख़ाना

4/12, पहली मंजिल (नज़दीक ब्राडवे होटल)
आसफ अली रोड़, नई दिल्ली -110 002
फोन : 267709, 269650

को तैयार न हुए. चंदू को उसके मुंह पर बदचलन और सीता की मां को छिनाल कहा. चंदू से अधिक न सुना गया. वह उमा जैसा अपाहिज मन लिये ग्लानि की कालिमा में डूबा लौट आया. मां को सब बताते समय उसका मुंह विदीर्ण हुआ जा रहा था. शिवा ने उसकी इतनी छलछलायी आंखें आज तक न देखी थीं. पर उसके चेहरे पर अद्‌भुत शांति थी जो उसके तेज से झुलस-झुलसकर भी स्थिर, अकंप थी. बोली, "तुम देखना भैया! इन पापियों का पाप इन्हें खा जायेगा. भगवान अभी मरा नहीं है." चंदू को लगा जैसे वह अपनी शील-शुचिता के चीर-हरण जैसी अपमान-पीड़िता मां के सामने अपना अभिशप्त विधुर मुख किसी प्रकार नहीं उठा पा रहा है.

कमला ने गांव की प्राथमिक कन्याशाला में नौकरी कर ली. मां ने वंश-परंपरा– घर की, पुरखों की दुहाई दे-देकर उसे बारहा रोका पर चंदू ने मां को शांत कर बहन को नौकरी करने दी. इसी में वह अपना विषम दुख दाह भूल सकेगी. उमा को किसी मृतक की भांति बिस्तर पर छोड़कर घर बाहर का काम संभालने का शिवा का वही क्रम चलता रहा. सीता यों तो बिलकुल ठीक थी पर आठवीं कक्षा के आगे न बढ़ पायी. छाती की किसी मुंदी चोट की तरह अपनी और माता की सारी अंतर्ग्लानि को सहन करता हुआ चंदू सीता के ब्याह की चिंता में डूब गया. वह सोलह वर्ष की ही थी पर शरीर के उभार चढ़ाव में बीस से कम न लगती थी. शिवा उसे देखकर कभी-कभी दहल जाती थी. उसके विषाद की रेखाएं बेटी के पास बैठते ही और गहरी हो जाती थीं.

चंदू के अनेक बार मना करने पर भी शिवा का सीता की चढ़ती जवानी को कोसना कम न होता था.

दोनों लड़कियों के प्रति तिक्त घृणा से भरपूर होने पर भी शिवा का मन आत्मा के छोर तक अंसुआ उठा जो न जाने कैसे बहुत दूर परलोक में बलई मिसिर की मूर्तिमान आत्मा के पास जा पहुंचा था.

सीता के लिए एक दुहाजू लड़का तय हुआ. चंदू तो हिचक रहा था– यद्यपि पत्नी ने कोई संतान न छोड़ी थी. पर 23-24 वर्ष का दोहरे बदन का स्वस्थ तैयार युवक था और सीता जैसी भरी-पूरी के लिए ऐसी ही जोड़ी ठीक रहेगी, इसे भी भली भांति अनुभव करता था. शिवा ने पहले ही कुंवारे और दुहाजू का भेद न मानकर हामी भर दी थी. पैसे की मांग कुंआरे वर से कम न थी. मां को बिना बताये दो बहनों के ब्याह में आधी जमीन बेची जा चुकी थी. इस बार बात शिवा से कैसे छिपती? चंदू उसी दौड़-धूप में लगा है– जमीन न बेचकर इस बार आम का बगीचा बेच रहा है, यह जानकर उसके नीचे से जमीन खिसक गयी. बोली, "बगीचा नहीं बिकेगा! तुम्हारे दद्दू ने दीदी (चंदू की मां) के सामने उसे लगाया था. दोनों की निशानी मैं गैर के हाथ न जाने दूंगी. उनका, मेरा, बहुरिया का जेवर मेरे पास रखा है. क्या होगा इस सबका! इसे बेचकर नकदी की मांग पूरी कर दो. सोने का भाव भी पहले से बढ़ा-चढ़ा है. उमा के ब्याह के लिए भी बचा लेना."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न जाने कैसे विकलांग उमा के शरीर की सारी करुण असमर्थता और फूटी किस्मत को जानकर भी शिवा उसके विवाह की बात जाने-अनजाने बोल ही जाती थी. मां का आखिरी प्रजनन के प्रति अवचेतन स्नेह था यह, या उसी से जन्मे चिर सेवित स्वप्न का मोह जो उसके प्रति धुंधुआती कर्कश घृणा में भी उभर आता था.

और भी दो-तीन लड़के चंदू की दृष्टि में थे पर लड़की से जोड़ी न मिलती थी. कुंडली भी इसी से अच्छी बन रही थी. कमला की कुंडली भी तो अच्छी मिली थी पर अंत में कैसी अपमानभरी वेदना उसे बदी थी. चंदू का विश्वास इस ढकोसले से हट चुका था. पर शिवा का अंध विश्वास उसे पकड़े बैठा था. चंदू मां से सारे गुणदोष बताकर ही तय करता था— यद्यपि अपने में खोयी-खोयी और चंदू के बैठने पर अपने को ढूंढ पानेवाली शिवा ने उसी पर सब छोड़ दिया था. जीवन के रंगमंच पर वह पति के समय जैसी-ही विश्वास में डूबी अधीनता की भूमिका निभा रही थी.

कमला, विमला की तरह सीता का ब्याह भी धूमधाम से हुआ. मोटी-ताजी सीता को अधिक से अधिक सिकोड़-सिमटा कर मंडप में बैठाये कमला का मन अपने ब्याह की बात बिसूर-बिसूरकर व्याकुल हो उठता था. इसी छोटी बहन को भैया ने बीसों बार शहर ले जा-जाकर हजारों रुपये का इलाज कर और मां से बराबर उसका पक्ष ले-लेकर झगड़ा कर अच्छा किया है— आठवीं तक पढ़ने की बुद्धि— सब ठीक-ठाक समझने बूझने का भावबोध उन्हीं के उपचार-सेवा से उसे मिला है. उसका ब्याह हो रहा है— ससुराल जाने लायक हो पायी है, क्या कम भाग्य की बात है. अभागिन उम्मी वैसी की वैसी रह गयी. भैया तो उसके इलाज के लिए भी वैसे ही तत्पर थे पर खंडित अंग कहां से लाये जाते? कमला शिवा की तरह भाई के प्रति भक्ति-भाव से भर गयी. मां के किसी प्रकार तैयार न होने पर आज तीसरी बार वे कन्यादान कर रहे हैं. दूर ओसारे में लगभग अर्धमूर्छित मां को संभाले विमला बैठी है. सारा घर औरत, मर्द, रिश्तेदारों से भरा है. यौवन के प्रथम चरण में ही लगे आघात के फल-स्वरूप अपनी आयु से लगभग दूनी समझदार हो आयी कमला को मां की, भाई की और अपनी जीवनशून्यता आछन्न किये है. गुड़मुड़ी-सी बहन को भली भांति संभाले वह पत्थर-सी भावहीन बैठी है.

सीता चली गयी. विमला भी गयी. शिवा का मन जितना तीन बेटियों को ब्याह कर हलका हुआ था उतना उमा की चिंता से अब उठते-बैठते घिरा रहता. चंदू का स्वास्थ्य इतना गिर गया था कि उसका श्रीहीन चेहरा और नीली पड़ती जाती आकृति शिवा से देखी न जाती थी. प्रबल पुरुष-सत्ता की सारी सजीव झलक जैसे सदा को तिरोहित हो गयी थी. जिस कमनीय कांति की ओर पति के जीवन काल में एक बार नजर पड़ जाने पर विमाता शिवा की दृष्टि मुश्किल से हटती थी उसे देखकर आज रुलाई आ जाती है. शरीर से पंगु पर बड़ी हो आयी उमा को अब भैया उठा कर ले जाना भूल जाते हैं तब वह किसी न किसी प्रकार घिसटकर उनके पास पहुंच जाती है, जहां वे अवसन्न पड़े रहते हैं. कुछ देर तक भैया को वैसा ही शिथिल आंख मूंदे निश्चेष्ट पड़ा रहते देखकर वह उसी कठिनता से घिसटकर रसोई बनाती मां के पास आती है,

"अम्मा, भैया को क्या हो गया है? मुर्दा जैसे पड़े हैं."

"चुप अभागिन— कैसा अमंगल बोलती है"— कहती हुई झपटकर शिवा लड़के के कमरे में आती है. तवे पर सिकती रोटी पड़ी रह जाती है. पीछे-पीछे घसिटती उमा फिर उसी ओर बढ़ती है. मां उसे कभी कहीं उठाकर ले जाना जानती नहीं.

शिवा अब बिलकुल बदल गयी है. चंदू के सिर पर हाथ फेरने में, उसे छूने में कोई संकोच नहीं होता. जब छोटा रहा होगा तब ब्याह कर बलई मिसिर ले आते तो जैसा करती वैसा करती है. चंदू की देह हिलाकर कहती है, "भैया भैया! इतने निढाल लेटे हो, क्या बात है?"

चंदू शिवा का स्पर्श पाते ही आंखें खोलता हुआ उठ बैठता है. मां के हाथ की गरमी बता रही है वे चूल्हे के सामने से उठकर आयी हैं. उनके मुख पर वही निरीहता, वही दरिद्र आग्रह, वही विकलता छायी है जो एक मात्र पुत्र की जननी मां के सगेपन में होती है, "तुम चौके में जाओ मां. मैं थोड़ा थक गया था. तंद्रा छा गयी थी. तुम्हें कैसे..."

"उमा तुम्हारे पास आयी थी. कमला तो घंटे भर पहले स्कूल गयी. उसी ने जाकर मुझे डरा दिया. तुम तो जाओगे नहीं, मैं वैद्य जी को बुला लाऊंगी. अब तो गांव में डाक्टर भी है... लगता है महीनों की बीमारी तुममें उतर आयी है..."

उम्मी को तो चंदू उठाकर लाया नहीं. वही घिसटती हुई आयी होगी. वैसे ही पूरा ओसारा, आंगन पार कर मां से कहने लगी. वैसी ही कढ़िलती जरूर आ रही होगी. यही सोचकर चंदू चारपाई से उठकर ओसारे की ओर बढ़ा जिसे उमा ने अभी आधा ही पार किया था. झपटकर उसे प्यार से गोद में उठाये शिवा से बोला, "तुम चौके जाओ. कमला दोपहर की छुट्टी में खाने आयेगी. बारह बज गया है."

शिवा ने अपने को सर्वथा भूलकर कहा, "नाश हो इन अभागिनों का! तुम्हारी ऐसी गति बना रखी है." कहते-कहते उसकी दृष्टि चंदू के विदीर्णता-कातर मुंह पर गयी तो वह अवाक् चौके लौट आयी. बिना लड़के के कुछ कहे शिवा को अपने कहे भर्त्सना के शब्द आरे की तरह काटते रहे. आज पहली बार उसकी आत्मा क्षत-विक्षत हुई थी. स्कूल से आने पर कमला को यह सब बताये बिना उससे न रहा गया. कमला ने डूबते कंठ से केवल इतना कहा, "भैया उम्मी को बेहद चाहते हैं. हम सबमें वही सबसे... तुम उसे कुछ न कहा करो. वे और दुखी हो जाते हैं."

मां-बेटी एक दूसरे का मुंह ताकती रहीं. कुछ देर मरघट की सी चुप्पी दोनों की विषादाहत मुद्रा पर छायी रही.

तीसरे पहर कमला को घर पर छोड़कर शिवा सचमुच वैद्य जी के घर पहुंच गयी. इतने दिनों में सभी उसके खुले निर्भीक स्वभाव की चर्चा सुन चुके थे, यद्यपि वह आज शायद पहली बार गांव में किसी के द्वारे आयी थी. वैद्य जी उसे घर चलने को कहकर पास बैठे मरीजों के जाते ही आने को बोले. शिवा ने देखा— चंदू सुबह जैसा ही निढाल पड़ा था. बीच-बीच में आंख खोलकर एक ओर शांत उदास बैठी उमा को देख लेता था जो दिन भर घिसट-घिसटकर उसके पास आती रहती थी. मां के वैद्य को बुलाने जाने की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी से सुनकर चंदू अचकचा रहा था, तब तक शिवा आ पहुंची. उमा को गोद में लेकर चंदू इधर-उधर की बातें कर रहा था. शिवा की आंखों में संयम से काम लेने पर भी घृणा की लौ लहक उठी. बोली, "तुम्हारा पीछा क्यों नहीं छोड़ती यह अपाहिज! इतना बड़ा घर पड़ा है, इसे कहीं ठिकाना नहीं!" पर चंदू के मुंह पर उमड़ आये याचना के असह्य ज्वार को देखते ही उसने फौरन बात बदल दी. "वैदराज आ रहे हैं. जैसा वे कहेंगे तुम्हें वैसे चलना होगा... कौन बीमारी सी बीमारी है यह! सारा खून सोखे बैठी है."

चंदू के कुछ कहने तक वैदराज आ गये. पहली बार उमा को गोद में उठाकर शिवा ने सामने जमीन पर रख दिया. वैद जी नाड़ी को ध्यान से देखकर तरह-तरह के प्रश्न करने लगे चंदू को जैसे इस संबंध में कोई रुचि ही न थी. शिवा ही सिरहाने खड़ी बीच बीच में बोल देती थी. अनुभवी वृद्ध वैद्य के मुख पर गंभीरता बढ़ती पाकर शिवा शंकित हो उठी. मंदज्वर का प्रकोप– पित्त निष्क्रिय और शक्तिहीनता का प्रतिदिन बढ़ता वेग. वैदजी ने कहा, "महीनों का मर्ज मालूम पड़ता है. खैर असाध्य तो नहीं पर कष्टसाध्य है. जीवन के प्रति घोर अरुचि ऐसी जो नाड़ी तक से साफ झलकती है..."

शिवा की आंखें गीली हो गयीं. बोली, "आपसे क्या, पूरे गांव से कुछ नहीं छिपा है. घर फूंक तमाशा देखकर तीन-तीन को क्या ब्याहा. मेरी कोख भैया के लिए काल हो गयी. यह छाती का पीपल अभी बैठी है. आप ऊंची से ऊंची दवा दें... पैसे का खयाल न करें. सेवा में कमी न होगी."

बलई मिसिर की अधबूढ़ी विधवा गृहिणी को आज पहली बार वैद्यजी ने सिर से पैर तक देखा– उनकी मनोव्यथा जानी. बोले, "मैं तो सब करूंगा ही पर इन्हें शरीर और मन का पूरा आराम चाहिए. शक्ति बढ़ते ही सुबह वायु-सेवन– फिर दिन-रात पूरा विश्राम. कोई उत्तेजना या तनाव इन्हें न हो. आप लोग इनके मन को कण भर न दुखने दें. राजयक्ष्मा होते देर न लगेगी. भगवान की दया से कफ अभी शुद्ध है पर पित्त-वायु दोनों बिगड़े हुये हैं. चंदू भैया, तुम खुद पढ़े-लिखे समझदार हो. मां का संताप समझो. नियम से दवा खाओ. सारी चिंता छोड़ दो."

चंदू का इलाज शुरू हो गया. शिवा की रुलाई उसे चारपाई पर पड़े रहने, समय पर दवा खाने और हर प्रकार के पौष्टिक खान-पान के लिए मजबूर किये थी. दिन में बार-बार शिवा आकर देख जाती. उमा को नीचे बिछे बोरे पर शांत निश्चेष्ट पड़े चंदू को दयनीय दृष्टि से देखते पाकर मन ही मन न जाने क्या क्या सोचती घर के काम में लग जाती. सीता भी स्कूल के घंटे छोड़कर भैया के पास ही रहती. चंदू झल्लाकर कहता, "मुझे कमरे में कैदी बना रखा है! मुझे हुआ क्या है जो यह सब किया जा रहा है? बाहर निकलूं– तो बाग बगीचे का जो बचा हुआ है उसे संभालूं."

प्रत्येक बीमारी अपने में एक अराजकता होती है. अस्वीकृति और विरोध की मानसिकता. चंदू ने शिवा के रोने-धोने पर ध्यान न देकर घर-बाहर का काम पूरे श्रम के साथ देखना शुरू कर दिया. भैया की गोद में जाकर, उनके द्वारा ढोयी जाकर इतने दिनों की अवसन्न उमा निहाल हो उठी. दवा खाने में भी लापरवाही हो चली. असहाय शिवा रोकर रह गयी.

उमा की औसत बुद्धि में कमी न थी. शरीर की कुरूप विछिन्नता ने मस्तिष्क को क्षति नहीं पहुंचायी थी. उसका स्कूल जाना संभव नहीं है, यह सोचकर चंदू ने उसे घर पर पढ़ाना शुरू कर दिया. लड़की का हीनता का भाव कुछ तो कम होगा और उसे जीवन इतना भूभार न लगेगा. प्रत्येक वार्तालाप को भांपने की उसकी क्षमता शिवा को पसंद न आती थी. अब चंदू का अपना इलाज भूलकर घंटों बाहर मेहनत करना और घर में उमा को इतना सिर चढ़ाना उसे बिलकुल न भाया. उसका श्रीहत प्रौढ़त्व अब बराबर के सगे लड़के के सामने जैसा चंदू के सामने भी संकोच त्याग चुका था, जो लड़कियां जनते-जनते और पालते-पोसते अधेड़ खुलेपन का रूप ले चुका था. झल्लाकर बोली, "इस नासकोटी को तुमने फिर लपेटना शुरू कर दिया! गोद में लादे इस कमजोरी में भी गांव में घूमते हो! क्या कहते होंगे इस फूहड़ को तुम्हें ढोते देखकर?" कहते-कहते शिवा सचमुच भूल जाती कि उमा के लिए उसकी या बहिन द्वारा

जवानी का जोश

सत्यजीत राय

फिल्म सोसायटी प्रारंभ करने के दो वर्ष पूर्व मैंने 'पथेर पंचाली' के एक संक्षिप्त संस्करण के लिए विवरणात्मक चित्र बनाये थे. उस समय मुझे ऐसा लगा कि इसके भीतर एक फिल्म है. यह एक उड़ता-सा खयाल था. लेकिन उसके बाद जब भी मैं कोई बंगला कहानी या उपन्यास पढ़ता तो मेरा दिमाग उसमें सिनेमा की संभावनाएं खोजता.

ऐसा ही एक उपन्यास रवींद्रनाथ का 'घरे-बाइरे' था. उन दिनों मैं एक ब्रितानी विज्ञापन एजेंसी में कलाकार के रूप में नौकरी कर रहा था. अपने खाली वक्त में शौक के तौर पर कभी-कभी फिल्म की पटकथा लिखता था. इसी तरह 1948 के करीब कभी मैंने 'घरे-बाइरे' की पटकथा लिखी. जब एक निर्माता को यह पसंद आ गयी तो वह एक खास तरह का अनुभव था. उनके साथ एक अनुबंध पर हस्ताक्षर भी हुए. तय हुआ कि मेरे मित्र हरिसाधन दास गुप्ता (प्रसिद्ध लघुचित्र व वृत्तचित्र निर्देशक) इसका निर्देशन करेंगे. मेरा काम पटकथा लिखकर समाप्त हो गया था.

निर्माता ने बाद में पटकथा पर पुनर्विचार कर उसमें कुछ परिवर्तन करने का सुझाव दिया. जवानी के जोश में मुझे यह बर्दाश्त नहीं हुआ. फिल्म क्षेत्र में पहले ही अवदान पर ऐसा समझौता कर अपने आपको कलंकित कैसे कर सकता था! बात बढ़कर अटक गयी. और योजना खत्म हो गयी. तब भले ही दिल टूट गया था, किंतु आज पैंतीस वर्षों बाद यह कह सकता हूं कि उस फिल्म का नहीं बन पाना एक सौभाग्य की बात थी. अब उस पटकथा को पढ़ने पर लगता है कि वह कितनी सतही और हालीवुड से प्रभावित थी. □

(आत्मकथा से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कही गयी कोई भी अपमानकर बात चंदू को बिद्ध कर देती है. न जाने कहां की कैसी ममता है इस बूढ़े हो आये भाई की उसके प्रति! मां का अपनी जायी असहाय, असमर्थ संतान के प्रति ऐसा विवेकहीन प्रतिरोध चंदू को अमानवीय लगता—वह स्तब्ध रह जाता. कभी-कभी मां की पूरी जिंदगी उसकी आंखों के सामने घूम जाती है तो वह भीतर उमड़े जल से भीग जाता.

चंदू की बीमारी बढ़ती चली जाती थी. शिवा जब तब डाक्टरी इलाज कराने की ज़िद करती. वैद की दवा से फायदा न होगा. सीता को लेकर इतनी बार लखनऊ गये थे. जाकर अपने को दिखाओ—कमला को साथ ले लो. गांव का डाक्टर तो ऐसा ही है. तभी तो वैदजी के सामने उसकी नहीं चलती. पर पूरा शहर एक से एक बढ़कर डाक्टरों से भरा पड़ा है. मैं बगीचा बेच दूंगी. तुम खर्च के ख़याल से नहीं जाते.

चंदू कठोरता के साथ नाहीं कर देता. शिवा के हठ करने पर झुंझलाता—कभी कभी आवेश में कांपने लगता. उमा मां और भाई का यह रूप देखकर रोने लगती. चंदू उसे उठाकर दूसरी ओर चला जाता. शिवा रोकर रह जाती.

बलई मिसिर के साथ ब्याह कर आने के बाद शिवा एक बार भी मायके न गयी थी. पिता की मृत्यु तक में नहीं. पर चंदू ने औचित्य की मर्यादा पालन की थी. तेरही-बरखी दोनों में गया था. इधर चंदू की निर्बलता बढ़ती जाती थी. खांसी आती तो छाती में जैसे सूखा पड़ गया हो. कफ न निकलता—दर्द होता. कमला मना करने पर भी छाती में वैद जी का दिया लेप गाय के ताजे घी के साथ मलती.

शिवा की मां के देहांत का समाचार आया तो वह शोक विह्वल हो कर देर तक रोती रही. चंदू इधर चार-पांच दिन से ज्यादा बेहाल था. बुखार बराबर बना रहता था. मां से बोला, तुम्हें जाना चाहिए. नाना के मरने पर नहीं गयी. लोग क्या कहेंगे. पिछली बार मामा मामी सभी कह रहे थे. हमारे यहां सभी अवसरों पर वे लोग आये... संबंध निबाहा.

शिवा न गयी. चंदू को इस दशा में वह छोड़ न सकी. कमला को भेज दिया जो भैया को ऐसी गंभीर बीमारी में पाकर बेमन गयी. चंदू का कहना कैसे टालती. मैं जाने में सर्वथा अशक्त... मा जा नहीं रही... तुमको जाना होगा. शिवा की लड़कियों में किसी ने ननिहाल का मुंह न देखा था. मां ने वहां से जैसे कोई रिश्ता रखा ही न था. कमला को नानी के दुख से अधिक भैया की चिंता सता रही थी. पर भैया ने तेरही तक वहां रहने को कहा है. मजबूरी है—स्कूल से छुट्टी ले ली है.

उमा बड़ी होकर भी वैसी ही चलने-फिरने में हाथों के संचालन में अक्षम घर के किसी काम की नहीं. उसके सोच में शिवा का दुख दूना हो जाता. परित्यक्ता कमला का दुख तो समय ने धीरे-धीरे भुला-सा दिया था पर उमा तो छाती पर शिला जैसी जमी थी. चंदू से उसके बारे में कुछ भी बात करने में उसे अमानवीयता लगती. उसका नारी जीव जानता था कि इसी अभागिन के प्रति प्यार और उसी को लेकर दुश्चिंता ने गृहस्थी के भार से टूटते गये बेटे को इतना ढहा दिया है कि अब तो उसके उठ खड़े होने में भी संदेह होता है.

10% की छूट

साहित्य अकादेमी
द्वारा
प्रकाशित कुछ नयी पुस्तकें

आजादी	लेखक	:	चमन नाहल	१९८८	रु. ६०
हिंदी कहानी-संग्रह	संपादक	:	भीष्म साहनी	१९८८	रु. ५०
कन्नड़ लोक कथाएं	संपादक	:	सिपी लिंगण एवं जी. एस. परमाशिवय्या	१९८८	रु. ५०
रामचंद्र शुक्ल संचयन	संपादक	:	नामवर सिंह	१९८८	रु. ४०
ग्यारह तुर्की कहानियां	अनुवादक	:	मस्तराम कपूर	१९८८	रु. २०
अबुल कलाम आजाद	लेखक	:	अब्दुल कवी दस्नवी	१९८८	रु. १५
गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'	लेखक	:	नरेशचंद्र चतुर्वेदी	१९८८	रु. ५
परमानंद अलमस्त	लेखक	:	ओम गोस्वामी	१९८८	रु. ५

डाक व्यय निःशुल्क

शुल्क मनीआर्डर/बैंक-ड्राफ्ट द्वारा सचिव, साहित्य अकादेमी के नाम भेजें.
अधिक जानकारी और निःशुल्क सूचीपत्र के लिये लिखें :
बिक्री प्रबंधक :

साहित्य अकादेमी,

'स्वाति', मंदिर मार्ग,
नई दिल्ली-११० ००१
दूरभाष : ३५३२९७

रवींद्र भवन	२९, एल्डाम्स रोड	१७२ मुंबई मराठी ग्रंथ	ब्लॉक V-बी
३५, फीरोजशाह मार्ग,	तेनाम पेठ	संग्रहालय मार्ग, दादर,	रवींद्र सरोवर स्टेडियम
नई दिल्ली-११० ००१	मद्रास-६०० ०१८	बंबई-४०० ०१४	कलकत्ता-७०० ०२९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिंदगी और सच

सर्वश्रेष्ठ हास्य अभिनेता, चार्ली चैपलिन का पुत्र बीमार पड़ा तो डाक्टर ने कहा कि इलाज के अलावा उसे हर समय प्रसन्न रखना जरूरी है. उसके पास कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो उसे ऐसी बातें सुनाये कि वह सुनकर हंसे और खुश रहे.

चैपलिन ने अपने एक मित्र को बुला भेजा, जो खुद अच्छा हास्य अभिनेता था और उसे पुत्र के पास रहने के लिए कहा.

किसी ने चैपलिन से पूछा, "पुत्र के खुश रखने के लिए अपने मित्र को बुलाने की क्या जरूरत थी?"

चैपलिन ने कहा, "मेरी एक दिन की शूटिंग की कीमत हजारों डालर हैं. मैं अपना इतना नुक्सान क्यों करूं, जबकि मेरा मित्र सिर्फ मित्रता के नाते मेरे पुत्र को खुश रख रहा है?" □

हे भगवान! जीवन का यह सहारा भी छीन लोगे तो यह निपूती कहां रहेगी? कमला की पूरी जवानी उसे जीवित वैधव्य को कैसे काटेगी? उमा का क्या होगा... क्या होगा इस भूत जैसी घर की प्रेतनी बनी उसका. अकारथ ही रह गयी वह... पति परिवार के लिये बेकार गयी.

शिवा को आंगन पर टंगा पूरा आसमान काली काली छायाओं से ढका लगता.

कमला को ननिहाल गये अभी तीन ही दिन हुए थे. चंदू सहसा बुरी तरह बीमार हो गया. क्या हो गया था उसे जो कुछ भी खा न पाता. खांसते-खांसते न जाने कितना बड़ा बलगम का लौंदा गले में अटक जाता तो श्वासावरोध होने लगता. शिवा को पहली बार ध्यान देने पर लगा कि सिर के घुंघराले बाल इतने सफेद हो गये हैं. न जाने क्यों उसकी आंखों से झरझर आंसू गिर चलते. धोती के छोर से उन्हें पोंछते पाकर भी चंदू अक्सर एक-आधा शब्द ही बोल पाता—सिर्फ आंखें फाड़े ताकता रहता. न जाने इतनी शक्ति कहां से आ जाती जो नीचे बोरे पर बैठी अपनी ओर आंखें गड़ाये उमा की ओर अपना शरीर मोड़कर दोनों बाहें फैला देता. उमा पंगु कसमसाहट के फड़फड़ाहट चारपाई की पाटी पकड़ने को अकुला उठती.

ऐसी असहाय, निखलंब शून्यता शिवा को कभी नहीं लगी. पति के मरने के बाद भी नहीं. किसी काम में मन लगाये न लगता. घूम फिर कर वैदजी को बुला लाती जो रोगी की एकाएक इतनी बिगड़ गयी हालत पर स्वयं हैरान थे. बदल-बदलकर रस देते पर जैसे मरीज की कंठनलिका के पार ही न उतरते. जीवित व्यक्ति की नाड़ी उतार-चढ़ाव की ऐसी भंगिमाओं में डूबती-उतराती कि उसका छंद छूट टूट-टूट जाता. उमा भी मां की तरह शिथिल पड़ती जाती भयभीत निराशा से वैदजी की आंखों में तैरती किंकर्तव्यविमूढ़ता को देखती जो रोगी के वाकाबंद होने पर हैरान थे. अब तो वे शिवा के बिना बुलाये भी आ जाते थे.

उमा का भूख से मुरझाया चेहरा देखकर मां की ममता जाग उठी. कभी चित, कभी उलटी, कभी पेट के बल लेट कर भी बोरे पर छटपट करती लड़की को गोद में उठाकर खाने को ले जाते शिवा ने कहा, "अभी आती हूं भैया! अपने मुंह से यह खाना मांगेगी नहीं... यहीं बैठी भूखों मर जाएगी... मेरे जी की हत्या है यह."

चंदू की आंखों में आंसू के बूंद बनते बनते रह गये, मानो वहां का भी सारा जल सूख चुका हो.

उमा को खिलाकर—चार कौर खुद खाकर शिवा ने अस्तव्यस्त चौके को संभालना शुरू किया. एक तरफ अरबी, आलू बिखरे पड़े थे. बरतन भांड़े, खेत से कटकर आया नाज, आम का चूरा, दूध-दही के अधभरे खाली बरतन जहां तहां पड़े थे. तालाब से आये सिंघाड़े सूखने को डालने थे. कमला अपनी पहनने-ओढ़ने की चीज वस्तु जहां जैसी थी वैसी छोड़ गयी थी. दो दिन से शिवा को ध्यान देने का समय ही न मिला था. सारे गांव के स्त्री-पुरुष भैया की तबियत पूछने आते. शिवा को उन्हें भी देखना रहता था. उमा तेजी से घिसटती हुई भैया के पास चली गयी. तब तक पास पड़ोस की औरतें आ गयीं. चंदू के एकाएक मरणासन्न हो जाने की बात किसी से छिपी न थी. सीता की ससुराल-वालों द्वारा चंदू और शिवा को लेकर लगाये गये अवैध अपवाद में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों ने ज्यादा रस लिया था. चंदू की एकाएक हो गयी असाध्य बीमारी में अधेड़ विमाता की मनोदशा भांपने का प्रपंच भाव अधिक था—संवेदना कम. सहन-प्रति सहन की मूर्ति बन गयी शिवा इस सब्की आदी हो चुकी थी. औरतों का मन समझना औरतों के लिए आसान होता है.

उमा भाई की चारपाई के नीचे उसी बोरे पर फिर जाकर बैठ गयी. कमरे की ऊंची देहरी से उसने भैया की ओर देखा—कुछ देर वहीं से उनकी बिलकुल फीकी पड़ी आकृति निहारती रही. उसके देखते-देखते एक मक्खी न जाने कहां से आकर उनकी नाक पर बैठ गयी. भैया को उसे उड़ाते न पाकर उसने वहीं से किसी प्रकार ताली बजाकर उसे उड़ाना चाहा. टेढ़े पड़ गये होंठों से भैया की पुकार उसने सुनी, "उम्मी!"

तेजी से बिना पैर की बछिया की तरह घसिटती वह चारपाई के निकट आकर अपने को ही उठाने लगी. कैसी उछाल उसने अपनी पंगुता के भीतर से निकाली जो दूसरे क्षण वह उनकी चारपाई पर थी.

रोगी में आखरी समय कैसी शक्ति आ गयी जो उसके हाथ आप से आप उमा के घबराहट से अचकचाये मुख पर फिरने लगे. मां की सारी डांट-फटकार भूलकर उसने अपना सिर भैया की तृषित गोद में रख दिया. फिर एकाएक भैया के सिर को निष्प्राण लटक जाते देखकर वह जोर से आर्तनाद कर बैठी. तब तक उनकी पुतलियां उलटते भी अकेले उसी ने देखा.

बाहर उमा की आर्त पुकार को सुनकर मां एकदम चंदू के कमरे की ओर भागी. बीस वर्ष पहले मरे पति का चेहरा आंखों के आगे झूल गया. चंदू की मृत गरदन में दोनों तुड़े-मुड़े हाथ डाले उसकी छाती से सटी अर्धविसंज्ञ उमा मां को अपने पास पत्थर-सी निस्पंद खड़ी पाकर उसकी वेदनाविदीर्ण आंखों से आंख न मिला सकी. चंदू के सर्द शव पर फिर अपना भयाकुल मुंह छिपाकर रह गयी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा. लक्ष्मीनारायण लाल

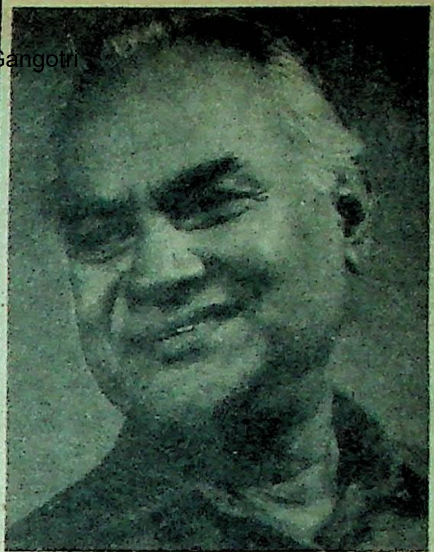

रचनाकार का आत्म संघर्ष

सुप्रसिद्ध कथाकार-नाटककार डा. लक्ष्मीनारायण लाल की पुण्यतिथि (20 नवंबर) के अवसर पर प्रस्तुत है उनके रचनाकार के आत्मसंघर्ष को सामने रखता विशिष्ट आलेख... जो सृजन की प्रक्रिया से गहरे में साक्षात कराता है.

अपने आप से अपना और मनुष्य-मनुष्य में आत्मीय संबंध स्थापित करना और संबंधों को सतत 'देखना', 'रचना' यही है अस्मिता मेरे रचनाकार की. रचनाकार की यह पहचान कोई मेरी नयी पहचान नहीं है. दरसल यही भारतवर्ष के रचनाकार चित्र की पहचान चिरकाल से रही है. जो कुछ भी मैं हूं—जितना जो कुछ मेरे संबंधों के दायरे में आता है— उनसे मेरा संबंध कभी शिथिल न हो, यही मेरे रचनाकार का संकल्प है. रचनाकार के संदर्भ में यह संकल्प विशिष्ट है. क्योंकि यह केवल शास्त्रोक्त नैतिक संबंध नहीं, ये हृदय के संबंध हैं, इसीलिए किसी भी अवस्था में हम रचनाकार स्वयं अपने आप को और मनुष्य मात्र को अपने कार्य साधन के लिए उपयुक्त मशीन या मशीन का एक अंग नहीं समझते. इस बात के अच्छे बुरे दोनों ही पक्ष हो सकते हैं, पर यह हमारी जातीय परंपरा है— भारत की ही नहीं, यह सारे पूर्वी देशों, जगत की पहचान है. मतलब हृदय संबंध के द्वारा हम रचनाकार, नियोजन संबंध को संशोधित कर लेते हैं, तभी हम रचना कर पाते हैं. इसी में हमें विशेष दायित्व भी ग्रहण करना पड़ता है. संबंधबोध के इसी विशेष दायित्व से हमारा संघर्ष शुरू होता है. इस संघर्ष के दोनों पक्ष—बाहरी बुनियादी और भीतरी रचनाधर्मी— इतने प्रबल हैं कि उन्हें शब्दों में बताया नहीं जाता. आप इसी एक ही उदाहरण से मेरे रचनाकार के उस संघर्ष का अंदाजा लगा सकते हैं कि जब भी मैं कुछ लिखने बैठता हूं, तब भी मानव संबंधों के माधुर्य और विष को भूल नहीं पाता. और अपने जीवन के सारे अमृत-विष, जय-पराजय, माधुर्य-अपमान का पूरा दायित्व मेरा रचनाकार स्वीकार करता है. इसी स्वीकृति को अपने आचरण में ढालना और लगातार ढालते रहना, यही है बुनियाद मेरे रचनाकार के सारे संघर्षों की.

मैं एक भारतीय हिंदू रचनाकार हूं— इसे कभी नहीं भूलता न कभी भूलना चाहता हूं. इस भूल विस्मृति को ही मैं अपनी मृत्यु मानूंगा. तभी मेरे भीतर-बाहर का संघर्ष इतना प्रबल है. मुझे ज्ञान है कि सृष्टि के कण-कण में परमेश्वर का अंश देखनेवाले हिंदू समाज ने वर्ण या वर्ग के आधार पर किसी का भी निषेध करने की कभी अनुमति नहीं दी. हिंदू जीवन दर्शन की मान्यताओं और मर्यादाओं ने कभी इतिहास और अखबारों, प्रचार साधनों में से जीवन नहीं पाया. यह अनुभूत जीवन दर्शन है, एक संपूर्ण जिंदगी का— ऐसी संपूर्ण जिंदगी जिसे जानकर, लिखकर, रचनाकार ही नहीं— जिसे पूरी तरह से जी कर एक संश्लिष्ट समाज का निर्माण, इस उद्देश्य से किया था कि वह संपूर्ण सृष्टि-वसुधा को अपना घर, अपना परिवार माने—ऐसा हिंदू मानस और चित्त आज अपने आप में इस कदर सिमट-सिकुड़ क्यों गया. मेरी भीतरी संघर्ष यह है कि मेरा रचनाकार सत्य देखने कहने को प्रकट करने का साहस क्यों नहीं कर रहा. मेरे इस 'क्यों' की धार मेरे अपने ही अज्ञान, भ्रम स्वार्थ, भय, मोह और मजबूरियों को क्यों नहीं काट पाती.

मेरा यह संघर्ष पूर्ण प्रश्न तब पक्ष प्रश्न हो जाता है जब मैं यह देखता हूं कि इस 'क्यों' से लापरवाह अनुत्तरदायी व्यक्ति पूजा जाता है. इस 'क्यों' से जुड़े उत्तरदायी मनुष्य को समय धिक्कारता है. क्यों? और आज मेरे भीतर और बाहर इतना शोर सुनाई देता है कि समय बहुत बुरा है, सुंदर और सत्य की कहीं कोई जगह नहीं है. इस भयंकर शोर से मेरा रचनाकार अपने भीतर बाहर से इस कदर डरने लगा है कि कहीं स्पष्ट नहीं सूझता. ऐसे अंधकार में बहुत आंख गड़ाकर देखने से एक सच्चाई दिखती है कि कहीं 'संबंध', 'रिश्ते' घायल हो गया—और जब तक यह खंडित रहेगा है—उसी में से पैदा हो रहे हैं वे असंख्य कीटाणु जिनसे वैयक्तिक, सामाजिक तनाव पैदा हो रहे हैं.

मैं देखता हूं—देख रहा हूं कि जिस दिन मैंने अपने आप से, दूसरों से अपना रागात्मक संबंध तोड़ा, उसी दिन मेरा सामाजिक मन, चित्त टूट गया. मेरे नाटक 'व्यक्तिगत' में मेरा 'मैं' पात्र 'वह' के साथ एक खेल कर रहा होता है. उस दृश्य में 'वह' कहती है— ''मैं देख रही हूं, एक संपूर्ण आइना था, जो टूटकर असंख्य टुकड़ों में बिखर गया. अब उसके हर टुकड़े में वही मैं दिखता है और अपने आप को संपूर्ण कहता है...''

जब संबंधों का एक संपूर्ण भाव खंडित हो गया—और जब तक यह खंडित रहेगा तब तक यह टूटन टुकड़े दर टुकड़े बनाती जायेगी, हमें और हमारे जगत को. यह प्रक्रिया तब तक चलेगी जब तक उसी भाव को पुनः उसी संवेदनात्मक, रागात्मक जमीन पर ले जाकर भारतीय हिंदू चित्र से नहीं जोड़ा जायेगा, जहां रिश्तों की अनुभूति होती है, जहां रिश्ते जिये जाते हैं, यहीं जीना जहां रचना हो जाता है.

मैं इसी महाभाव को जी नहीं पा रहा हूं—यही मैं मेरे रचनाकार की तड़पन. संबंधों की घायल अवस्थाओं में से जो रिस रहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—उसका भयंकर दर्द मैं भोग रहा हूं. इसे कैसे कहूं, किससे कहूं, किस विद्या और भाषा में अभिव्यक्त करूं—कुछ समझ में नहीं आता. बस, तड़पता हूं और चुपचाप देखता रह जाता हूं. मुंह से कभी-कभार राम-राम कह उठता हूं और राम ध्वनि से कांप जाता हूं.

अक्सर मेरा रचनाकार मुझसे पूछता है कि आज क्या संभव नहीं कि उसी भाव के संबंधबोध से प्रत्येक व्यक्ति का सारे देश और परिवेश के साथ रागात्मक संबंध स्थापित किया जाये. हमारा सारा भक्ति काव्य, हमारी सारी संतवाणी, हमारे सारे देवी-देवता, मंगल कर्म, पर्व आदि में वह प्रभाव कहां गया जो प्रतिदिन, प्रतिक्षण हम सबको इस भारत के साथ भक्ति के बंधन से बांधता था. अपने और दूसरों के साथ वह मंगलमय संबंध क्या फिर प्रत्येक व्यक्ति की अपनी चीज नहीं हो सकती. अपना रचना कर्म, अपनी विधा, अपना स्वभाव, अपना, आत्मगौरव पश्चिमी सोच, विचार, जीवन दृष्टि के हाथ में सौंपकर हम अपने ही जीवन मूल्यों के प्रति अपने प्रयास, अपनी चिंता और अपने हृदय से बिल्कुल ही विच्छिन्न कर देंगे. यह प्रश्न मेरा रचनाकार मुझसे सदा पूछता रहता है और मैं देखता रह जाता हूं—यह कैसे आत्म संघर्ष है मेरा!

मेरा बुद्धिजीवी मानस कभी-कभी मुझे समझाने की चेष्टा करता है कि व्यक्तिगत हृदय का संबंध एक विस्तृत क्षेत्र में व्याप्त नहीं हो सकता—उसके लिए मशीन की, औद्योगिकीकरण की, पश्चिमी जीवन दृष्टि और साधनों की आवश्यकता होगी और वह पुरानी हिंदू दृष्टि छोड़नी होगी. यह बात असंगत नहीं लगती ऊपर से. पर भीतर से असंगत है यह.

भारतवर्ष केवल यंत्र से, पश्चिम के द्रव्य, वस्तु-बोध और पदार्थ ज्ञान से नहीं चल सकता. यह चलेगा भाव से, भाव, संबंध-बोध से. मेरा रचनाकार अपने पूरे संघर्षों के बीच हाथ उठाकर कहता है कि जहां हमारे व्यक्तिगत हृदय संबंध का हमें प्रत्यक्ष रूप से अनुभव न मिले वहां हमारा चित्र स्वभाव हमारी प्रकृति आकर्षित नही हो सकती. अगर मैं संबंधित नहीं हूं तो जीवन जी नहीं सकता, बिना जिये अनुभव और भाव कहां से आयेगा. अनुभव और भाव बिना और सब कुछ हो सकता है पर रचना नहीं होती. □

पांच साल की उम्र

एरिक हॉफर

बचपन में मैं जब कभी रोता था— वैसे, मैं ज्यादा नहीं रोता था... तो मेरे माता-पिता मुझे एक मेज पर लिटा देते और मेज को धकेल कर एक अलमारी के साथ लगा देते, जिसके कांच के दरवाजे थे. उस अलमारी में पुस्तकें होती थीं. मेरे पिता छोटे शहर के नास्तिक थे—यानी कि वे छोटे शहर में बुद्धिजीवी थे. वे शांत व्यक्ति थे, बहुत ही शांत, और हम दोनों आपस में शायद ही कभी बोलते होंगे. उनके पास वे सभी पुस्तकें थीं, जो एक जर्मन बुद्धिजीवी को अपने पास रखनी चाहिये—विश्वकोश, शब्दकोश, और अन्य कई प्रकार की पुस्तकें. मुझे याद है, वे कहा करते थे, "इस अलमारी में दौलत है." और मैं घंटों उन पुस्तकों से खेला करता, उन्हें करीने से सजाता, आकार या रंगों के हिसाब से उन्हें सिलसिलेवार रखता. मुझे लगता है कि सामान्यीकरण की मेरी योग्यता वहीं से शुरू हुई थी. और क्या आप जानते हैं कि मैंने पांच साल की उम्र में ही अंग्रेजी और जर्मन भाषायें पढ़नी सीख ली थीं? शायद मेरी मां ने इसमें मेरी सहायता की थी, पर मुझे ठीक से याद नहीं. पर मैं दोनों ही भाषाएं आसानी से पढ़ सकता था.

पांच साल की उम्र मेरी नजर में बहुत ही महत्वपूर्ण है. मेरा विश्वास है कि वास्तव में प्रौढ़ बनने के लिए मनुष्य को पांच साल की उम्र की ओर लौटना चाहिये—चीजों को देखने-समझने और सीखने की योग्यता फिर से पैदा करने के लिए. मैं कह सकता हूं अगर पांच साल की उम्र में सारा गणित और भौतिक विज्ञान मेरे कानों में डाला गया होता, तो हमने वहां अपना स्थान बना लिया होता. मैं हमेशा महसूस करता हूं कि पांच साल की उम्र में मैं प्रतिभाशाली बच्चा था, और तब से आज तक मेरा ह्रास होता आया है. □

मुझे सिर्फ विचार विचलित करते हैं...

फिदेल कास्त्रो

सबसे पहले मैं स्पष्ट कर दूं कि कौन-कौन-सी चीजें मुझे विचलित नहीं करतीं. भौतिक सुख सुविधाएं मुझे कतई विचलित नहीं करतीं. दौलत तो किसी कीमत पर विचलित नहीं करती. सम्मान, प्रसिद्धि और ऐश्वर्य की वासना मुझे विचलित नहीं करती. वास्तव में मुझे सिर्फ विचार ही विचलित करते हैं.

अब मेरी स्थिति का विश्लेषण करें. मैं व्यक्तिगत निर्णय कभी नहीं लेता. मैं अपनी भूमिका एक दल के भीतर बतौर एक नेता तय करता हूं. हमारे देश में अमरीका के राष्ट्रपति प्रणाली जैसी कोई संस्था नहीं है. सारे आधारभूत निर्णय-सारे प्रमुख निर्णय-विश्लेषित किये जाते हैं उन पर बहसें होती हैं सारे फिर सामूहिक तौर पर अपनाये जाते हैं. मैं मंत्री या राजदूत नियुक्त नहीं करता. देश के निम्नतम स्तर के सरकारी कर्मचारी को भी मैं नियुक्त नहीं करता. इस कार्य के लिए एक पूरा तंत्र है. जनता की ताकत पर निर्भर राष्ट्रपति कहीं भी व्यक्तिगत निर्णय नहीं ले सकता. न केंद्रीय कार्यकारिणी में और न ही म्यूनिसिपैलिटी और राज्यों में. वास्तव में मेरे पास यही ताकत है. मैं प्रभावशाली हूं पर मेरे पास उस प्रस्ताव की महक भर है. मैं आदेश नहीं देता, मैं तर्क करता हूं. मैं राजाज्ञा से शासन नहीं करता और न ही मैं कर सकता हूं.

(क्यूबा इंटरनेशनल (मार्च, 86) में प्रकाशित एक साक्षात्कार से.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधीश पचौरी

लौट आइए साहित्य में

मित्रों की प्रतिक्रियाएं मिली हैं. कुछ ने पत्र लिखकर तो कुछ ने मौलिक होकर मुझे उलाहना दिया है कि समीक्षा छोड़कर लेखकों को सीरियलों के लिये लिखने के वास्ते उकसा रहा हूं. मैं उन्हें साधना के कठिन-कठोर मार्ग से हटाकर 'धंधई' के मार्ग पर लाने की जोरजार वकालत कर रहा हूं. 'कथादर्शन' का मूल दर्शन हिंदी के लेखकों को व्यावसायिकता का औचित्य प्रदान करता है. यह शालीन भाषा है. भद्र जन ऐसा ही बोलते हैं. अन्यथा भावार्थ यही है कि बंदा लेखकों को धंधेबाज, और बिकाऊ बनाने पर तुला हुआ है.

एक लेखक मिले. कथाकार हैं. बोले. अरे अब तो 'साहित्य' में लौट आइए. मैंने कहा: 'आपको फलां कवि के दरबार में देखा था. टी.वी. पर रिपोर्ट आयी थी. अच्छा कार्यक्रम था.' सकुचा गये. शरमा गये. मैं उनकी शर्म समझता हूं. बोले, "मैं तो फलां के साथ गया था. पता ही नहीं था कि टी.वी. वाले भी आयेंगे." मैं समझ गया. बोला, "जब कैमरा आया तो हट गये होते." वे बोले, "ऐसा कैसे करते." मैं जानता हूं कैमरे के सामने से हटना कितना कठिन है. वे नहीं हटे. अच्छा किया वरना जीवन भर कोसते रहते कि क्यों हटा. बच्चों से पूछा होगा, "कैसा लगा?" मित्रों से उम्मीद की होगी कि वे बोले, 'अरे भई मिश्र जी! आपको देखा था.' कल्पना की होगी. मित्र जल रहे हैं. साले जानबूझकर नहीं बोलते कि देखा है. मेरे मित्र का ऐसा ही पारदर्शी मनोलोक है.

एक-एक करके दर्जनों मित्र कह चुके हैं कि साहित्य में लौट आइए. वे साहित्य के भीतर खड़े हैं. मुझे हाथ देकर बुलाना चाहते हैं कि आ जा. अभी जगह है. चाहे जहां खड़ा हो जा. साहित्य को तेरी बहुत जरूरत है. साहित्य को यानी हमको. हमें एक समीक्षक चाहिए जो अपना हो. हम लिखें. वह हमें बढ़ाये. ये साला लिखता था. अब जबसे दूरदर्शन के चक्कर में फंसा है. तब से किताबें तो पढ़ता ही नहीं. सिर्फ देखता है. वह भी दूरदर्शन. साहित्य की बात करो. दूरदर्शन की करेगा. अभी लौट आ! यह सेवा का भाव है. ये सब सेवक हैं. साहित्य की साधना कर रहे हैं और समाज की सेवा. वे एक बिछुड़े सेवक को और ले आना चाहते हैं. ऐसे मित्र जब कथारीति पढ़ते हैं तो उन्हें हार्दिक पीड़ा पहुंचती है. हर महीने. मैं जब ऐसों से मिलता हूं तो मुझे पीड़ा होती है.

मेरी पीड़ा के कारण उनकी से भिन्न हैं. जमाना आगे जा रहा है मगर मीगल की तरह सदा आगे रहने वाला लेखक आजकल पीछे जा रहा है. लिखने का माहौल बदल रहा है. यहां तक कि फांउटेन पैन की जगह बॉल पाइंट ने कब्जा कर लिया है. कागज महंगा कर दिया गया है. कुछ पहले तक कस्बों से युवा साहित्यकारों के जत्थे अपनी बगल में एक अदद लघु पत्रिका दबाकर साहित्य में घुस आते थे. अब वह चलन बंद हो चला है. बड़ी-बड़ी पत्रिकाएं संकट में हैं. माध्यम संकट में हैं. पुस्तक प्रकाशन संकट में है. क्या कभी कल्पना की थी कि राधाकृष्ण बिक जायेगा?

दो युवा कवियों का काव्य पाठ था. दोनों ही इस वक्त के अच्छे कवि कहे जा सकते हैं. दो-दो संकलन प्रकाशित हैं. काव्यपाठ के बाद हठात् काव्य चर्चा शुरू हो गयी. यहीं दृश्य बदल गया. अचानक 'जनता' की तलवार चली और कविता समेत कवि जमीन पर तड़पने लगे. कहा किसी ने कि यह कविता जनता से जुड़ी नहीं है. इससे समाज बदलेगा कैसे. पचास लोगों के बीच यह बहस पिछले पचास वर्षों से हो रही है. मगर जनता और कविता जहां की तहां सोयी पड़ी है. न जाने कितने कवि, कितनी कविता इस युद्ध में खेत रही है. चूंकि कवि और जीवन में मूलतः गहरी अंतक्रिया की कमी होती गयी है. अतः दोनों में रुचियों, प्राथमिकताओं और ज्ञान का पार्थक्य होता गया है. विकसित समाज में यह बढ़ा है. हम इसे समझने की जगह सिर्फ जुड़ने की भद्र मनोवांछाओं का हर महीने ज्ञापन देते रहते हैं.

रचना और जनता के बीच माध्यम आ गये हैं. पहले भी थे मगर इतने विकट और आत्यंतिक नहीं थे. पूंजीवाद में वे अत्यंत निर्णायक हैं. वे ही जनता तक पहुंच रखते हैं. यह पूंजीवाद की शक्ति है. जो लेखक इससे लड़ने को कृत संकल्प हैं, वे इस मामूली से तथ्य को प्रायः भूल जाते हैं. पूंजीवाद ने माध्यम क्रांति के साथ, पैसे के जोर-जबर को बढ़ाया है. यह हिंदी के लिए अभूतपूर्व स्थिति है. इससे पहले तक साहित्य के 'हेतु' 'गैर-भौतिक' (आधुनिक अर्थों में) संभव थे. ऐसा कल तक संभव था. माध्यम और उससे जुड़ी व्यावसायिक ताकतों का दबदबा न था. ऐसे में, शुद्ध काव्यशास्त्र अवश्य विकसित हो सकता था, अर्थशास्त्र नहीं. माध्यम का दबाव इसी अर्थशास्त्र का दबाव है.

उस दबाव ने परंपरागत नैतिकता में पाखंड की सृष्टि कर दी है. आज का लेखक इसी दबाव में लिखता है. वह जाने न जाने. यही आधुनिकता का दबाव है. आधुनिकता का अर्थ सिर्फ दृष्टिकोण की आधुनिकता ही नहीं, एक नये अर्थशास्त्र का स्वीकार भी है. प्रकट-अप्रकट सब इसकी ज़द में हैं. पूंजी के इस व्यापक प्रभाव से कोई भी मुक्त नहीं है. लेखक को तो छोड़िये, स्वयं भगवान भी आज इसके मोहताज हैं. जो लेखक कहीं छप नहीं रहा है, वह चाहता है कि छपे, तनखा से गुजर नहीं हो रही तो चाहता है कि पारिश्रमिक मिले. ईमानदार है, श्रमशील है, अतः रिश्वत नहीं लेता मगर मेहनत का पैसा अवश्य चाहता है वह. लेखक बनने में यह प्रक्रिया जबर्दस्त दबाब पैदा करती है. यही व्यावसायिकता है. मगर यह शर्म की बात क्यों हो? जब नौकरी करना शर्म की बात नहीं तो पारिश्रमिक चाहना की शर्म की बात क्यों? यहां से अनेक नये और जटिल सवाल शुरू हो जाते हैं मसलन व्यावसायिक जगत के साथ बनने वाले संबंधों के सवाल. व्यावसायिकता के इस्तेमाल के सवाल. ये नये प्रश्न हैं हिंदी में, भारतीय भाषाओं में. साहित्य के नये समाज शास्त्र के लिए निर्णायक. ये लेखन कर्म को नये संदर्भ देते हैं.

एक मित्र और थे. कभी व्यावसायिक पत्रिकाओं में लिखना पाप समझते थे...

आज देखता हूं तो हंसी आती है. जो सबसे अधिक व्यावसायिकता को कोस रहा होता है, वह मूलतः उसी रास्ते की तलाश में रहता है, जिसमें हमारे उपरोक्त मित्र गये. अपने नैतिक पाखंड को मौके के पहले झटके में ही तोड़ लेता है मगर फिर ओढ़ लेता है. पूंजीवाद से उसकी रस्सा कशी चलती रहती है.

मैं कहता हूं कि इस चुनौती को स्वीकार करो तो इसीलिए कि इससे नजात नहीं है. इसमें से गुजर कर ही, इससे मुक्ति मिलेगी, रास्ते मिलेंगे: ये इश्क नहीं आसां, इतना तो समझ लीजै. इक आग का दरिया है और...□

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायरी रखने की प्रथा पहले-पहल किसने शुरू की और उसका विकास किस प्रकार हुआ, इसकी संक्षिप्त-सी रूपरेखा भी प्रस्तुत करना यहां अप्रासंगिक है. लेकिन इतना तो निश्चित है कि यह प्रथा आजकल सर्वमान्य हो चुकी है और इसका सबसे अधिक उपयोग खुद को साहित्यकार माननेवाले लोग करते हैं.

डायरी में क्या लिखा जाये, इसका कोई सर्वमान्य सिद्धांत अभी निश्चित नहीं हो पाया है. इसलिए जिसे जो अच्छा लगता है, वही अपनी डायरी में लिख लेता है. यदि इन सब डायरियों को इकट्ठा करके उनमें लिखा विवरण प्रकाशित किया जाये तो उसका पठन-पाठन उपन्यास से भी अधिक रसपूर्ण सिद्ध होगा, इसमें कोई संदेह नहीं.

कितनी ही डायरियां तो पुराने दस्तावेजों के समान मूल्यवान हो चुकी हैं और कितनी ही खुद लिखनेवाले के लिए भी निरर्थक सिद्ध हुई हैं. उदाहरण के लिए, हमारे एक मित्र की डायरी में से नीचे का ब्योरा देखिये :

शुक्रवार : ता. पहली जनवरी...

सात बजे उठा. थोड़ी देर आलस में अंगड़ाई तोड़ता रहा. सवा सात बजे दातुन की. साढ़े सात बजे स्टोव जला चाय का पानी रखा. चायवाली पतीली आज न मिलने के कारण दाल बनाने की पतीली में ही चाय बनायी. कोई बात नहीं, बाद में दाल बनाने के वक्त मांज लेंगे. आठ बजे चाय पी. एक कप नौकर के लिए रहने दी. साढ़े आठ बजे नहाया. फिर रसोई बनाने में जुट गया. आज छोटे बैंगन और तोरी का साग बनाया. साढ़े दस बजे जीमने बैठा. ग्यारह बजे जीमकर निबटा. फिर आफिस गया. साढ़े ग्यारह से पांच मिनट ऊपर पहुंचा.

ट्राम अभी भरी हुई थीं, इसलिए जिस ट्राम पर भी चढ़ने को लपकता उसी पर से ''दूसरी गाड़ी पकड़ो'' कहकर झिड़क दिया जाता. इसी कारण लौटने में देरी हो गयी. छह बजे घर वापस आया. रास्ते से आलू लेता आया था. उन्हें उबलने रख दिया. सात बजे आलू तैयार हो गये. फिर चाय बना कर पी. एक कप नौकर के लिए रख दी. साढ़े सात बजे अंगीठी सुलगाकर रोटी बनाने लगा. साढ़े आठ बजे रोटी और आलू का साग बनाकर खाया. नौ बजे नौकर को झाड़ू-बुहारी लगाने में जुटाकर बराबर के कमरे में नवनीत राय के यहां पत्ते खेलने चला गया. आज मैं सात बार जीता. परसों नौ बार जीता था. अब से पत्ते खेलने पर ज्यादा ध्यान दूंगा. ग्यारह बजे आकर सो गया. कल से साढ़े दस बजे सोना है.

कुछ डायरियां

ज्योतींद्र हरिहरशंकर दवे

डायरियां किसिम-किसिम की होती हैं... पर क्या यह सच नहीं है कि कुछ डायरियां दरअसल डायरियां ही नहीं होतीं... पेश है, एक डायरी-विशेषज्ञ की खोजी नजर का कमाल जिनकी कलम मूलतः गुजराती में चलती है...

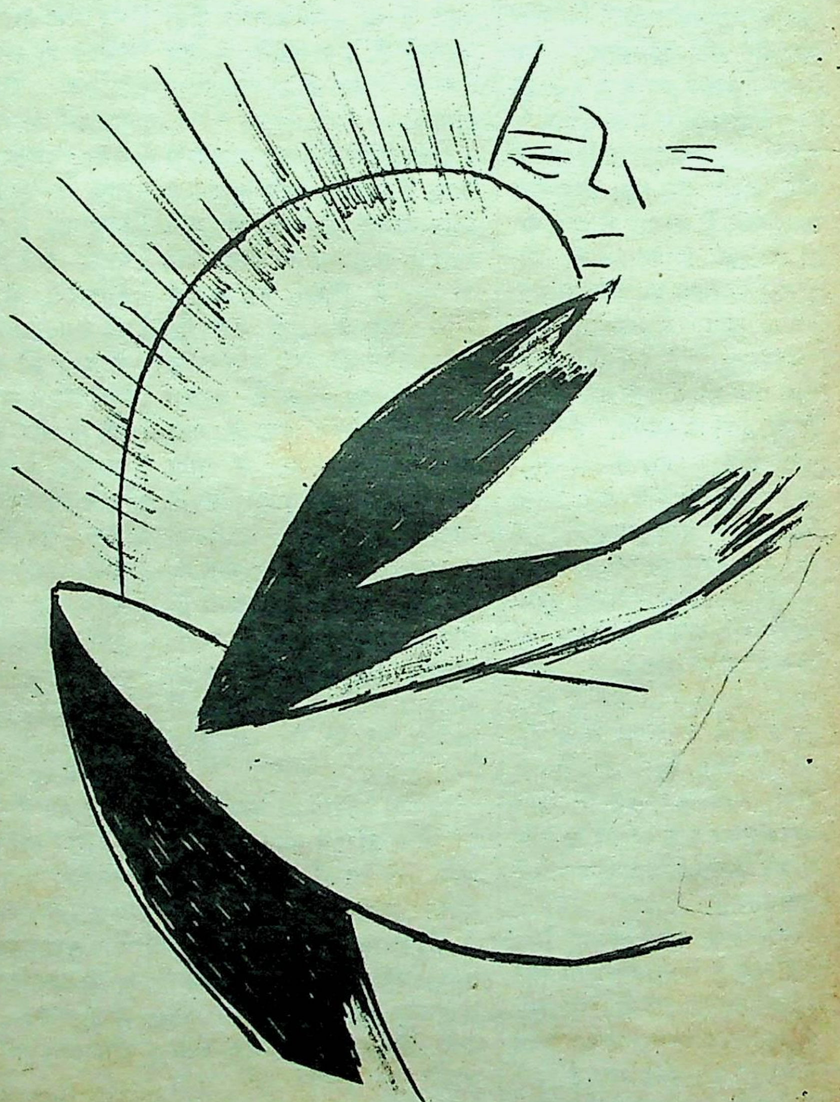

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो घटना घटे वही डायरी में लिखी जाये, ऐसा भी नहीं है. कुछेक तो डायरी लिखनेवाले की अपनी मन-घडंत ही होती हैं. हम को जो साधारण लगता है उसमें असाधारणता उत्पन्न करने के लिए वे कल्पना से उसे पूरा कर डालते हैं. हमारे एक युवा विद्वान मित्र की डायरी (जो केमिस्ट के सर्टिफिकेट की तरह सबके लिए देखने को खुली है) ऐसी घटनाओं से भरी पड़ी है. इस डायरी का एक ही दिन देखिये :

ता० 18वीं जुलाई...

सवेरे आठ बजे साग लेने गया. सिर नंगा, रेशमी कुर्ता, पैरों में चप्पल, एक हाथ में नाजुक-सी ताकिश स्टिक, दूसरे हाथ में साग का झोला– चार आनेवाला, बाल बिखरे हुए– बिन-संवारे, रास्ते में 'गुडलक रेस्तरां' के आगे मिस पी. मिल गयी. "मुझे बहुत काम हैं," ऐसा कहकर भी लगभग घंटे भर– डेढ़ घंटा भी हो सकता है– मेरे साथ ऐसी बातें कीं कि पूछो मत.

इतने में रेस्तरां में से मिस डी. आ गयी. उसकी आंखों में ईर्ष्या झलक रही थी. मिस पी. के बाहर निकलने के बाद मिस डी. बाट जोहती बैठी थी. उसे कोई खास बात करनी थी.

आज कालेज में प्रीवियस की मिस टी. स्पेशल क्लास में आयी थी. किस कारण प्रोफेसर के लेक्चर में उसका ध्यान नहीं था. यह मैं अच्छी तरह जानता हूं. घंटे भर में 49 बार उसने मेरी तरफ देखा था. कहती है कि वह टेनिस बहुत अच्छा खेलती है. खेलती होगी, मुझे क्या?

शाम को मेवालाल के यहां टी-पार्टी थी. वहां वह नयी छात्रा आयी थी. उसका काका मेरे बड़े भैया के साथ पढ़ा हुआ है. इस जान-पहचान का लाभ उठाकर वह मेरे साथ इस तरह बातचीत करती रही मानो पूरे कमरे में मेरे सिवाय कोई दूसरा न हो– दीज गर्ल्स आर दी लिमिट.

किसी मिस जी. एन. डी. का एक बड़ा ही करुण और आग्रहपूर्ण पत्र परसों मेरे पास आया था. उसमें लिखे अनुसार आज मुझे उससे मिलने हेंगिंग गार्डन में जाना था. वहां मैं वक्त पर पहुंचा. पंद्रह के करीब चक्कर लगाये, पर कोई दिखायी नहीं दिया. मैंने सोचा कि वह भूरी जार्जेट की साड़ीवाली छोकरी ही होगी. उसका भाई साथ था, इसलिए उनसे कोई बातचीत नहीं हुई. यों जब-जब मैं उस तरफ जाता तो उसके मुख पर कुछ कहने की अधीरता स्पष्ट दिखायी पड़ती.

खैर, चलो, अब मुझे सो जाना चाहिए. नहीं तो कल छह बजे मिस दस्तूर आनेवाली है, उस समय कहीं टायलेट में न होऊं. अरे हां, उसे जरा जल्दी खिसकाना पड़ेगा. क्योंकि साढ़े सात बजे तो मिस पंड्या पधारनेवाली है और इन दोनों का यहीं आमना-सामना होना ठीक नहीं. कोई बात नहीं, ऐसी-ऐसी तो कई सिचुएशन संभाली हैं. होगा सो देखा जायेगा.

पर अब तो सो जाऊं. सबेरे जल्दी नहीं उठूंगा तो छह बजते ही वह मिस दस्तूर– ओ माई गाड. आज चैन से सो भी नहीं पाऊंगा.

इस डायरी के आधार पर कोई इनका जीवन चरित्र लिखने बैठे तो उन्हें अर्वाचीन कृष्ण के अवतार के रूप में चित्रित करना पड़ेगा. पर मुझे पक्का पता है, लोक-भाषा में कहूं तो यह महज अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना है.

लेकिन सबसे मजेदार डायरी रखनेवाले तो मेरे दूर के एक काका हैं. इस समय उनकी उम्र 66 वर्ष की है. ठीक 16 वर्ष की उम्र से उन्होंने डायरी में अपनी दिनचर्या लिखने की शुरुआत कर दी थी. अपने जीवन में घटी छोटी से छोटी बात भी उन्होंने बड़ी कुशलता से चित्रित की है. जिन-जिन के संपर्क में आये, उन सबका नाम-ठिकाना, उनका हुलिया, उनके साथ क्या बात हुई, उनके बारे में उनकी अपनी क्या राय बनी– वगैरा उन्होंने अपनी डायरी में लिखा है. उनके द्वारा प्रयुक्त उपमाएं सरल, सटीक और मौलिक हैं. नमक लगे आम जैसे मुंहवाला मंगल, घोड़ामुखी वामन, पकौड़ी जैसी नाक, तरबूज जैसे लाल गाल, हंडिया जैसी खोपड़ी, टीले जैसा माथा, भींचे गये पके अमरूद जैसा मुंह-फट– आदि उपमाएं बड़ी सटीक हैं– ऐसी सटीक कि उन्हें जिनके लिए इस्तेमाल किया गया है, उन्हें भी स्वीकार करते वक्त सोचना पड़े.

एक बार बातचीत में एक गृहस्थ ने कहा, "चालीस वर्ष पहले हमारे पिताजी बंबई में माणिक महल नाम के मकान में मालाबार हिल पर रहते थे..."

बात बीच में ही काटकर काका बोल उठे, "गलत बात है, चालीस साल पहले तुम्हारा बाप मालाबार हिल पर नहीं रहता था."

"तो फिर किसी दूसरी जगह रहता होगा." कहकर उस सद्गृहस्थ ने बात वहीं खत्म कर दी. परंतु उसे अगले दिन ही काका की तरफ से निम्नलिखित आशय का एक पत्र मिला–

आज से चालीस वर्ष पहले मैं बंबई में तुम्हारे बाप से चौपाटी के मकान में पहले-पहल मिला था. इसके बारे में मेरी डायरी में इस प्रकार लिखा है :

आज चौपाटी के मैदान में सेवकलाल ने नगीनदास तौलाट से परिचय कराया. देखने में सद्गृहस्थ जैसा लगा. उसका पता है– होरां की चाल. रूम नं. 6, कांदावाड़ी, मुंबई.

इसे पढ़कर तुम्हें पता चल जायेगा कि तुम्हारा बाप जिस मकान में रहता था, उस मकान का नाम-महल नहीं, होरा की चाल था और जिस जगह पर यह मकान था उस जगह का नाम मालाबार हिल नहीं, कांदाबाड़ी था.

उनकी डायरी से अकेले उनका ही नहीं बल्कि अन्य तीन-चार व्यक्तियों का जीवन-चरित्र भी सांगोपांग लिखा जा सकता है. परंतु मुझे मालूम है कि ऐसा प्रयत्न कोई नहीं करेगा □

कृश्नचंदर की दुआ

मैं दुआ बहुत कम करता हूं. क्योंकि खुदा मेरी बहुत कम सुनता है और मैं भी उनकी कम सुनता हूं.

मगर जब डाक्टर जवाब देने लगे तो एक रात मैंने उससे कहा, "मेरी जिंदगी के पांच साल ले ले, और श्याम को अच्छा कर दे!"

करना खुदा का क्या हुआ कि श्याम उसी दिन से अच्छा होने लगा. इस तरह के सौदे मैंने उसके साथ अक्सर किये हैं... इसी तरह बांटते-बांटते शायद मैं अपनी जिंदगी के सारे साल खत्म कर चुका हूं... जो दूसरों ने मुझे दिये हैं. इस दुनिया में इसी तरह दुआ से दुआ चलती है और चिराग से चिराग जलता है.

('आधे सफर की पूरी कहानी' से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म : पटियाला में.
सर्जन, आलोचना से समान लगाव.
संप्रति : कमला नेहरू कॉलेज, दिल्ली में अध्यापन

हड़ताल

मधुरिमा कोहली

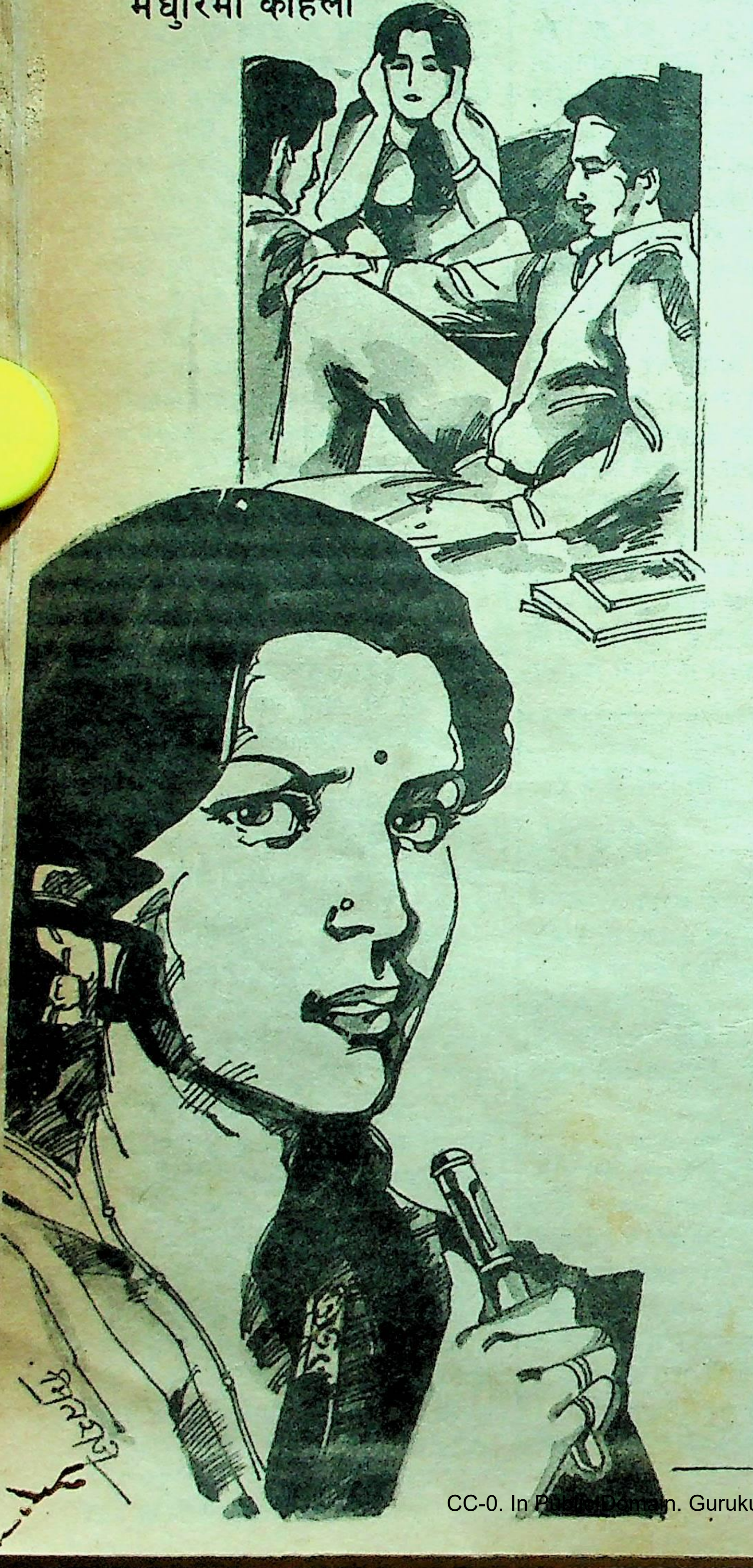

इस बार तो हड़ताल मानो समाप्त होने का नाम ही नहीं ले रही थी. यूं तो हड़ताल के अंतिम दिनों में हर बार यही होता है, पर इस बार तो कुछ इस तरह के गंभीर निष्कर्ष भी निकाले जा रहे थे कि प्राध्यापकों की यह हड़ताल हर वर्ष न होकर तीन वर्षों में एक बार होनी चाहिए. ऐसे निष्कर्षों से ऋता को लगता कि मानो हड़ताल के लिए किसी तरह के कोई बाहरी दबाव बिल्कुल अपेक्षित नहीं हैं, मानो यह कोई सैंक्शंड छुट्टी है जिसकी केवल अवधि तय की जानी है कि कितने वर्षों बाद कितने दिनों की हो. तीन वर्षों के लिए पढ़ने आये छात्रों को कम से कम एक बार तो हड़ताल का अनुभव होना ही चाहिए, जैसे यह भी उनके पाठ्यक्रम का ही एक अनिवार्य अंग हो.

ये सब बातें ऋता सबके साथ हंसकर ही लेती, पर वह केवल हंस कर ही नहीं रह पाती, भीतर तक कहीं बहुत गहरे में वह आहत हो उठती. यह हड़ताल उसके सारें आदर्शों और सोच के लिए चुनौती बन उठ खड़ी होती है. काम को उसने सदा पूजा माना है, काम न करने का संकल्प उसके गले के नीचे ही नहीं उतरता. पर यह हड़ताल तो बस जैसे सामने बीच मार्ग में आ ही खड़ी होती है, उससे बचकर निकलने का रास्ता ही नहीं रहता, बचना भी चाहो तो टकराना तो होगा ही.

ऋता ने सोचा था अनिश्चित काल के लिए तो उसे छुट्टी नहीं चाहिए, हां दो-तीन सप्ताह भी यदि यह खिंच गयी तो वह अपने इस लघु उपन्यास का प्रथम प्रारूप पूरा कर उसे कोई आकार अवश्य दे देगी. इसलिए उसने हड़ताल के मसले को अपने मस्तिष्क में प्रवेश ही नहीं पाने दिया था. सोचने के लिए प्रश्न तो अनेक थे, कि हड़ताल किन मसलों पर हो रही है, कि क्या ये मसले इतने महत्वपूर्ण हैं कि इनके लिए अनिश्चित-कालीन का संकल्प कर लिया जाये और सबसे जरूरी प्रश्न तो वह था जो पिछली हड़ताल के दिनों में ऋता को काफी परेशान करता रहा था. हड़ताल के अंतिम दिनों में जब अधिकारी-वर्ग की ओर से धमकियां आने लगती हैं, अनेक लोगों के घबरा जाने से जब हड़ताल की दृढ़ स्थिति डगमगा उठती है, हड़ताल टूटने लगती है, हर व्यक्ति उस समय छात्रों के प्रति अपने दायित्व और उच्च नैतिक मूल्यों की सच्ची या झूठी दुहाई देने लगता है तो कर्तव्याकर्तव्य की दुविधा हर व्यक्ति के सामने आ खड़ी होती है.. अतः अनिश्चितकालीन हड़ताल पर जाने से पूर्व इस संदर्भ में अपनी शक्ति और सामर्थ्य का आकलन बहुत जरूरी ही नहीं, अनिवार्य हो उठता है. पर यदि इन प्रश्नों में ऋता उलझ जाती तो वह अपने उस काम के साथ न्याय कर पाती जो इन दिनों उसके लिए भीतरी विवशता बना हुआ था.

स्वयं को इन प्रश्न-वाणों की बौछार से बचाने के लिए ऋता ने एक बहुत ही समर्थ बहाने का रक्षा-कवच ढूंढ़ा था. यह हड़ताल तो संयोग से आ गयी है, हड़ताल न आती तो वह कालेज से छुट्टियां लेकर भी अपना काम पूरा करती.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह नहीं चाहती थी कि हड़ताल ऐसे समाप्त हो... पर क्या संभव हो सका ऐसा...?

पर कहां कर पायी ऋता कुछ भी! अगली ही सुबह प्रभा के फोन ने उसे चौंका ही नहीं पूरी तरह झकझोर कर रख दिया था. उनकी सहयोगी मित्र नीरजा की छोटी बहन प्रतिभा ने आत्महत्या कर ली थी. तत्काल ही वहा पहुंचना अनिवार्य हो उठा. कितने वर्षों से जानती आयी है वह नीरजा और उसके परिवार को. अत्यंत मेधावी और परिश्रमी ये बहनें अपने माता-पिता को कभी पुत्र के अभाव का दुःख महसूस ही नहीं होने देती थीं. पर ज्यों-ज्यों बड़ी होती गयीं. नियति इनके साथ विचित्र ही खेल खेलती चली गयी. नीरजा अपने पति के साथ प्रसन्न नहीं रह सकी और अपनी छोटी-सी बिटिया को ले अलग रहने पर विवश हो गयी थी. यह आघात प्रतिभा के लिए नीरजा से भी अधिक घातक सिद्ध हुआ था. भौतिक विज्ञान में डाक्टरेट कर लेने और अच्छी नौकरी पा लेने पर भी वह विवाह करने को तैयार न थी. उसके इस निर्णय को माता-पिता ने भी कुछ विवशता और कुछ स्वार्थवश स्वीकार कर लिया था.

माता-पिता दोनों का ही स्वास्थ्य अब ठीक नहीं रहा था. प्रतिभा ही उनकी पूरी देखभाल करती. प्रतिभा के बिना तो अब वे अपना जीवन ही संभव नहीं मानते थे, यह तथ्य प्रतिभा से छुपा हुआ था?

फिर कैसे प्रतिभा ने अपने जीवन का यह आकस्मिक अंत कर डाला! मां ने ही रोते-रोते बताया था कि पिछले कुछ दिनों से बहुत परेशान थी, कहती थी कि उसे मालूम हुआ है कि उसके बॉस ने उसकी सी.आर. में उसके विरुद्ध कुछ लिख दिया है और इस आशंका मात्र से कि निकट भविष्य में होनेवाली पदोन्नति के समय उसकी यह सी.आर. समस्या बन जायेगी, उसका मन काम से उचट गया था, सारा आत्मविश्वास ही जैसे चुक गया था. उसे निरंतर यही लगता रहता कि उससे कुछ न कुछ गलत हो जायेगा जो उसी सी.आर. की पुष्टि करेगा. मां ने उसे समझाया था, "कोई बात नहीं, नहीं मिलती तरक्की तो न सही, हम तो इतने में ही संतुष्ट हैं." पर प्रतिभा को यह संतोष नहीं, असम्मान से समझौता लगता. वह कहती, "मैंने अपनी जिंदगी के महत्वपूर्ण निर्णय एक सम्मानपूर्वक जीवन जीने की इच्छा के अनुरूप लिये हैं, मैं असम्मान के जीवन से समझौता नहीं करूंगी." जीवन में तो समझौता नहीं किया था प्रतिभा ने पर असहाय होकर किन्हीं दुर्बल क्षणों में मृत्यु से समझौता कर लिया था.

प्रतिभा की इस समस्या और ऐसे पीड़ादायक अंत ने ऋता को कालेज की हड़ताल से सीधे ही जोड़ दिया था. यही तो थी उनकी मुख्य मांग कि पदोन्नति के समय हमारे काम और योग्यता की परख की जाये, प्राचार्य या प्रवर-समिति के सदस्यों के हाथ में ऐसा अधिकार न दिया जाये कि हमारी निष्ठा अपने काम से अधिक उन्हें प्रसन्न करने में हो जाये. तो फिर ऐसे निष्ठा में उपन्यास लिखते रहना कितना निरर्थक है—ऋता ने सोचा था, और वह अपने अधिकारों के संघर्ष के लिए हो रहे इस आंदोलन में पूरे उत्साह से कूद पड़ी थी.

हड़ताल के आरंभिक दिन तो होते ही हैं जोश और उत्साह से भरे. युद्ध-अभियान में जूझते जोशीले सेनानियों की तरह, अधिकारियों को नारों की ललकार देते हुए, 'होश में आओ, होश में आओ, होश में आओ, होश में आकर बात करो', 'होश में तुमको आना होगा, बात तो तुमको करनी होगी,' और एकता की भावना को बुलंद करते समूह गान, 'वक्त की पुकार है मिल के चलो,' इन सबमें समय कैसे निकलता गया पता ही न चला.

अब आ पहुंचा था वही समय जब अधिकारियों की ओर से 'काम नहीं तो दाम नहीं' जैसे हथकंडों से सारी एकता छिन्न-भिन्न हो गयी थी. अनेक लोग काम कर लौटने को बेताब हो उठे थे. कुछ लोग शुद्ध भौतिक धरातल पर 'वेतन के बिना हम नहीं रह सकते' का सहारा ले रहे थे, और कुछ अचानक ही छात्रों के भविष्य के प्रति अपने दायित्व के लिए सजग हो उठे थे. प्रतिक्रिया में कुछ लोगों में हड़ताल के प्रति निष्ठा और उग्र हो उठी थी. वे लोग इस असमय उठ आये दायित्व बोध को ढोंग और पाखंड समझते, गद्दारी कहते और देखते-देखते कालेज का वातावरण विषाक्त हो गया था. ऐसा लगता मानो सारा कालेज दो विरोधी दलों में विभाजित है जिनके हित एक दूसरे से नितांत भिन्न थे, सोच अलग थी, नैतिक मूल्य अलग थे, मानों वे एक वर्ग के न होकर, वर्ग-चरित्र की दृष्टि से वे दो विरोधी शिविरों में विभाजित हो गये थे.

ऋता बहुत उद्विग्न हो उठी थी. वह साफ देख रही थी कि दोनों दलों में कितनी समानता है. भीतर तक असुरक्षा की भावना के शिकार, अपने को इस भीड़ भरे समाज में घिरे होने पर भी नितांत अकेला महसूस करनेवाले ये दुर्बल चरित्र अपने नग्न रूप में कैसे एक से थे. सुरक्षा और सहारे के नाम पर एक वर्ग अधिकारियों की शरण में चला गया था और दूसरा यूनियन के नेताओं की. अधिकारी वर्ग के पक्ष में लोगों को न बहुमत की चिंता थी, न एकता की. वे संख्या में कम होने पर भी अपने को सर्वथा सुरक्षित महसूस करते और सबसे बड़ी बात तो यह कि वे यह समझने लगे थे कि सही मार्ग पर वे ही हैं, शेष लोग आलसी, निकम्मे और कामचोर. दूसरी ओर से हड़ताली निरंतर यह आवाज देते कि देखो अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने का एकमात्र रास्ता है एकजुट होकर चलो. अपने अधिकारों के लिए संघर्ष न्याय का संघर्ष है और इसके लिए चाहिए साहस, दूर तक जोखिम झेलने का संकल्प. वे धरनों पर बैठते, अनशन करते, विरोध-प्रदर्शन के लिए जुलूस निकालते, सभाएं करते और गिरफ्तारियां देने में भी पीछे न रहते.

ऋता की सक्रियता इन दिनों बाहर से भीतर की ओर हो गयी है. उसने तो शुरू में ही चाहा था कि हड़ताल पर जाने से पूर्व इन स्थितियों पर अच्छी तरह विचार कर लिया जाए पर मात्र चाहना और सोचना क्या सचमुच कुछ अर्थ रखता है? ऋता सोचती है, हड़ताल का निर्णय क्या मेरा व्यक्तिगत निजी निर्णय था? यहीं तो वह नियति को मनाने लगती है, वह तो कभी हड़ताल के पक्ष में नहीं रही पर उस समय उसने हड़ताल का कैसा तो स्वागत किया था, और हड़ताल के पक्ष में बहुत सक्रिय हो उठने के पीछे भी क्या प्रतिभा की आत्महत्या के क्षोभ से उत्पन्न आकस्मिक आवेश ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हल

एक आदमी बंदरों का पालक था.

एक बार बुरे दिन आये, तो उस आदमी ने बंदरों से कहा, "मुझे तुम्हारी खुराक कम करनी पड़ रही है. अब तुम्हें सुबह तीन केले मिला करेंगे, और शाम को चार."

सुनते ही बंदरों ने शोर मचाकर अपनी नाराजगी प्रकट की.

तब उस आदमी ने कहा, "अगर यह मंजूर नहीं, तो फिर तुम्हें सुबह चार केले मिला करेंगे, और शाम को तीन."

बंदर खुश हो बैठे. □

नहीं था, और अब हड़ताल को बनाए रखने के लिए जिस एकता की पुकार मची थी, क्या उसके भीतर के खोखलेपन को वह सर्वथा नजरंदाज कर दे सकती है? सबके अपने-अपने स्वार्थ हैं, अपने अपने दबाव, कहीं संबंधों का आग्रह और कहीं सुविधा का दर्शन और क्या-क्या नहीं है इस बाहरी एकता के भीतरी खोल में.

इन सब स्थितियों से अवसन्न ऋता का मन कछुए के समान अपने को समेट अपने उसी संसार में लौट आने को आतुर हो उठा था जहां उसे सचमुच कुछ करने का सुख मिल सके, कुछ कहने का संतोष.

ऋता लौट आयी थी अपने उस संसार में, पर पेन हाथ में रह जाता, कागज कोरा और रह-रहकर साकार हो उठते दृश्य, एक ओर स्टाफ-रूम में भी मीटिंग हो रही है हड़ताली प्राध्यापकों की, पूरी तरह असहयोग आंदोलन का रवैया, और दूसरी ओर काउंसिल-रूम में प्राचार्य के साथ उन प्राध्यापकों की जो हड़ताल पर नहीं हैं. कालेज का वार्षिकोत्सव होगा, मानो यह उत्सव सारे कालेज का नहीं है बस प्राचार्य और उन मुट्ठी भर प्राध्यापकों का है, वे कालेज का काम नहीं कर रहे मानो प्राचार्य को उनके किसी निजी काम में सहयोग देकर उन्हें कृतार्थ कर रहे हैं. चाहे पुस्तकालय-समिति की बैठक हो, चाहे कैंटीन-समिति की, सब जगह वे ही लोग हैं, वही निर्णय हो रहे हैं जो प्राचार्य चाहते हैं, यह सहयोग आंदोलन का एक नया ही रूप था जो कालेज के इतने वर्षों में ऋता ने न देखा था. फिर धुंधली-धुंधली उभरती हैं छोटे-छोटे दृश्यों की वह अवलि... पास से निकल गयी हैं मीनाक्षी और सुप्रिया. एक दूसरे से नजरें मिलाने का साहस नहीं. दोनों अत्यंत घनिष्ठ सखियां आज अलग-अलग गुट में होने के कारण कट गयी हैं एक दूसरे से... सक्सेना, श्रीवास्तव और आहूजा की बातचीत, मानो सहकर्मियों की बातचीत न हो, तीन राजनीतिक दलों के राजनीतिक मतवाद की स्थापना और उसी के अनुरूप एक-दूसरे के प्रति सदाशयता और सद्भावना का रवैया... अत्यंत फूहड़ अभिव्यक्ति वाली डा. विद्या जैन का अत्यंत सौम्य शेफाली से गठबंधन... दृश्यों का अस्त-व्यस्त हड़कंप. मानव-संबंधों की व्याख्या करता ऋता का वह पुराना उपन्यास तो अवचेतन के किसी अन्य स्तर पर गुम हो गया था, पूरी तरह मस्तिष्क पर छाया यह हड़कंप व्यवस्था ग्रहण कर मानस पर लिखा चला जा रहा था...

चिंतन के धरातल पर तो बात अत्यंत स्पष्ट थी, अन्याय के विरोध के लिए संगठित और अलग जनशक्ति के अतिरिक्त दूसरा उपाय ही क्या था और जब अन्यायी द्वार पर ललकारता आपको समूचा निगल जाने को तत्पर हो तो आपद् धर्म के रूप में प्रहार मारक तो होना ही चाहिए, अनिश्चितकालीन हड़ताल कोई आकांक्षित निर्णय नहीं था, यह तो विकल्पहीन मार्ग था पर उपन्यास शुद्ध चिंतन ही तो नहीं होता. उसमें जो रंग भर गये थे, वे जीवन के थे. जीवन इतना स्पष्ट और सटीक नहीं था जितना चिंतन. इस जीवन में ऊपर का शांत नीला जल ही नहीं था, आलोड़ित हो उठने पर नीचे का सारा कीचड़ भी ऊपर आ गया था, फोड़े फट गये थे, मवाद बह निकला था, पैबंदों की सीवन उधड़ गयी थी, उसके नीचे की फटेहाली झांक उठी थी. कितना तो सहा था स्वयं ऋता ने जीते समय, लिखते समय. मानसिक रोगी की-सी अवस्था ऋता जब डाक्टर के पास गयी थी तो वह भी और अधिक क्या कह सका था, "आप अत्यधिक संवेदनशील हैं, आपके आसपास बहुत कुछ अप्रियघटित हुआ है, उससे अपने को मुक्त करने का प्रयत्न करें, पढ़ने-लिखने का काम स्थगित कर अपने स्नायुओं को विश्राम दें."

ऋता डाक्टर की दी दवाई खाती, उसी प्रभाव में गहरी नींद सोती रहती, उठकर कुछ स्वस्थ महसूस करती तो मानस पर लिखे जाते उपन्यास का कोई अध्याय फिर उस पर छा जाता. इस हड़ताल ने उसे सबसे जुड़ना सिखाया था, इसलिए सबकी पीड़ा झेलती भी ऋता सुख का अनुभव करती.

पिछले तीन महीनों से वतन नहीं मिला था. सर्जक मन की भावुक ऊहापोह के बावजूद इस दबाव को ऋता निरंतर महसूस कर रही थी. जिनसे जीवन में सदा स्नेह और सहयोग मिला था, वे चिरमित्र इस हड़ताल के कारण शत्रु हो गये थे. जिस कालेज में प्रवेश करना उल्लसित परिवार की बाहों में लौटने जैसा सुखद था, वहां पग-पग पर बिच्छू का दंश था. हड़ताल खिंचते-खिंचते जब स्वयं ही टूटने पर आ जाये तो अधिकारी वर्ग शेष मांगें तो नहीं ही मानते, यह भी मान लें कि चलो काम पर लौट आओ, किसी प्रकार का दंड नहीं दिया जायेगा और हड़ताल के दिनों का वेतन दे दिया जायेगा तो भी हड़ताली खुशी-खुशी हड़ताल समाप्त कर दिया करते हैं... पर यहां तो सम्मान बचाने के लिए कोई ब्याज भी नहीं था...

ऋता नहीं चाहती थी कि हड़ताल ऐसे समाप्त हो. उसके उपन्यास के पात्र असुरक्षा की भावना में प्रतिभा की मौत मरें यह उसे स्वीकार नहीं था.

कमरे में बिस्तर पर पड़ी असहाय, नितांत अकेली रोगिणी ऋता जानती थी कि इस हड़ताल का अंत दुखद ही होगा, किंतु उसे रोकना उसके वश में नहीं था. संभावना यह भी थी कि अंततः यह हड़ताल भी किसी न किसी उपलब्धि के रूप में ही याद रखी जाये. इस सबको वह नियति पर छोड़ देना चाहती है. पर जहां उसका अपना वश चलता है, जहां वह नियति को उसके नियमों से अपदस्थ कर अपनी इच्छानुसार चला सकती है, जो उसकी अपनी रचना है, वहां उसकी नायिका सृष्टि अपने ढेर सारे साथियों के साथ देश के चिंतकों, प्रबुद्ध राजनीतिज्ञों, न्यायविदों, पत्रकारों और विशाल छात्र-समूह के सहयोग के आधार पर अपनी उस न्यायसंगत मांग की रक्षा में संघर्षरत है जिसमें सम्मानपूर्वक जीने का अधिकार सुरक्षित रहे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यास अंश

काम्‌

अपराधी के अंतिम क्षण

जेल के पादरी ने आज तीसरी बार मुझसे मिलने की कोशिश की लेकिन मैंने उससे मिलने से साफ इंकार कर दिया. मैं किसी से मिलना नहीं चाहता. मैं सब प्रक्रियाओं की प्रवंचना कर अपने बचाव का रास्ता खोजना चाहता हूं. इस समस्या ने मुझे बुरी तरह त्रस्त और ग्रस्त कर रखा है. मैं सदा मृत्यु-दंड पाने वाले उन अपराधियों के बारे में सोचता रहता हूं जो न्याय की क्रूर यंत्रणा से मुक्त होने में सफल हो सके, पुलिस को चकमा दे सके और फांसी देनेवाले यंत्र के नीचे आने से पहले कहीं गायब हो गये. काश! अपनी आजादी के दिनों में ऐसे लोगों के समाचारों को ध्यान से पढ़ा होता तो यह जानकारी आज मेरे बहुत काम आती. यह जानकारी मेरे लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होती.

लेकिन न मालूम क्यों यह विचार कि मैं अपना प्राणोद्धार करने में कभी नहीं सफल हो सकूंगा, मेरे मन में घर कर गया था. जिस घटना-चक्र पर अदालत ने अपना निर्णय दिया था, उसमें और

हर क्षण कोई समझदार कैसे रह सकता...? मैं कभी-कभी अपनी कल्पना की दुनिया में प्रवेश करके नये-नये कानूनों और नयी नयी सजाओं के बारे में सोचने लगता हूं...

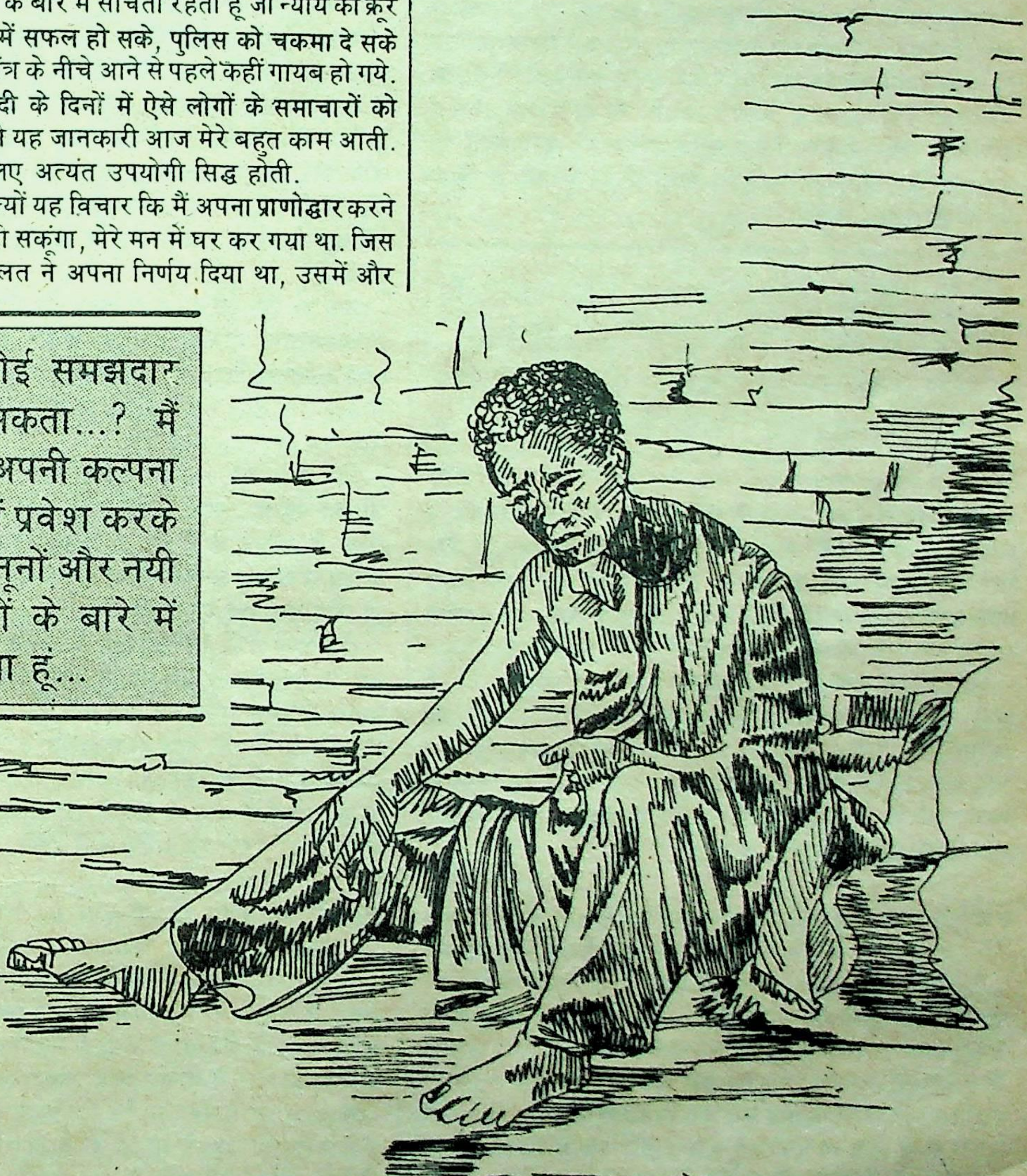

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्णय में मेरे विचार से काफी असंगति थी. मुझे लगता था कि निर्णय देते समय, अदालत ने गंभीरता से काम नहीं लिया है और यह निर्णय उस निर्णय से बहुत भिन्न था जो वास्तव में अदालत को देना चाहिए था. जज ने यह निर्णय फ्रांस की जनता की ओर से सुनाया था, चीन और जर्मनी की जनता की ओर से क्यों नही सुनाया? जो भी हो, इस क्षण वह वैसा ही ठोस और अकाट्य हो गया है, जैसी यह दीवार जो फिलहाल मेरी कमर को सहारा दे रही है और उसे दबा भी रही थी.

अपनी होने वाली फांसी के बारे में सोचते-सोचते, न जाने कब और कैसे मुझे अपने मां-बाप की याद आ गयी. मुझे याद आया कि मेरी मां मुझे अकसर एक कहानी सुनाया करती थी, जो मेरे पिता के फांसी की सजा-भुगतने वाले व्यक्ति की फांसी के दर्शन से संबंधित थी. फांसी-दर्शन के बाद जब वे घर लौटे, तो उन्होंने उसका जो वर्णन मुझे सुनाया था, वह मुझे तब जुगुप्सापूर्ण लगा था, पर अब स्वाभाविक लगता था. मैं तब से मानता आया हूं कि प्राण दंड से बढ़कर कोई और महत्वपूर्ण बात नहीं हो सकती, और यही एक घटना है, जिसमें आदमी की वास्तविक रुचि हो सकती है. और, मैंने तभी फैसला किया कि यदि मुझे फांसी नहीं हुई और जेल से बाहर जाने का मौका भी मिल गया, तो मैं हर फांसी को जरूर देखूंगा.

काफी दिनों से उसका कोई पत्र नहीं आया था. जाहिर है वह किसी ऐसे आदमी की प्रेमिका नहीं कहलाना चाहती थी जो जल्दी ही फांसी पर चढ़ने पर वाला हो...

क्षण भर के लिए, कल्पना की निगाहों से मैंने देखा कि मैं आजाद हूं और किसी अभागे को फांसी लगते देख रहा हूं और फिर घर आकर वमन कर रहा हूं, तो मेरा मन एक बहशी, बेहूदा हर्षोन्माद से भर आया. किंतु अगले ही क्षण, मुझे यह कल्पना मूर्खतापूर्ण लगी और डर के मारे मेरे दांत किटकिटाने लगे.

लेकिन हर क्षण कोई समझदार कैसे रह सकता है? मैं कभी-कभी अपनी कल्पना की दुनिया में प्रवेश करके, नये-नये कानूनों और नयी-नयी सजाओं के बारे में सोचने लगता हूं. इन सब नये कानूनों और नयी सजाओं की कल्पना के पीछे एक ही भाव रहता है— हर अपराधी को सजा से बचने का कम से कम एक मौका अवश्य मिलना चाहिए.

मैं सोचता—क्या ऐसी दवा ईजाद नहीं हो सकती जो एक हजार अपराधियों को पिलायी जाये तो उसे पीकर 999 तो मरे जायें, और एक जीवित रह जाये? फांसी या गिलोटिन की व्यवस्था अपराधी को कोई मौका नहीं देती. इस व्यवस्था में अपराधी अवश्य मरेगा, यह एक अटल सत्य है. एक तरह से देखा जाये तो यह व्यवस्था सजायाफता अपराधी के हित में भी है, क्योंकि सजा सुनने के बाद उसे पूरा विश्वास हो जाता है कि उसे मरना ही है. मेरी कल्पना उसे कम से कम एक आशा तो देती है.

फांसी और गिलोटिन के बारे में मैंने काफी विचार किया है. एक विचार-कण का जायजा लें. ''फांसी आदमी की कल्पना की उड़ान को तेज और बहुआयामी बनाने में सहायक होती है. किंतु इसके विपरीत, गिलोटिन बड़ी दक्षता मगर निर्लज्जता के साथ आदमी को खत्म कर देती है, और कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं छोड़ती.''

सुबह कब होगी और मेरी अपील का क्या होगा, ये दोनों अहम सवाल भी मुझे हरदम परेशान किये रहते थे. मेरे बहुत कोशिश करने पर भी, मेरे दिमाग में बरों की तरह भनभनाते रहते. इन दुष्प्रभावी विचारों की एकरसता-भंग करने के लिये मैं अपने दिल की धड़कनों को गिनना आरंभ कर देता. मेरे लिए यह कल्पना करना कठिन था कि ये धड़कनें, जिन्हें मैं वर्षों से सुनता आ रहा था, कभी अचानक बंद हो जायेंगी. बहुत कोशिश करने पर भी, मैं यह कल्पना करने में असमर्थ था कि एक क्षण ऐसा भी आयेगा, जब मैं (अर्थात्, मेरा मृत शरीर) तो होगा लेकिन उसमें उसके दिल की धड़कनें नहीं होंगी.

सुबह के बारे में मेरी ग्रस्तता का एक कारण यह था कि मैंने सुन रखा था कि फांसी सुबह को ही दी जाती है. अप्रत्याशित घटनाओं में मैं विश्वास नहीं करता, किंतु होने या हो सकने वाली घटनाओं के लिए मैं अपने को सदा तैयार रखता हूं. इसी कारण, मैंने दिन भर सोने और रात भर जागकर सुबह की प्रतीक्षा करने की आदत डाल रखी है. रात्रि के अंतिम प्रहर के उस अंतिम क्षण से मेरा परिचय बढ़ता जा रहा है, जब 'वे' आयेंगे, और मुझे गिलोटिन पर ले जायेंगे.

जब हर रात को वह क्षण आता और बीत जाता, तो मैं स्वयं को सौभाग्यशाली मानकर कृतज्ञता से भर आता. मां मुझसे अक्सर कहा करती थी कि आदमी कितना भी दुख में क्यों न घिरा हो, कोई न कोई ऐसी बात उसके जीवन में अवश्य शेष रह जाती, जिसके लिए वह कृतज्ञ अनुभव रहे. .

दिन भर, जब तक मैं जागता, अपनी अपील के बारे में ही सोचता रहता. उससे अपने लिए अधिकाधिक सांत्वना प्राप्त करने के उद्देश्य से मैं पूरी गहनता से सोचता. मैं हमेशा अपने खराब से खराब क्षणों में सोचा करता था कि मेरी अपील खारिज हो और तब मुझे मरना ही होगा.

ऐसे क्षणों में मैं अपने को याद दिलाने लगता कि जीने में आखिर रखा ही क्या है और जब आदमी को एक दिन मरना ही है तो इससे क्या फर्क पड़ता है कि वह तीस वर्ष की आयु में मरे, या सत्तर वर्ष की आयु में. मैं यदि आज ही मर जाता हूं तो कम से कम, रोज की इस चिंता से तो बच जाऊंगा कि न जाने मौत कब आयेगी? दुनिया तो मेरे मरने के बाद भी चलती रहेगी और मेरे बाद जो लोग रह जायेंगे, वे पहले की भांति जीते रहेंगे.

गर्मी की शाम थी. मैं फर्श पर लेटा आसमान पर छायी सुनहरी आभा को देख रहा था. तभी मुझे बताया गया कि जेल का पादरी मुझसे मिलने आया है. बतानेवाले से मैंने कहा, मैं पादरी से नहीं मिलूंगा. और यह निश्चय करके मैं वह करने लगा जो मैंने बहुत दिनों से नहीं किया था—अपनी भूतपूर्व प्रेमिका के बारे में सोचने लगा. काफी दिनों से उसका कोई पत्र नहीं आया था. जाहिर था कि वह किसी ऐसे आदमी की प्रेमिका नहीं कहलाना चाहती थी जो जल्दी ही फांसी पर चढ़ने वाला हो. या, वह शायद मर गयी हो. मृत लड़की में किसकी रुचि होगी? मरने के बाद तो मैं सबके लिए अर्थहीन हो जाऊंगा. कोई मुझे याद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेवाला भी नहीं रहेगा.

...तभी, पादरी बिना किसी पूर्व-सूचना के मेरी कोठरी में आ गया. मेरे बिस्तर पर बैठकर, वह मुझसे पूछने लगा, "तुम मुझसे मिलने से मना क्यों करते हो?"

"इसलिए कि मैं किसी भगवान में विश्वास नहीं करता. मैं इस व्यर्थ की कल्पना को लेकर अपना सर नहीं खपाना चाहता."

"मगर भगवान से अधिक महत्वपूर्ण कुछ भी नहीं है."

"हो सकता है. मगर, मैं उसके बारे में कुछ जानना नहीं चाहता."

"मेरी बात मानो, भगवान की शरण में आओ. तुम्हें अपने सब भयों और संशयों से मुक्ति मिल जायेगी. तुम प्राणदंड के भय से ग्रस्त हो, किंतु यह मत भूल जाओ कि दुनिया के हर इंसान को प्राणदंड मिला हुआ है. एक न एक दिन यह दंड सबको मिलना है."

"मगर मेरे प्राणदंड और उनके प्राणदंड में बड़ा अंतर है. और फिर मुझे आपकी बात से कोई सांत्वना नहीं मिलती."

"मैं सांत्वना की बात नहीं कर रहा हूं. तुम्हें मौत के उस क्षण के लिए तैयार करना चाहता हूं, जिसका सामना अनिवार्य रूप से तुम्हें कभी न कभी करना ही होगा."

"मैं उसका सामना उसी तरह करूंगा, जैसे अब कर रहा हूं."

पादरी कुछ देर तक सधी हुई आंखों से मुझे घूरने के बाद बोला, "यदि तुम यह विश्वास कर लो कि मरने के बाद भी आदमी का एक अमर-अमिट सूक्ष्म अंश शेष रह जाता है, तो तुम्हें अपने लिए एक आशा दिखाई देने लगेगी."

"मैं ऐसा विश्वास करने में असमर्थ हूं."

"विश्वास करो, और तब तुम्हारे लिए जीवन सह्य हो जायेगा. मुझे पूरा विश्वास है कि तुम्हारी अपील अवश्य स्वीकार हो जायेगी, लेकिन, जिस अपराध-भावना से तुम ग्रस्त हो, उससे तुम्हें अवश्य मुक्त होना चाहिए. आदमी के न्याय का कोई महत्व नहीं है, असली महत्व है भगवान के न्याय का."

"मुझे प्राणदंड दिलाने की जिम्मेदारी आपके भगवान की ही है."

"मानता हूं, लेकिन जिस अपराध के लिए तुम्हें प्राणदंड मिला है, वह तो तुम ही ने किया, भगवान ने नहीं."

"मैंने कोई अपराध नहीं किया. यदि किया भी है, तो उसकी सजा भुगत तो रहा हूं. फिर, मुझे भगवान की क्या जरूरत?"

"है. इस कोठरी में रहनेवाले दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति को मैंने भगवान का दयालु चेहरा दिखलाया है. वही मैं तुम्हें भी दिखाना चाहता हूं. इस कोठरी की कठोर दीवारों में ही तुम्हें वह चेहरा दिखाई देगा."

मैं उत्तेजित हो आया. मैंने कहा, "मैं महीनों से इन दीवारों को देखता आ रहा हूं और मुझे उनमें न कभी भगवान का चेहरा दिखाई दिया, न दुनिया की किसी हस्ती का. उन दीवारों में भगवान का कृपालु चेहरा दिखाने की आपकी कोशिश बेकार होगी, पादरी साहब!"

पादरी ने अपनी नजरें मेरी ओर से मोड़ लीं. मगर, वह कोठरी से बाहर जाने को तैयार दिखाई नहीं दिया. मैंने उसके पास जाकर उसे समझाया, "अब आप जाइये. मेरे पास ज्यादा वक्त नहीं है, और मैं उसे आपके भगवान पर बर्बाद नहीं करना चाहता. अल्विदा!"

"बच्चे! समझने की कोशिश करो, मैं तुम्हारा शुभचिंतक हूं. मैं तुम्हारे लिए प्रार्थना करके ही यहां से जाऊंगा."

यह सुनकर, पता नहीं क्या हुआ, मैं जोर-जोर से चिल्लाने लगा और उसके लिए अपमानजनक बातें बोलने लगा. मैंने पादरी को अपनी बाहों में ले लिया था और उसे छोड़ नहीं रहा था. चिल्लाते-चिल्लाते, मुझे लगा, मेरी सांस चलनी बंद हो गयी है. तभी संतरी दौड़े-दौड़े आये और उन्होंने पादरी को मेरी गिरफ्त से छुड़ाया. उनमें से एक मुझे मारना भी चाहता था लेकिन पादरी ने उसे ऐसा करने से रोक दिया. इसके बाद वह एक क्षण के लिए मुझे देखते हुए, सजल नेत्रों के साथ मेरी कोठरी से चला गया.

उसके जाने के बाद मैं पूरी तरह शांत हो गया. लेकिन इस कांड की उत्तेजना ने मुझे बुरी तरह थका दिया था और मैं सोने चला गया. जब, कई घंटे बाद उठा तो पाया कि आसमान से चांद-सितारे मुझे देख रहे हैं. यह इस बात का प्रमाण था कि रात को नींद लंबी और गहरी आयी. रात की मिट्टी और नमक की मिली जुली गंध वाली शीतल समीर मेरे गालों को दुलार रही थी. रात की वही अद्भुत शांति मेरे अंतर में ज्वार की भांति प्रवेश करती जा रही थी.

जब सुबह होने को हुई तो मुझे दूर से आते किसी स्टीमर की सीटी सुनाई दी. लोग उस स्टीमर में बैठकर उस दुनिया के बंदरगाहों की ओर जा रहे थे, जो मेरे लिए अर्थहीन हो चुके थे. पहली बार, महीनों बाद, मुझे अपनी मां की याद आयी. और अब मेरी समझ में आया कि क्यों उसने अपने जीवन के अंतिम दिनों में एक नये प्रेमी से प्रेम करना आरंभ कर दिया था जैसे वे जीवन की एक नयी शुरुआत करने जा रही हों.

मुझे याद आया कि उस घर में भी, जहां जीवन-ज्योतियां एक के बाद बुझती जा रही थीं, शोकार्तफुटफुटा राहत का संदेश लेकर आता था. मौत की कगार पर खड़ी मां को मेरी भांति ही लगता रहा होगा कि परम स्वतंत्रता कितनी निकट है, और एक नये, अपरिचित जीवन की शुरुआत करने का अवसर कितना समीप. मेरे मत से, मेरी मां के बारे में रोने का अधिकार किसी को नहीं है, किसी को भी नहीं.

मुझे भी लग रहा था कि मैं भी अपने नये जीवन की शुरुआत शीघ्र ही कर सकूंगा. मुझे लग रहा था, जैसे मेरे आक्रोश ने मेरे मन को सब आशाओं से रहित करके, मुझे पूर्णतया स्वच्छ और निर्मल कर दिया है. आकाश में टिमटमाते असंख्य तारों को देखकर मुझे लग रहा था जैसे मैं ब्रह्मांड की अनुग्रहशील उदासीनता के सामने बिछा हूं और सब कुछ के प्रति अपनी स्नेहपूर्ण उदासीनता के कारण ही सुखी हूं. □

प्रस्तुति : हरिमोहन शर्मा

चलते-चलते

एक विलायती मंदिर में, एक विदेशी भक्त ने भगवान राम की मूर्ति के सम्मुख अभूतपूर्व प्रार्थना की, "मेरी बीवी वापस ला दो, राम!"

विलायती पुजारी ने हनुमान की मूर्ति की ओर इंगित करके कहा, "बीवियां वह वापस लाता है, भक्त!"

— उर्वशीकेसर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृता प्रीतम

और खुदा खामोश है

किसी पादरी के पास जाकर अपने गुनाहों का इकबाल करना क्रिश्चियन नजरिया है. और मैं क्रिश्चियन नहीं हूं. अगर होती भी तो यह नजरिया मेरा नहीं हो सकता था. जानती हूं– कि कोई पादरी मुझे इस काबिल नहीं लग सकता था कि आंखों में आंसू लिये, मैं उनके सामने भरी-सी आवाज में अपने गुनाहों का इकबाल करती...

मेरा रिश्ता सीधा खुदा के साथ है. जो लोग यह रिश्ता नहीं बना पाते, उनकी मजबूरी होगा कोई पादरी, मेरी मजबूरी नहीं है...

कुछ लोग पादरी की जगह कोई और माध्यम तलाश करते हैं. उन्होंने इसके लिए साईको एनेलेसिस का रास्ता खोज लिया है. इस पर बर्ट्रेंड रसेल ने एक पेशीनगोई की थी कि आने वाले वक्त में हर इंसान को साइकेट्रिस्ट की जरूरत पड़ेगी, क्योंकि किसी को कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिल पायेगा, जो इतने सब्र से उनकी बात सुन सके. इसलिए लोग जब चाहेंगे, एक घंटे के लिए एक सुननेवाले को खरीद लेंगे...

और मैं समझती हूं कि इस मामले में शायर और अदीब लोग बहुत हद तक खुशनसीब होते हैं कि उनके किरदार, उनके मन की बात कहने का माध्यम बन जाते हैं, और हजारों पाठक उन्हें सुनते रहते हैं...

अब 'रसीदी टिकट' लिखने के बाद भी जब 'सारिका' ने तकाजा किया कि मैं कुछ और लिखूं तो कुछ भी मेरी पकड़ में नहीं आया, कि आखिर वो कौन-सी बात है, जो मैंने अपने दिल के कोने में कहीं किसी गांठ में बांधकर रखी हुई है...

और कह सकती हूं कि कुछ भी मेरे हाथ में नहीं आया...

जो हाथ में आता है, वो अपनी ही एक हैरानी है. और एक व्यथा, लेकिन जानती हूं कि वो मेरा गुनाह नहीं है.

हां, एक सवाल है, जो हाथ में आता है कि अगर मेरा कोई गुनाह नहीं है, तो फिर यह हैरानी और यह पीड़ा मेरे किस गुनाह का सिला है?

यह सवाल बरसों से मेरे सामने था, इसलिए सोचती हूं– किसी दिन तो कहना ही था, आज ही कह देती हूं कि अपने इस सवाल का कुछ जवाब मैंने पाया है. और देखा है कि यह मेरा ही गुनाह था, जिसके दंड स्वरूप मुझे यह व्यथा मिली है...

मानना होगा कि कुछ घटनाएं ऐसी होती हैं, जिनमें समय और स्थान अपना दखल नहीं रखते– बीयोंड टाईम एंड स्पेस...

एक दिन यह काल-गणना मेरे हाथ से छूट गयी थी तो देखा कि कोई मठ-सा है, कोई ऋषि आश्रम–सा, जहां मैं भी रहती हूं, कुछ और लोग भी... और फिर देखा– कि हमारे उस आश्रम में एक स्त्री ने एक बच्चे को जन्म दिया है और इस वाकये को ऋषि की नजर से छुपा लिया जाता है. आश्रम में किसी को पता नहीं चलता. सिर्फ दो-एक लोग हैं जो जानते हैं, और बच्चे को वहां से कहीं ले जाते हैं...

देखती हूं– वह स्त्री पीली-सी हुई, एक अंधेरे कमरे में एक चारपाई पर पड़ी है...

उस वक्त मैं उसे एक खत लिखती हूं, बड़े ही खूबसूरत फिकरे तराशती हूं, जिनमें एक फिकरा था– "कुदरत का दिया

हुआ यह कैसा वक्त है, जब अपने ही बदन में से एक प्राप्ति का एहसास भी है और अपने ही भीतर से कुछ खो जाने का एहसास भी..."

और देखती हूं– यह खत लिखते समय मेरा मन निर्मल नहीं है. सोच रही हूं– मेरा यह खत वक्त का एक दस्तावेज होना चाहिए, जिसे गौर से पढ़ने पर यह सारा रहस्य सबके सामने आ जाये और इस मठ के सारे लोग इस वाकया को जान लें. मठ के ऋषि भी...

यह 31 जुलाई, 1986 की रात थी और उस खत के फिकरे तराशते हुए जब मेरी नींद टूट गयी, तो एहसास हुआ कि मैंने अपने ही किसी गुनाह का पता पाया है, जो जाने किस काल में किया था...

मैं जानती हूं, कि यह मेरा गुनाह था, जिसे मैंने एक दर्शन की तरह देखा.

दूसरे लफ्जों में यह कहती हूं कि यह मेरा 'मैं' था, जिसने मेरे सामने गुनाह का इकबाल किया...

गुनाह तो गुनाह है– चाहे वो किसी भी जन्म में किया हो...

मेरे गुनाह का यह बीज कहां तक पनप पाया था, मैं नहीं जानती. नहीं जानती कि जो खत मैंने लिखा था, वो किस तरह सबके सामने आया होगा. उस मठ के ऋषि ने उसे कैसे लिया होगा, और उस स्त्री ने मुझे कैसा श्राप दिया होगा...

लेकिन– इसका एहसास मेरी रगों में खून की तरह चलता है और कभी-कभी तड़प-सी जाती हूं कि अपने इस गुनाह की मैं तलाफी कैसे करूं?

जानती हूं अपनी नजर में उसका इकबाल करना है, लेकिन कुछ सुकून का इकबाल करना है, लेकिन कुछ सकून का एहसास होने पर भी इसकी पीड़ा नहीं जाती...

मैं कई बार हैरान-सी खुदा से पूछती हूं... अब क्या मुझे श्राप मुक्त नहीं करोगे?

और लगता है– वो जवाब में मुस्करा-सा देता है और कुछ नहीं कहता... □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजेंद्र राव

महरबां कैसे-कैसे

वर्ष भर में विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली चुनी हुई कहानियों का संकलन प्रकाशित करने की परंपरा डा. महीप सिंह और देवेश ठाकुर ने डाली. बाद में बहुत से लोगों को यह काम जरूरी लगने लगा और प्रतिवर्ष प्रतिनिधि संकलन प्रकाशित होने लगे. यह काम अर्थात् प्रतिनिधि कहानियों का चयन और संपादन उतना आसान नहीं जितना दिखाई देता है. इसका ज्वलंत उदाहरण है डा. हेतु भारद्वाज द्वारा संपादित 'प्रतिनिधि हिंदी कहानियां 1987' की भूमिका. भूमिका के प्रथम वाक्य में ही 'रविवार' के वर्षांत अक (27 दिसंबर 87) से वरिष्ठ कथाकार श्री श्रीलाल शुक्ल के लेख का एक 'तकलीफदेह' उद्धरण दिया गया है. चौथे पैराग्राफ में तीन बार फिर श्रीलाल शुक्ल के उक्त लेख के उद्धरण प्रस्तुत करके कुछ स्थापनाएं जोरदार ढंग से की गई हैं.

यहां हम यह पूछना चाहते हैं कि रविवार के वर्षांत अंक में 'हिंदी कहानी मुख्य धारा से कट गई है' लेख क्या सचमुच श्रीलाल शुक्ल का लिखा हुआ है? हेतु भारद्वाज हिंदी कथा साहित्य के गंभीर अध्येता हैं और संपादकीय कर्म में उतकी निष्ठा संदेह से परे है परंतु यह भूल लगभग अक्षम्य है. हुआ यह है कि उक्त लेख मं 1987 में प्रकाशित श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास 'पहला पड़ाव' की सराहना की गई थी अतः संपादकीय विभाग ने उनका चित्र लेख के बीच में देकर उन्हें वर्ष का सफलतम उपन्यासकार जताना चाहा. लेख के साथ लेखक का नाम बाकायदा दिया गया था फिर भी हेतु भारद्वाज जैसे विद्वान से ऐसी चूक हुई. हिंदी कथा साहित्य में जो आपाधापी चल रही है उसे देखते हुए यह भी नहीं लगता कि एक प्रतिनिधिसंलकन की भूमिका में हुए गलत उल्लेख का किसी को पता भी चल पाता—महज संयोग है कि लेख इन्हीं पंक्तियों के लेखक का लिखा हुआ है.

गर फिरदौस बररूए

इंद्रप्रस्थ भारती के अंदरूनी आवरण पृष्ठों में हिंदी अकादमी, दिल्ली की योजनाओं को कार्यक्रमों की लंबी सूची दी गयी है जिसमें 60 सूत्र हैं. इन्हें पढ़ना शुरू किया तो पढ़ते चले गये. अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हो रहा था कि अपने देश में कोई जगह ऐसी भी है जहां साहित्य और साहित्यकारों के हिर्लचितन में गहरे डूबे रहने वाले लोग कुर्सियों को सुशोभित कर रहे हैं. इस सूची का पारायण करके मन हुआ कि बांधें बोरिया बिस्तर और पहुंच जायें दिल्ली, वहां अकादमी वाले सब संभाल लेंगे. फिर संशय हुआ कि यह भी सरकारी योजनाओं की तरह गूलर का फूल ही साबित न हो. इस घोषणापत्र में साहित्यकारों को सम्मान, आर्थिक अनुदान, आर्थिक सहयोग, वित्तीय अनुदान तो होंगे ही रचनात्मक लेखन और प्रकाशन के लिये भी आर्थिक सहायता उपलब्ध करायी जाएगी. नवोदित लेखकों को पुरस्कार-प्रोत्साहन और लघु पत्रिकाओं को वित्तीय अनुदान, आर्थिक सहायता मिलेगी. छात्रों के लिये अलग से पुरस्कार और छात्रवृत्तियां. लेखकों के, कवियों के विशिष्ट तथा बड़े सम्मेलन, मासिक साहित्यिक कार्यक्रम, रेडियो—टी.वी. पर प्रायोजित कार्यक्रम, हिंदी फिल्म योजना और प्रतिभाओं की खोज... गर फिरदौस बररूए जमी अस्त, हमी अस्तो.

मार्क्सवाद और भारतीय यथार्थ

ज्ञानरंजन भले ही इलाहाबाद के मकाबले लखनऊ-भोपाल-पटना को कुछ न समझते-गिनते हो परंतु लखनऊ का अपना अलग ठाठ है. साहित्य और संस्कृति के मामले में यह भोपाल का निर्धन संस्करण तो है ही, पं. अमृतलाल नागर, श्रीलाल शुक्ल, शिवानी, कुंवर नारायण, , कामतानाथ, मद्राराक्षस और के.पी. सक्सेना जैसे लेखकों से गुलजार इस शहर में जो नयी प्रतिभा चर्चित हो रही हैं, उसे पदमनाभ प्रभास के नाम या उपनाम से जाना जाता है. आप भारतीय प्रशासनिक सेवा की साहित्य को देन हैं. एक दोपहर श्रीलाल शुक्ल के साथ पद्मनाभ प्रभास की रचनाएं सुन कर हमें लगा कि लीलाधर जगूड़ी को अपना जोड़ीदार मिल गया. लखनऊ के जिक्र के साथ गोपाल उपाध्याय और उनकी पत्रिका 'उत्कर्ष' का जिक्र न हो यह कैसे संभव है. 'उत्कर्ष' के नये अंक में पद्मनाभ ने 'मार्क्सवादी आलोचना : एक परिप्रेक्ष्य' में लिखा है कि, "दुर्भाग्य यह है कि यहां मार्क्सवाद और भारतीय यथार्थ के बीच एक विचित्र प्रकार की दूरी पैदा हो गई है. यही कारण है कि मार्क्सवाद शोषण से मुक्ति और नये समाज के निर्माण की राजनीति का अगुआ रहने के बजाए बहुत पीछे छूट गया है. यह रूप की सार तत्व पर विजय है; यह आवरण की देह पर जकड़ का सूचक है और अंततः यथार्थ के युद्ध की पराजय का संकेत. इसलिये सही मार्क्सवादी दृष्टि वह होगी जहां वह सही भारतीय दृष्टि में बदल जायेगी और मार्क्सवाद यह कार्य करता लुप्त हो जायेगा. यह भारतीय समाज की विजय की पहल होगी "

केवल आंतरिक आनंद के लिए

मनेंद्रगढ़ (सरगुजा) म.प्र. से प्रकाशित लघु पत्रिका 'शुरुआत' में संबोध प्रकाशन योजना का विज्ञापन कुछ इस तरह छपा है, "आपकी कृतिया भी प्रकाशित हो सकती हैं—(1) पांडुलिपि स्पष्ट लिख कर या टंकित करवाकर भेजें. (2) अधिकतम पृष्ठ संख्या 100 फुलस्केप पेज तक ही सीमित रखें. (3) आंशिक आर्थिक सहयोग रचनाकार द्वारा अपेक्षित है. (4) प्रकाशन द्वारा सहयोग राशि के आधार पर प्रकाशित प्रतियां निःशुल्क दी जा सकेंगी. (5) प्रकाशन द्वारा प्रथम संस्करण पर कोई रायल्टी देय नहीं होगी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जान ओ' हारा

आतंक

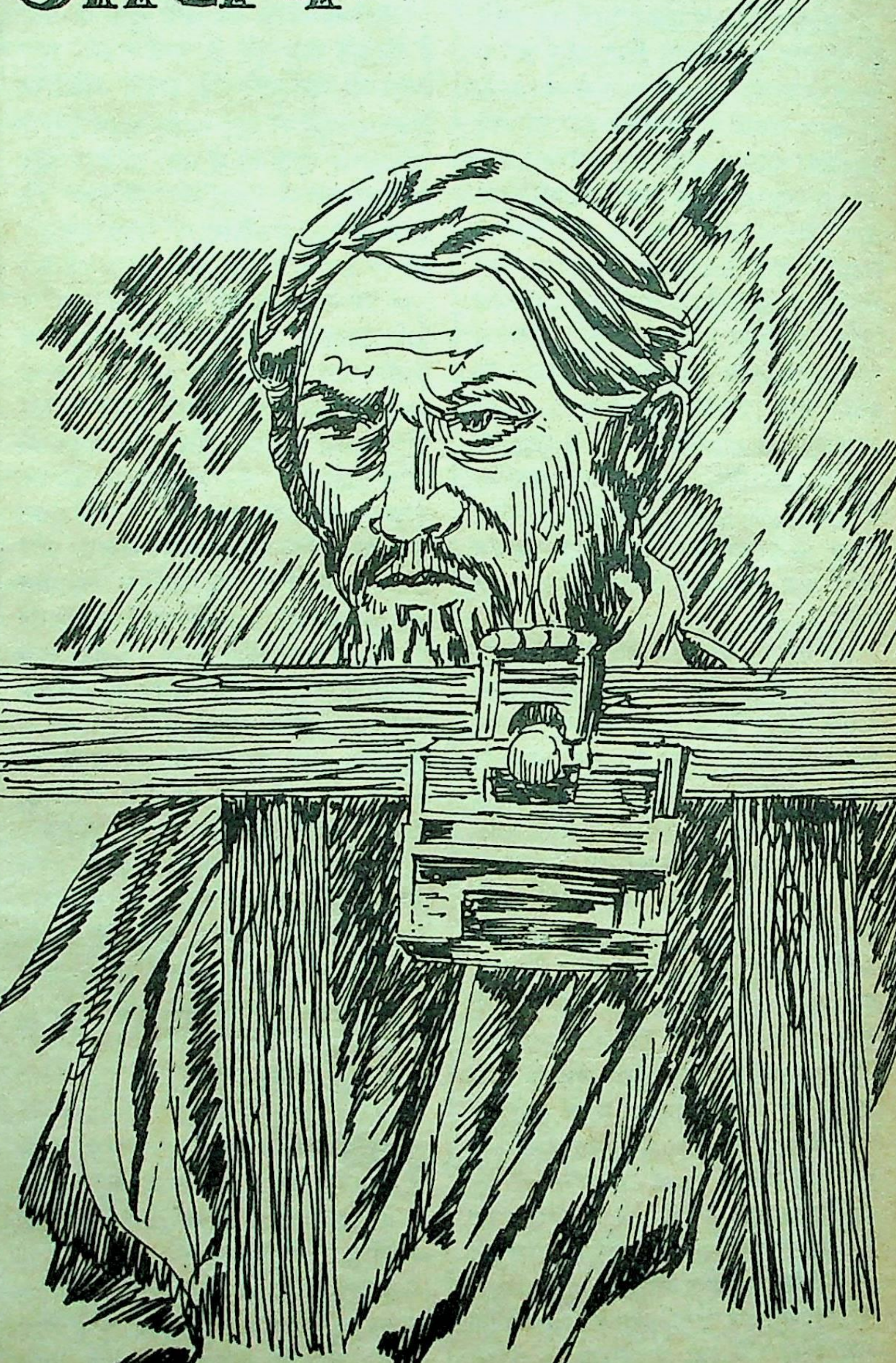

पुलिस चीफ ब्रेडले ने मार्विन नाम के एक जुआरी की फाइल अपने दायीं ओर सरकाते हुए अपने सहकारी से कहा, ''हवालात में मार्विन नाम का एक कैदी बंद है. उसे यहां ले आओ.'' मार्विन के आने पर पुलिस चीफ ने उसे सर से पांव तक गौर से देखा और कहा, ''देखो, मार्विन! तुम्हें एक मार्च तक यह शहर छोड़कर चले जाना है. उसके पहले, तीस दिन तक तुम्हें काउंटी जेल में रहना पड़ेगा. वहां रहने में तुम्हें कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए क्योंकि तुम्हें काउंटी जेल में रहने का अभ्यास है, अनुभव है.''

''जी हां, काउंटी जेलों में रहने का मैं इतना आदी हो गया हूं कि तीस दिन एक पांव पर खड़ा होकर भी बिता सकता हूं.'' उसने धीर-गंभीर शब्दों में कहा, ताकि इन शब्दों के पीछे का व्यंग्य पुलिस चीफ़ की समझ में न आ सके. वैसे, वह जानता था कि काउंटी जेल में बिताये गये तीस दिन किस सीमा तक आदमी का मानसिक संतुलन बिगाड़ सकते हैं. जेल का खराब, सड़ा हुआ खाना... जेल की दुर्गंध,... और कैदियों के दीवानगी भरे एहसास और विलाप!...

''यह तो मेयर साहब की मेहरबानी है कि तुम्हें तीन महीने की जगह सिर्फ एक महीने जेल में रहना पड़ेगा. वे चाहते हैं कि तुम अब जुआ खेलना बंद करो, और इज्जत की जिंदगी बिताओ... तुम्हारे इरादे क्या है?'' ब्रेडले ने पूछा.

''अभी कुछ सोचा नहीं है. आपकी ओर से कोई सुझाव!''

''सुझाव तो यही है कि जुए की लत से आजाद होकर कोई अच्छी नौकरी ढूंढ़ो, मगर वह सुझाव तुम्हें शायद स्वीकार्य न हो.''

''मेरी मुसीबत यह है, चीफ़ महोदय, कि मैं सिर्फ एक ही काम जानता हूं—जुआ खेलना. दूसरा और कोई काम मुझे आता ही नहीं है.''

''लेकिन तुम्हारे इस काम से तुम्हें क्या लाभ हुआ है? कभी सोचा है? साल में छः महीने अपने इसी काम की वजह से जेल में रहते हो. खैर, इस बार जेल से छूटकर कहां जाने का इरादा है? इस शहर में तो मैं तुम्हें आने नहीं दूंगा.''

''मैं सीधा मियामी जाऊंगा. वहां मेरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीवी, बच्चे होंगे.''

''लेकिन जब तक तुम मियामी पहुंचोगे तब तक तो वहां जुए का मौसम खत्म हो चुका होगा.''

''असल में हुआ यह, सर, कि यह निर्णय मेरे वकील ने बिना मुझसे पूछे मेयर के सामने ले लिया था. मेयर मुझे 90 दिनों तक जेल में रखना चाहते थे, मगर मेरे वकील ने उन्हें आश्वासन दिया कि यदि मुझे 30 दिन बाद जेल से मुक्त कर दिया गया तो मैं तीस दिन बाद यह शहर हमेशा के लिए छोड़कर मियामी चला जाऊंगा. मियामी का नाम उसके जहन में कैसे आया, मैं नहीं जानता, मगर अब उसकी बात रखने के लिए मुझे मियामी जाना ही पड़ेगा. अन्य कोई विकल्प नहीं है.''

''मैं यह सब नहीं जानता. मैं सिर्फ इतना जानता हूं कि यदि मैंने कभी तुम्हें इस शहर में जुआ खलते देखा तो खुदा की कसम, इस बार तुम्हें लंबी सजा दिलवाये बिना नही मानूंगा... अच्छा, एक बात पूछने को मन हो रहा है, तुम्हारे वकील ने तुम पर इतनी मेहरबानी क्यों दिखायी? क्या उसने बदले में कुछ मांगा था?''

''उसने मुझसे बदले में कुछ नहीं मांगा और जिसे आप उसकी मेहरबानी कह रहे हैं वह उसने क्यों दिखायी, यह भी मैं नही जानता. हां, एक सवाल मुझेभी कुरेद रहा है. वह यह कि मेयर साहब तो काफी सख्त अफसर माने जाते हैं, फिर उन्होंने मुझे तीन महीने के स्थान पर एक महीने की सजा देनी क्यों स्वीकार की?''

''मेयर साहब ने जो कुछ किया, सोच-विचार कर ही किया होगा. वे बहुत समझदार और दूरंदेश आदमी हैं.''

''हां, मैं आपकी इस बात से सहमत हूं कि वे काफी समझदार ओर दूरंदेश आदमी हैं. ऐसे आदमी ही षड्यंत्र बनाने में उस्ताद होते हैं.''

''षड्यंत्र? क्या मतलब?''

''न जाने क्यों मुझे ऐसा लगता है कि मेयर साहब और मेरे वकील ने मिलकर मेरी सजा के मामले में कोई षड्यंत्र रचा है.''

''मैं ऐसे किसी षड्यंत्र की कल्पना नहीं कर सकता. लेकिन, तुम्हें इस डफी नाम के आदमी को अपना वकील नहीं बनाना चाहिए था.''

''क्यों?''

''वह औरतों के मामले में जरा... और तुम्हारी बीवी काफी सुंदर है, यह बात किसी से छिपी नहीं है.''

''सर, मेरी बीवी को चौथा महीना चल रहा है. उसकी ओर से मुझे कभी कोई चिंता नहीं रही.''

''तो फिर ठीक है. मगर तुमने जिस षड्यंत्र की तरफ इशारा किया है, मैं उसके बारे में सोच रहा था. मेयर साहब के मन में आखिर क्या है?''

''शायद वे मुझसे कुछ कराना चाहते हैं.''

''मगर क्या?''

''काश! मुझे कुछ पता होता. और मैं जानने की कोशिश भी नहीं करना चाहता. इसलिए कि मैं एक जुआरी हूं और जुआरी का मन निश्चित होने के स्थान पर सदा अधीर और कुतूहली ही रहना चाहता है.''

''हूं.''

''जुआरी को जीत में नहीं, अपना सब कुछ दांव पर लगाकर, यह इंतजार करने में ही मजा आता है कि अब क्या होगा?''

''हां, सब जुआरियों का मनोविज्ञान शायद ऐसा ही होता है.''

''क्या आप मेरे अलावा किसी और जुआरी से भी परिचित हैं?''

''हां. कुछ से मेरा साबका पड़ा है. मैंने उन सबको सोच तुम्हारे जैसा पाया. तुम सच कहते हो कि जुआरी, जो पुलिस की निगाह में एक अपराधी ही है उत्तेजना में ही जीना चाहता है. सफलता को वह अपना लक्ष्य नहीं समझता क्योंकि सफलता मिली कि उत्तेजना खत्म! मेरा एक परिचित है, जिसे जुआ खेलते-खेलते पच्चीस साल हो चुके हैं. एक बार वह जुए में पचास हजार डॉलर जीत गया, लेकिन मैंने देखा कि वह खुश होने के स्थान पर घबराया हुआ था. जीत ने उसकी उत्तेजना खत्म करके रख दी थी. जिस उत्तेजना को वह इस शानदार जीत से गंवा चुका था, उसे दुबारा पाने के लिए उसने वे पूरे के पूरे पचास हजार डॉलर दांव पर लगा दिये. इस दांव में वह पूरी रकम हार गया, लेकिन वह हार कर खुश था, क्योंकि हार ने उसे उसकी खोयी हुई उत्तेजना वापस दिला दी थी.''

''शायद आप ठीक कह रहे हैं. वैसे, मुझे भी अन्य जुआरियों की भांति जीतने में उतना मज़ा नहीं आता, जितना इस आशा से खेलते रहने में कि एक बार 'जैक पॉट' लग गया तो बीवी की सारी परेशानियां एक ही बार में दूर हो जायेंगी.''

''क्या तुम्हारी पत्नी को भी जुए का शौक है?''

''तोबा कीजिये, चीफ साहब! वह जुए की जानी दुश्मन और काफी किफायशार और दानिशमंद औरत है. जब मैं रात को घर लौटता हूं तो जीत की आधी रकम कही छिपाकर आता हूं. क्योंकि मुझे मालूम है कि बीवी मेरी जेब में एक पैसा भी नहीं छोड़ेगी, और सब कुछ निकाल लेगी. और क्यों न निकाले? उसे आखिर मेरे अलावा दो बच्चों का पेट भी पालना पड़ता है. वह भी जुआ खेलने लगे तो हम चारों भूखे मर जायें.''

''क्या तुम जुए से इतना कमा लेते हो कि अपना और अपने परिवार का पेट पाल सको?''

''बस, यूं समझ लीजिये कि हम लोग मजे में रहते हैं और काफी बचा भी लेते हैं. यह सब मेरी जुए की कमाई से पूरा नहीं होता क्योंकि मैं जीतता कम और हारता ज्यादा हूं. मगर, मेरी आमदनी का एक जरिया और भी है.''

''वह कौन-सा जरिया है?''

''मेयर साहब उस तरीके के बारे में बखूबी जानते हैं.''

''अच्छा! मगर वह धंधा आखिर है क्या?''

''उसे धंधा कहना तो ठीक न होगा, फिर भी...''

''फिर भी क्या?''

मार्विन ने कुछ क्षण तक सोचने के बाद कहा, ''धंधा यह है, चीफ साहब, कि जुआघर के मालिक का नौकर बनकर, जुआघर के ग्राहकों के साथ बेईमानी करके उन्हें हराओ, और जीती हुई रकम का एक तिहाई हिस्सा, बतौर बोनस के, मालिक से अगले दिन ले लो. इसी तरह महीने में हजारों की आमदनी हो जाती है. इसीलिए, इस धंधे को मैंने अपनाया है.''

ब्रेडले का मुंह मार्विन की यह बात सुनकर, गुस्से से लाल हो गया. पता नहीं, ईर्ष्या से या और किसी कारण से. उसने उठकर मार्विन से कहा, ''आओ चलें.''

रास्ते भर ब्रेडले मार्विन को समझाता आया कि जुआरी कभी सुखी नहीं रह सकता. ''अब तुम्हें जुए का धंधा छोड़कर कोई ईमानदारी की कमाई वाला धंधा अपना लेना चाहिए. अभी तक हम पुलिसवाले तुम्हें एक मामूली जुआरी समझकर, अदालत से कम सजा दिलवाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे. लेकिन, अगर हमें कभी ऐसा सबूत मिल गया कि तुम जुए में बेईमानी भी करते हो, तो तुम हमारी नजर में एक सामान्य अपराधी से महापराधी बन जाओगे और तुम्हारी जिंदगी पर एक अमिट ठप्पा लग जायेगा, बदमाश होने का. तब तुम्हें न कहीं कोई काम मिल सकेगा, न कोई नौकरी."

मार्विन ने मुस्कराकर कहा, "महापराधियों और बदमाशों को भी नौकरी मिल जाती है, चीफ साहब!"

"ऐसे लोगों को कौन काम देगा?"

"वे लोग, जो उनसे भी ज्यादा बदमाश और महापराधी हैं और जो हम जैसे मामूली अपराधियों को नौकर रखकर उनका शोषण करते हैं, उनकी कमाई पर धन्ना-सेठ बन बैठे हैं. समाज में बड़े प्रतिष्ठित माने जाते हैं."

"तुम्हारा मतलब...?"

"...आपके उन मेयर साहब से भी है. जिन्हें सारा शहर बड़ा ईमानदार और इज्जतदार मानता है. अब मैं आपको बता ही दूं कि उन्होंने मुझे मियामी भेजने की व्यवस्था क्यों की है. वैसे यह बड़ा राज है. और आप भी उसे राज ही समझें."

"ठीक है. यह राज मुझ तक ही सीमित रहेगा. मैं जानने को बहुत उत्सुक हूं कि उन्होंने तुम्हें मियामी भेजने की व्यवस्था क्यों की है?"

"मियामी में उनके अनेक परिचित हैं जो उन जैसे 'माफिया बॉस' हैं."

"क्या बकवास कर रहे हो? मेयर और माफिया बॉस?"

"जी हां, वे एक माफिया बॉस हैं, भले ही आप इस बात पर विश्वास करें या नहीं. खैर. वे चाहते हैं कि अपने जुआघर की एक बड़ी शाखा मियामी में भी खोलें और मैं थोड़ी ज्यादा तनख्वाह पर वही काम करूं जो अब तक उनके निर्देशानुसार मैं यहां कर रहा था."

जो सुना, उस पर, ब्रेडले को विश्वास नहीं हो रहा था. कुछ देर तक चुप रहने के बाद आखिर, उसने पूछ ही लिया, "मगर यहां... यहां उन्हें क्या कठिनाई हो रही थी?"

"वह कठिनाई... आप थे."

"मैं?" हैरत से ब्रेडले ने पूछा.

"जी हां, आप. बेअदबी माफ हो."

"मगर मैंने क्या किया है कि वह मुझे कठिनाई मानते हैं?"

"शायद आपको यह पता नहीं है, चीफ साहब कि आपने स्थानीय जुआरियों के खिलाफ एक मुहिम छेड़कर, उनका धंधा काफी हद तक चौपट कर दिया था. इस कारण, मेयर आप से बहुत नाराज हैं."

ब्रेडले आश्चर्य से मार्विन को देख रहा था.

मार्विन ने आगे कहा, "इसलिए यदि कुछ ही दिनों में आपके खिलाफ भी कोई साजिश हो जाये तो आपको ताज्जुब करने की जरूरत नहीं होनी चाहिए."

"साजिश?"

"हां, पहले आपको भ्रष्टाचार के जाल में फांसा जायेगा, और फिर आपका बेइज्जती के साथ यहां से कहीं और तबादला कर दिया जायेगा. मैं इस साजिश के बारे में जानता हूं, इसलिए आपका शुभचिंतक होने के नाते आपको उसकी पूर्व-सूचना दे रहा हूं. अब बताइये, निश्चित कौन है? मुझ जैसा जुआरी या आप जैसा जुआ-विरोधी ईमानदार पुलिस अफसर?" □

WISHING ALL OUR CLIENTS WELL WISHERS & FRIENDS
A JOYOUS DIWALI & PROSPERIOUS NEW YEAR

MFGD BY:— M/S NEWLOOK BRASSIERE COMPANY
204, J Shankar Sheth Road, Girgaon Near Gaiwadi, Bombay-400 004 Tel: 356583

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

 धीरेंद्र अस्थाना

चित्रांकन : हरिप्रकाश त्यागी

पूछती है सैयदा इस जिंदगी का क्या किया!

आठवें दशक के कथाकारों में धीरेंद्र अस्थाना के कथाकार ने एक अलग ही पहचान बनायी है... जिंदगी को लेकर खास खुलापन उनकी जीवन-शैली का एक हिस्सा है! आइए देखें, भीतर की गांठों को वे किस हद तक खोल सकते हैं...!

जब मैं वयस्क नहीं था, शहर (मुजफ्फरनगर) की हर सुंदर लड़की से प्रेम करने को व्याकुल रहता था. 'सारिका' नामक पत्रिका को एक आतंक की तरह देखता-छूता था और अपने सबसे पुराने दोस्त राजकुमार गौतम के साथ लेखक बनने के ख्वाब देखा करता था—नरक ने उससे पहले ही मेरे जीवन में प्रवेश कर लिया था.

डैडी पहाड़ पर थे—जोशीमठ में, हम मुजफ्फरनगर के एक ऐसे तंग और सीलन भरे कमरे में, जिसके बाहर नाली में कीचड़ और मल-मूत्र बहता रहता था और हमें हर समय दुखी और पीड़ित रखता था. उस कमरे में हम सोते भी थे, रसोई भी करते थे, नहाते भी थे, कपड़े भी धोते थे और पढ़ते भी थे. मैं परिवार के सबसे बड़े बेटे होने का अभिशाप लिये डैडी द्वारा भेजे पैसों से घर का खर्च भी चलाता था, अपनी पढ़ाई भी करता था, अपने छोटे भाइयों को अपनी पीठ पर लादकर बड़ा करते-करते मैदान में खेलते अपने हमउम्र साथियों को क्रिकेट भी खेलते देखा करता था और उनके तथा मां के लिए खाना भी पकाया करता था. खाना यानी सबके लिए दो-दो पराठे और एक चाय, या खिचड़ी या गुड़ और चना. मां स्थायी रूप से बीमार रहती थी. अपाहिज थी.

फिर मैं देहरादून आ गया—कुछ अधिक यथार्थवादी दृष्टि और अध्ययन की अपेक्षाकृत अधिक संपन्न पूंजी के साथ. इस बार डैडी भी साथ थे. यहां जिस रात थाली में मुर्गा होता था, उसके अगले दो रोज तक सिर्फ चने भी हो सकते थे. यहां फिल्म देखने के लिए जिस दिन पांच-दस रुपये मिल सकते थे, उसके अगले कई दिनों तक घर से कॉलेज की दूरी के लिए बस का टिकट खरीदने की चवन्नी अपने एक पानवाले दोस्त ब्रह्मप्रकाश से मांगनी पड़ सकती थी. यहां बाप और दादा में मल्ल युद्ध होते देखा, यहीं मां को मार खाते देखा और यहीं पिता के विरुद्ध एक बेचैनी, एक प्रतिवाद, एक प्रतिकार और एक अवज्ञा को मन में आकार लेते भी पाया. पिता के विरुद्ध पहला प्रतिवाद मैंने यह किया कि चार मीनार की सिगरेट फूंकते हुए पूरे प्रेम नगर (देहरादून की एक बस्ती) के चक्कर काट आया ताकि शाम तक उनके पास यह खबर पहुंच जाये. खबर उन तक पहुंची लेकिन वे उसे पचा गये, तो मैं एक रात, पहली बार शराब पी आया और घर में आकर उल्टी कर दी. इसका भी कोई असर नहीं हुआ, तो मैंने रातों को अक्सर घर से बाहर बिताना शुरू कर दिया.

मुजफ्फरनगर में मेरा आर्थिक, मानसिक और भावनात्मक आधार राजकुमार गौतम था, तो देहरादून में यह दायित्व संभाला देशबंधु ने. देशबंधु एक असंभव, जटिल लेकिन मूलतः भावुकता की हद तक संवेदनशील व्यक्ति था. उससे दोस्ती बढ़ी तो मैं सर्वांग उसका हो लिया.

मेरी सबसे चर्चित और पहली कहानी 'लोग/हाशिए पर' का 'कोरिलेटिव' देशबंधु ही है. मेरी विवादास्पद कहानी—'जन्मभूमि' उसके चरित्र के माध्यम से ही मेरी अपनी जटिलताओं को मूर्त कर सकी है. केवल बत्तीस वर्ष की उम्र में ही शराब से जर्जर हो जाने वाले मेरे तन-मन के पीछे देशबंधु की ही उपस्थिति जिम्मेदार है. उसके साथ मैं रोजाना देहरादून के विभिन्न शराबघरों में रात के बारह-बारह बजे तक शराब पीता था, दो-दो बजे तक सड़कों पर घूमता-फिरता था और सैकड़ों शराबियों, गुंडों, बदमाशों गरीबों, क्रांतिकारियों, दूकानदारों और सिनेमाहॉल के गेटकीपरों के मनोलोक, स्वप्नलोक और जीवन स्थितियों में तैरता-उतरता और उनसे टकराता जूझता था. वह न होता तो जीवन की तलछट अनजानी-अनपहचानी रह जाती.

बहरहाल. देहरादून में डा. आर. के. वर्मा के साप्ताहिक अखबार '1970' में 50 रुपये माहवार पर सहायक संपादकी (जिसमें मेहमानों के आने पर सड़क पार की चाय की दूकान से चाय लाना भी शामिल था) करने के लेकर 'वेनगार्ड' साप्ताहिक में 75 रुपये महीने पर प्रूफ पढ़ने तक (जिसमें कभी-कभी मशीन मैन का सहायक बनकर छपा हुआ पेज मशीन के दो जबड़ों से बाहर निकालने का काम भी शामिल था) और घरेलू स्थितियों की असहनीयता से ऊबकर लखनऊ भाग जाने का और फुटपाथ पर रातें बिताने के बाद मित्र कौशल किशोर के कमरे में शरण पाने से लेकर वापस देहरादून लौटकर वामपंथी छात्र राजनीति में सक्रिय होने तक एक बड़ा हिस्सा ऐसा है जिसने मेरे रचनात्मक संसार में काफी कुछ जोड़ा.

अप्रैल, 1975 में मेरी पहली मैच्योर कहानी 'लोग/हाशिए पर' देहरादून की 'सिलसिला' त्रैमासिक पत्रिका में छपी और देश भर के लेखकों-पाठकों के खतों से मेरा झोला भर गया. बलराम का खत भी उन्हीं दिनों मिला. 'लोग/हाशिए पर' छपते ही मुझे बतौर साहित्यकार स्वीकार कर लिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया. तब तक मेरा परिचय राज शर्मा, मिकी, शशि गुप्ता, आलोक उपाध्याय, वेद उनियाल, पवन शर्मा और करनैल सिंह जैसे स्थानीय मार्क्सवादी नक्सली छात्र-नेताओं से हो चुका था और मैं पेशेवर क्रांतिकारी बनने के ख्वाब और जूनून से जुड़ चुका था. पहले मैं मार्क्सवादियों के छात्र संगठन एस.एफ.आई. का जिला अध्यक्ष रहा और फिर नक्सलियों से जुड़ गया. इन्हीं दिनों देहरादून से मैंने क्रमशः 'शाश्वत' और 'दस्तक' नाम से वामपंथी चेतना की लघु पत्रिकाएं भी संपादित कीं 26 जून, 1975 को लगे बर्बर आपातकाल के वक्त का कुछ समय मैंने भूमिगत होकर कलकत्ता में गुजारा.

इससे पहले 1977 में 'सारिका' में मेरी एक कहानी छपी थी 'आयाम'. कहानी पढ़कर हलद्वानी से किसी ललिता बिष्ट ने एक भावुक-सा खत मुझे लिखा, प्रेम का इतने दिनों से बाधित सोता जैसे भल-भल कर फूट पड़ा. दोनों तरफ के पत्र लंबे होते चले गये और अंततः 13 जून, 1978 की एक सुबह मैंने पाया कि ललिता मुझे सोते से जगा रही है और सूचित कर रही है कि वह अपने पिता के घर को छोड़ आयी है और अब कभी वापस नहीं जायेगी. हमने उसी दिन विवाह किया और अगले रोज पिता से सुना कि अगर जरा भी शराफत बाकी है तो 24 घंटे के भीतर घर छोड़ दो.

यानी संघर्ष फिर सामने था. पहले से कहीं अधिक मारक और हाहाकार भरा. ललिता ने कहा, "प्याज रोटी भी खिलायेगा, तो जीवन गुजार लूंगी." उसे सुन मैं लगभग रो ही पड़ा.

करीब पंद्रह दिन हमने राजपुर रोड स्थित भीमसेन त्यागी के मकान में गुजारे. वह सुदर्शन चोपड़ा के देहांत पर सपरिवार दिल्ली चले गये थे. काफी समय बाद लौटे, तो साथ में संदेश भी लाये कि फौरन दिल्ली जाकर राजकमल प्रकाशन ज्वाइन कर लूं. और इस तरह मैं दिल्ली आ गया... राजकमल की साढ़े तीन सौ रुपये महीने की नौकरी पर. ललिता कुछ दिन मां के साथ रही फिर अपनी मां के पास चली गयी, नवंबर 1979 में मैं उसे भी दिल्ली ले आया. दिल्ली में शुरू के काफी समय तक सुरेश उनियाल की छत, संरक्षण और भावनात्मक सुरक्षा मिली जिसने लड़ने और जीने के हौसले को जिलाये रखा.

लेकिन दिल्ली में लड़ने, जीने, बचे, रहने, बनने और संवरने का अध्याय अगर किसी ने लिखा है तो केवल ललिता ने. आज जो यह थोड़ी बहुत रचनात्मक उलपब्धियां दिख रही हैं, इनके पीछे की संघर्षशीलता, यातना, हताशा और अंधेरे को उसने बूंद-बूंद पिया है.

यह एक तल्ख स्वीकार है कि अगर 1977 के अंतिम समय में मेरा-उसका परिचय न हुआ होता और 13 जून, 1978 के रोज वह सहसा मेरे सामने आकर खड़ी न हो गयी होती तो मैं अब तक या तो देहरादून के किसी शराब के ठेके पर मर-मरा चुका होता या आत्महत्या कर चुका होता.

31 मार्च, 1981 को कुछ मतभेदों के चलते, आवेश में आकर मैंने राजकमल छोड़ दिया. तब हम दक्षिण दिल्ली के राजनगर इलाके में आठ बाई आठ फुट के एक तंग कमरे में रहते थे. हम यानी मैं, ललिता, मेरा बेटा आशू और ललिता के गर्भ में उपस्थित दूसरा बेटा. मैं दिन भर यूं ही भटकता रहा और शाम को सीमापुरी के ठेके पर चला गया. वहां मैं रात के ग्यारह बजे तक शराब पीता रहा और इतना भावुक होने के लिए खुद को लगातार कोसता रहा. रात को बारह साढ़े बारह बजे मैं घर में घुसा. टूटा, क्षत-विक्षत और शराब के नशे में आक्रांत. वह रात मेरे जीवन की बहुत गलीज, नारकीय और भीतर तक हिला देने वाली रात है. मैंने ललिता को बताया कि मैंने नौकरी छोड़ दी है. पहली बार वह डर गयी. असुरक्षा, अभाव और भटकाव का जो दर्द उसके सीने में उठा उसने सहसा ही उसे एक आम भारतीय स्त्री में बदल दिया और वह मेरी उस भावुकता, जिसे वह प्यार करती थी, को कोसने लगी. बात बढ़ती गयी और एक-दूसरे के प्रति विरोध, अविश्वास और अवज्ञा का भाव भी उग्र होता गया. नतीजा संहार में निकला. आज भी मैं इस अपराध-बोध से अपना पीछा नहीं छुड़ा पाया हूं कि उस रात मैं ललिता को तब तक मारता रहा जब तक कि बेहोश नहीं हो गया.

एक अप्रैल को मैं बेरोजगार रहा. मेरा उपन्यास राधाकृष्ण से छप रहा था— 'समय एक शब्द भर नहीं है.' उसी की प्रगति को जानने मैं राधाकृष्ण के मालिक अरविंद कुमार से मिलने गया. बातचीत में यह बात खुल गयी कि मैं राजकमल से इस्तीफा दे चुका हूं. अरविंद जी ने कहा, "हमारे यहां ज्वाइन कर लो." मैंने पूछा, "कब से." उन्होंने कहा, "आज से." मैंने कहा, "कल से आ जाऊंगा." और 2 अप्रैल, 1981 से मैं 'राधाकृष्ण' का मुलाजिम हो गया— नौ सौ रुपये महीने पर.

4 अगस्त को ललिता सफदरजंग अस्पताल में एडमिट हुई. दूसरी संतान को जन्म देने के लिए. उसे भर्ती करा कर मैं घर लौटा, तो 'दिनमान' से नंदन जी का खत आया मिला कि तत्काल मिलो. मैं उल्टे पांव 'दिनमान' पहुंचा.

नंदन जी बोले, "सात अगस्त से 'दिनमान' ज्वाइन कर लो. फिलहाल 'प्रूफरीडर' का पद है. बाद में उपसंपादक के लिए प्रयत्न करूंगा." मैं उनका आभारी होता हुआ घर लौटा और अस्पताल पहुंचा. तब तक ललिता दूसरे बेटे राहुल को जन्म दे चुकी थी.

दिल्ली आने के शुरुआती समय और बाद में जो मित्र मेरे जीवन में आये उनकी संख्या बहुत अधिक है. लेकिन जिनकी वजह से मेरे इमोशनल और क्रिएटिव संसार में एक समृद्धि आयी उनमें कन्हैयालाल नंदन, राजेंद्र यादव, हरिप्रकाश त्यागी, हरिनारायण, रामकुमार कृषक, वीरेंद्र जैन, उदय प्रकाश, महेश्वर दयालु गंगवार, डा. जगदीश चंद्रिकेश आदि प्रमुख हैं.

तो इस तरह मैं शराबी-कबाबी दोस्तों के साथ गुजारी, आबाद-बरबाद रातों, छात्रों की हड़तालों, मजदूरों के जुलूसों, बौद्धिकों के स्वप्नों, क्रांतिकारियों के भाषणों, अभावों के दुखों, दुखों की भाषा और भाषा के आंदोलनों से होकर लेखन को छोड़ता क्रांति को अपनाता, क्रांति को छोड़ता प्रेम को पकड़ता, प्रेम से मुक्त होता शराब में डूबता, शराब से निकलता थियेटर में घुसता, थियेटर से भागता नौकरी को ढूंढता, नौकरी को छोड़ता, शहरों में भटकता, लोगों में जाता, लोगों से आता, हजार-हजार लगावों, परेशानियों और कुंठा में डूबता-उतराता हुआ अंततः राजधानी में हूं— पांच कहानी संग्रहों, दो उपन्यासों, एक नाटक, एक इंटरव्यू की किताब और कुछेक समीक्षाओं की बहुत थोड़ी-सी पूंजी के साथ. श्रीकांत वर्मा की तरह अपने से यह कहता हुआ— "पूछती है सैयदा, इस जिंदगी का क्या किया?" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तालस्तोय

सार्वजनिक रूप से अपनी कमजोरियों, भूलों को स्वीकार कर लेने वाले विश्वप्रसिद्ध व्यक्तियों में तालस्तोय, रवींद्रनाथ, नेहरू और दिनकर का अंदाज अपनी ही तरह का था. यहां प्रस्तुत हैं इनकी आत्मस्वीकृतियां...

खुद से फरार होकर कहां जायेंगे हम...?

उन दिनों की याद मुझमें भय पीड़ा और तकलीफ पैदा करती है जब मैंने युद्ध में सैनिकों को मारा... लोगों को खत्म कर देने के लिए द्वंद्व-युद्ध के लिए ललकारा... खेतिहार मजदूरों को अकारण दंडित किया... यह वे दिन थे जब मैं अय्याशी तो करता ही था लोगों को धोखा भी देता था. झूठ, राहजनी और नशे से लेकर व्यभिचार तक ऐसा कोई अपराध न था, जो मुझसे अछूता रहा हो. तकलीफ इस बात की थी कि इस सबके बावजूद लोग मुझे भला और नैतिक आदमी मानते थे. यह जीवन मुझे करीब दस साल तक जीना पड़ा... इसी दौरान मैंने लिखना शुरू किया. मेरे लेखन में सब कुछ वैसा ही था जैसा आचरण में. मैं चूंकि मशहूरी और पैसा कमाने के लिए लिख रहा था इसलिए यह जरूरी था कि अच्छाई को छिपाकर बुराईयां सामने रखी जायें. मैंने ऐसा ही किया...

स्वदेश लौटकर मैंने खुद को किसानों के स्कूल से जोड़ लिया. यह काम मुझे अच्छा इसलिए लगा कि मुझे वहां झूठ का सामना नहीं करना पड़ता था... झूठ, जो निश्चित रूप से मुझमें विद्यमान था. अक्सर यह झूठ तब मेरे चेहरे पर उभर आता था जब मैं लोगों को साहित्यिक तरीके से पढ़ाने की कोशिश करता. सच यह था कि मैं अपने आप में यह सोचता रहता कि क्या खुद जाने बिना किसी को कुछ पढ़ाया भी जा सकता है! मैं अपनी आत्मा की गहराइयों तक यह महसूस करता कि मैं कुछ भी ऐसा नहीं बता सकता जो उद्देश्यपूर्ण हो. और इसका कारण भी था कि मैं खुद उद्देश्य की समझ नहीं रखता था... और तब मैं दूसरी बार खुद कुछ जानने के लिए विदेश गया.

...अचानक मुझे भयानक खालीपन ने घेर लिया. कुछ क्षण तो ऐसे भी आये जब मुझे लगा कि मैं टूट गया हूं. मैं समझ नहीं पा रहा था कि मुझे कैसे जीना है और क्या करना है. मैं निराशाजनक स्थितियों में जी रहा था. टूटन के ऐसे क्षण निश्चित अंतराल के बाद आने लगे. जैसे किसी लिखे कागज पर स्याही गिर पड़े, ठीक इसी तरह मेरे दिमाग में अंधेरा छा गया था... अब मै समझ गया था कि यह सब अकारण नहीं है. उभरते हुए सवालों का जवाब देना जरूरी है. क्योंकि जिस तरह अब तक मैं इन सवालों को लेता रहा था उससे तो संभवतः मैं पूरी जिंदगी कुहासे से उभर नहीं पाता. मुझे लगा, अगर इन सवालों का जवाब मैं नहीं खोज पाया तो ये सवाल ज्यादा इंतजार नहीं करेंगे. ...लेकिन उत्तर सचमुच मेरे पास नहीं थे. मुझे लगा कि पैरों तले की जमीन खिसक रही है. अपने अंत को करीब आता देख मैं घबराते हुए यह महसूस कर रहा था कि सच यही है, जो आंखों के सामने है. बाकी सब छलावा. मेरा जीवन विराम-चिन्ह पर आकर रुक गया था और मैं अपने आप को खत्म कर देना चाहता था. लग रहा था जैसे लोग जीवन के अर्थ जानने की घोषणा करते हुए जी रहे हैं... अपना अंत कर देने का विचार आते ही मैं गहरे दुख से भर जाता. यह मेरे लिए ईश्वर की खोज थी. दरअसल, यह दृश्य से उठी भावना थी. अचानक मैंने अपने आप से कहा, ठीक है... भगवान नहीं है और ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो मेरी कल्पना से परे हो. बल्कि यह सब मेरी जिंदगी की हकीकत है. मेरे अंदर से आवाज आयी. और तुम क्या पाना चाहते हो. यह वही है. जिसके बिना कोई नहीं जी सकता. ईश्वर को जानना और जीना एक ही है.

रवींद्रनाथ ठाकुर

मां से जब मैंने कहा कि मैं पिता के पास वाल्मीकिकृत मूल रामायण पढ़ा करता था जिसमें संस्कृत ही संस्कृत है, मां इस समाचार से मुझे कर्तव्यशील बताते हुए खुद को धन्य समझती और कहती, "अरे उस रामायण में से मुझे भी कुछ सुना :"

दरअसल उस रामायण का वाचन मैंने नाममात्र को ही किया था. संस्कृत पुस्तक में दिये गये रामायण के उद्धरण ही मैंने पढ़े थे. जिन्हें मैं ठीक तरह से समझ भी नहीं पाया था. मां के कहने पर जब मैंने इस भाग को फिर से देखा तो लगा जैसे मैं थोड़ा-बहुत जाना-समझा भी भूल गया हूं. मैं इस भ्रम में था कि मुझे सब कुछ याद है पर स्थिति एकदम विपरीत थी. और मैं अद्वितीय पुत्र की बुद्धि का पराक्रम देखने की इच्छुक मां से यह कहने का साहस नहीं जुटा पा रहा था कि उसका पुत्र पढ़ा-पढ़ाया सब भूल गया है... मां को जो कुछ मैंने सुनाया और जैसी व्याख्या की वह दरअसल महर्षि वाल्मीकि के अर्थों से एकदम हट कर थी. मैं समझता हूं कि माता से प्रशंसा पा लेने की महत्वाकांक्षा रखनेवाले बालक के साहस पर कोमल हृदय वाल्मीकि ने अवश्य कृपा की होगी. उसे क्षमा किया होगा. किंतु गर्व परिहार करनेवाले मधुसूदन ने क्षमा नहीं किया...

मैं कुछ बड़ा हो गया था. और मुझे जमींदारी की देखरेख के लिए नियुक्त किया गया. पिताजी की आंखें कुछ कमजोर हो चली थीं. इसलिए हर महीने दूसरी और तीसरी तारीख को मुझे जमा खर्च का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आंकड़ा पिता जी को पढ़कर सुनाना होता था. पहले तो मैं हर खाते की जोड़ की रकम सुनाता था फिर जिस कलम पर उन्हें शंका होती उसकी तालीम पढ़ने का मुझे आदेश मिलता. इस समय मैं उन्हें वही खर्च बतलाया करता था जो उन्हें ठीक लगते थे. नापसंद खर्चों को टालकर झट से दूसरी कलम पढ़ने लगता... पर यह बात उनकी आंखों से छुपी न रहती और मुझे महीने की शुरूआत के दिन परेशानी में बिताने पड़ते...

अब मैं साहित्य समालोचकों के बीच तालसुर के परंपरागत नियमों को दरकिनार कर नये नियमों को चलाने और तोतले गानेवाले के रूप में प्रसिद्ध हो गया था. मुझ पर यह आरोप था कि मेरे लेख स्पष्ट नहीं होते. उस वक्त भले ही यह आरोप मुझे अच्छा न लगा हो पर लगता है कि वह निराधार तो नहीं ही था. दरअसल, कवित्व के जगत के अनुभव की शक्ति नहीं थी.

और मिलती भी कैसे, जबकि बचपन में मेरी हालत अकेले में बंदी बनाकर रखे गये इंसान जैसी थी.

जवाहर लाल नेहरू

मेरी उम्र तकरीबन पांच-छः साल की रही होगी. एक रोज पिताजी की मेज पर मैंने दो पैन रखे हुए देखे. पैन सुंदर थे और मैं ललचा गया. यह सोचकर कि पिताजी का काम तो एक ही पैन से चल जायेगा मैंने उन का एक पैन उठा लिया. अगले दिन जब पैन की खोज शुरू हुई तो मैं चुप्पी साध गया. पर पैन छुपाता कहां? मेरे पास से आखिरकार पैन बरामद किया गया. और पिताजी का एक झन्नाटेदार थप्पड़ मेरे गाल पर पड़ा. मैं रोता हुआ मां के पास चला गया. हालांकि मैं जानता था कि मुझे गलती के लिए दंडित किया गया है. बावजूद इसके मेरे भीतर पिता को लेकर डर की एक भावना घर कर गयी. जबकि मां के प्रति मेरे मन में हमेशा प्यार गहराता रहा...

...हम लोगों का जुलूस अभी सौ गज ही गया था कि पीछे से घोड़ों की टापें सुनाई दीं. हम लोग कुछ समझते, इससे पहले ही पुलिसवालों ने हमें घेर लिया और प्रदर्शनकारियों पर डंडे बरसने लगे. लोग तितर-बितर हो गये लेकिन पुलिस पीछा करते हुए इन्हें तब तक मारती रही जब तक वे जमीन पर नहीं गिर पड़े. दैवयोग से अब तक मुझ पर लाठी न पड़ी थी और मैं भौंचक-सा सारा नजारा देख रहा था. अचानक मुझे खुद को बचाने की चिंता हुई. और मैं सड़क के किनारे-किनारे बढ़ने लगा... दूसरे ही क्षण मुझे लगा कि यह कायरता होगी. और मैं वापस अपनी जगह लौट आया. मैंने देखा कि एक पुलिसवाला लाठी ताने हुए मेरी ओर बढ़ रहा है. सर को बचाने की गरज से मैं घूम गया. और दूसरे ही क्षण मुझे अपनी पीठ पर लाठी के जबरदस्त प्रहार महसूस होने लगे. मुझे लगा कि मेरी चेतना खत्म हो रही है...

अपने जीवन में मैं अनेक लोगों से मिला किंतु बौद्धिक रूप से दो लोगों ने मुझे खासा प्रभावित किया. बी. चट्टोपाध्याय और एम.एन. राय. एम.एन. राय से मैं मास्को में मिला था... बहरहाल, मैं कांग्रेस अधिवेशन के लिए जरूरी दस्तावेज तैयार कर रहा था. मेरा आदेश था कि मिलने के लिए आने वाले से कह दिया जाये कि मैं नहीं हूं. कुछ देर बाद ही चौकीदार आकर बोला कि उसने यही कहा था लेकिन आगंतुक नहीं मान रहा और उसने कहा कि मैं जानता हूं कि नेहरूजी अंदर हैं. चौकीदार ने जो हुलिया बताया उससे मुझे लगा कि निश्चित रूप से यह व्यक्ति एम.एन. राय ही होंगे. मैं समझ गया कि राय अंदर आयेंगे और जो कुछ मैंने अभी तक लिखा है, उसे उठाकर पढ़ेंगे और हंसते हुए लौट जायेंगे. फिर उसके बाद मैं दिन भर कुछ भी नहीं लिख पाऊंगा... और सचमुच वैसा ही हुआ. □

रामधारीसिंह दिनकर

रामसेवक पहले मेरे पुत्र थे. जब घर का बोझ संभालकर उन्होंने मुझे निश्चित कर दिया, वे मेरे पिता हो गये और उन्हीं के भरोसे मैं देश-विदेश घूमता रहा. फिर जून 63 से 66 के दिसंबर तक उन्होंने मुझे घोर कष्ट दिया. तब वे 66 के दिसंबर में फिर मेरे पुत्र हो गये और मेरी गोद में आकर बैठ गये. जब तक कलह था, वे जीवित रहे. कलह शांत हुआ कि वे चल बसे.

मृत्यु के बाद रामसेवक की आंखें खुली हुई थीं, मुख भी खुला हुआ था, मगर चेहरे पर शांति थी. मानो भीतर की सारी दुर्भावना शांत हो गयी हो और वह भगवान के दरबार में निर्दोष होकर पहुंचा हो. इधर हाल से उसकी देह और खाट पर पक्षी बैठने लगे थे जो पूर्ण अहिंसामयता का प्रमाण है.

रामसेवक बड़े ही तेजस्वी और वीर्यवान थे. भगवान ने मुझे दंडित करने को उन्हें मुझसे छीन लिया. अब विधवा पतोहू और पांच अनाथ बच्चों का भार मेरी दुर्बल पीठ को ढोना पड़ेगा. जवानी भाईयों की सेवा में गयी. बुढ़ापा पोते और पोतियों की सेवा में जायेगा. मेरी जिंदगी आरंभ से अंत तक संघर्षों की कड़ी बन गयी.

कल से यशपाल जी का 'सिंहावलोकन' पढ़ रहा हूं. सिंहावलोकन यानी सशस्त्र क्रांति की कहानी. कितनी अच्छी पुस्तक है. मगर मैंने अब तक पढ़ी नहीं थी. गरचे किताब मैंने 1961 ई. में ही खरीद ली थी. इस पुस्तक से यशपाल जी का जो रूप प्रकट होता है, वह प्रशंसनीय है, श्रद्धेय है. एक बार यशपालजी मन्मथ बाबू के घर गये थे. उस रोज मन्मथ बाबू ने मुझे यह कहकर बुलाया था कि "आ जाइये. आज हिंदी के सबसे बड़े लेखक और सबसे बड़े कवि एक साथ भोजन करेंगे." मैं विवशता के कारण उस दिन उनके घर नहीं जा सका. मगर बातें उनकी याद हैं. मैं हिंदी का सबसे बड़ा कवि हूं या नहीं यह अलग बात है, लेकिन यशपाल शायद हिंदी लेखकों में एकाध दृष्टि से, सबसे बड़े आदमी हैं. उनके समान तपे तपाये मनुष्य का जो आदर हिंदी में होना चाहिए था, वह शायद नहीं हुआ है. आज मैं भी अपने को थोड़ा दोषी अनुभव कर रहा हूं. □

प्रस्तुति : राजेश कालिया एवं वीथिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गांधीजी से पार पाना मुमकिन नहीं

विश्वविख्यात हास्य अभिनेता चार्ली चैप्लिन का बाल्यकाल और किशोरावस्था बेहद गरीबी और पारिवारिक कलह के दुःखों से भरे रहे. उनका कहना है कि होश संभालते ही जो बात मुझे पहले-पहल मालूम हुई थी, वह थी– मेरी अभिनेत्री मां द्वारा पिता पर अपने बच्चे की उपेक्षा के लिए चलाया जा रहा मुकद्दमा.

दरअसल, चार्ली के पिता शराबी, गर्ममिजाज और गैर जिम्मेदार आदमी थे. बावजूद इसके चार्ली की मां ने उन्हें कभी अपशब्द नहीं कहे. बड़े होने पर चार्ली मां को ठीक से समझ सके, "मुझे विश्वास हो गया कि मां जीवन के प्रति अपने बौद्धिक दृष्टिकोण के कारण पति या किसी अन्य पुरुष को कभी गहरा प्रेम नहीं कर सकती थी. यही उनके दुख का सबसे बड़ा कारण भी था. मां की विक्षिप्तता का कारण उनकी लगातार गरीबी और अपमानजनक जिंदगी थी."

हास्य फिल्मों के निर्माता और सफल अभिनेता के रूप में खुद के प्रतिष्ठित होने का सारा श्रेय चार्ली अपने गुरु द्वारा जीवन में उठाये गये दुखों को देते हैं. "यह एक मार्के की बात है कि हास्य के मूल में दुख होता है. विश्व में अनेक हास्य अभिनेता हुए हैं जिन्होंने आत्महत्या करके अपने जीवन के दुखों से छुटकारा पाया है." चार्ली चैप्लिन ने अनेक फिल्में बनायीं जो अपनी कला के लिए उल्लेखनीय थीं. किंतु सर्वाधिक लोकप्रिय रहीं– **'द गोल्ड रश'**, **'सिटी लाइट्स'**, और **'द ग्रेट डिक्टेटर'**. चार्ली का कहना है– "मेरी कामेडी फिल्मों के मूल में कोई न कोई त्रासदी रही. **'गोल्ड रश'** की प्रेरणा मुझे एक दुर्घटना से मिली. जिसमें कुछ लोग बर्फीले पहाड़ों के बीच फंस गये थे. और जीवन रक्षा के लिए उन्होंने अपने मृत साथियों का मांस खाया था." संभवतः **'गोल्ड रश'** में जूते को उबालकर खाने का आइडिया चार्ली को इसीलिए आया होगा. पारिवारिक जीवन की दृष्टि से चार्ली कभी सुखी नहीं रहे– "जब मैं **'गोल्ड रश'** बना रहा था तब मैंने दूसरी शादी की. जो दो वर्ष बाद अपने पीछे भयानक कटुता की कहानी छोड़कर समाप्त हुई."

यह एक मार्के की बात है कि हास्य के मूल में दुख होता है... आभा मिश्र बता रही हैं... प्रख्यात हास्य अभिनेता चार्ली चैप्लिन इस सच का खुलासा किस तरह करते हैं.

चार्ली ने आत्मकथा में अनेक कलाकारों का जिक्र किया है. बेरीमोर, जिनकी हेलेमेट की भूमिका ने उन्हें विश्व व्यापी कीर्ति दी थी, चार्ली को सख्त नापसंद थे– "बेरीमोर बहुत घमंडी, नकचढ़े और प्रदर्शनवादी स्वभाव के थे." अन्यत्र अप्रत्यक्ष रूप से चार्ली यह स्वीकार करते हुए भी पाये जाते हैं कि दरअसल बेरीमोर के प्रति उनकी अरुचि का कारण बेरीमोर की असीम शोहरत थी.

कुछ लोग ऐसे भी थे जिनकी शोहरत से चार्ली को कभी ईर्ष्या नहीं हुई. एक वाकये का जिक्र करते हुए वे कहते हैं– "सन् 1931 में मैंने महान वैज्ञानिक अलबर्ट आइंसटीन को अपनी फिल्म **'सिटी लाइट्स'** देखने के लिए आमंत्रित किया. जब हम दोनों स्टूडियो जा रहे थे... सड़क पर आते-जाते लोगों ने उनका अभिवादन किया. मैंने आइंसटीन की ओर मुड़कर कहा, 'ये लोग आपकी वाह-वाही इसलिए कर रहे हैं कि ये आपको समझते नहीं हैं और मेरी इसलिए कि मुझे समझते हैं.' दरअसल, आइंसटीन एक ऐसे व्यक्ति थे. जिनकी महानता से मुझे कभी ईर्ष्या नहीं हुई."

विंसटन चर्चिल से मिलने पर चार्ली को इसलिए अच्छा नहीं लगा कि उनके विचार गांधी के बारे में चार्ली से मेल नहीं खाते थे– "चर्चिल ने मुझसे कहा कि इस आदमी (गांधी) को अब ज्यादा बर्दाश्त नहीं किया जा सकता. मैं इसे जेल में डाल दूंगा. चाहे यह खाये या भूखा मरे. मैंने कहा, यदि आपने एक गांधी को जेल में डाला तो भारत दस गांधी और पैदा करेगा. इस बातचीत के कुछ दिनों बाद ही मेरी मुलाकात गांधीजी से हुई. गांधी एक बहुत चतुर और फौलादी इच्छा शक्तिवाले आदमी थे. दरअसल उन्हें लंदन नहीं आना चाहिए था. क्योंकि वहां के लोगों के मन में उनके प्रति कल्पित महानता का जो भाव था वह उनकी शक्लोसूरत और वेश-भूषा को देखकर गायब हो गया. पूरे इंग्लैंड में उनका मजाक उड़ाया जाने लगा. यह सब देखकर मैं सचमुच बहुत दुखी हुआ. क्योंकि जब महात्मा गांधी को लंदन में (वेशभूषा के लिहाज से) मैंने एक व्यंग्यचित्र की तरह टैक्सी से बाहर निकलते देखा तो मुझे लगा जैसे वे मेरी किसी हास्य फिल्म में अभिनय करने के लिए आये हैं... **वैसे मैं गांधीजी पर एक महान फिल्म बना सकता हूं. लेकिन इस बात का मौका मिल पाना असंभव है.**

"लंदन के एक कमरे में गांधीजी के दाहिने हाथ पर मैं बैठा हुआ था और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पचासों कैमरे हमारी तस्वीर ले रहे थे. लोगों को उम्मीद थी कि मैं गांधीजी से कुछ कहूंगा पर यह क्षण मुझे इतना विस्मित कर गया था कि कहने के लिए मुझे कुछ भी नहीं सूझ रहा था... कुछ देर बाद मैंने गांधीजी से ऐसे सवाल किये जो इंग्लैंड के बुद्धिजीवी आमतौर पर गांधीजी के संदर्भ में उठाया करते थे. इन तमाम सवालों का जवाब गांधीजी ने इतनी होशियारी से दिया कि मैं सन्नाटे में रह गया. बुद्धि और तर्क के मामले में गांधीजी से पार पाना किसी के लिए भी मुमकिन नहीं है.''

दोस्त और दोस्ती को लेकर चार्ली के विचार एकदम साफ हैं, ''मुझे ज्यादा मित्रों की जरूरत कभी महसूस नहीं हुई. मैं जानता हूं कि अधिकांश मित्र मेरी प्रसिद्धि के कारण मेरी ओर खिंचे चले आते हैं. मैं यह भी जानता हूं कि प्रसिद्धि हमेशा बनी नहीं रहती. जाहिर है ऐसी दोस्ती बेमानी है...''

'चेप्लिन के प्रकट उल्लास के पीछे विशाद था और अपने महान वैभव के बीच में वे अपनी झुग्गी-झोपड़ी के दिनों को याद करके आह भरते थे...' सामरसेट मॉम के ये शब्द पढ़कर चार्ली को बहुत गुस्सा आया. और उन्होंने मॉम को गरीबी को गलत तरीके से प्रस्तुत करने के लिए दोषी ठहराया. ''दरअसल गरीबी के माहौल से मुझे किसी भी तरह का बौद्धिक या आध्यात्मिक लाभ हुआ है मैं यह मानने को तैयार नहीं हूं.''

जिंदगी भर अमरीका में रहने के बावजूद चार्ली इस देश को कभी पूरी तरह स्वीकार न कर सके. यहां की खुफिया पुलिस उनके पीछे लगातार पड़ी रही और साम्यवाद के प्रति उनकी सहानुभूति के कारण उन पर शक किया जाता रहा. अंतिम दिनों के बारे में चार्ली ने लिखा है, 'मेरा बुढ़ापा जवानी से ज्यादा अच्छा है क्योंकि अब मैं राग-द्वेष से अपेक्षाकृत मुक्ति पा चुका हूं. मुझमें अब कोई भी महत्वाकांक्षा शेष नहीं रह गयी है.' □

गांधी जी का पत्र और उसका जवाब

असत्य रूपी विष

मो. क. गांधी

यह पत्र और उसका उत्तर जीवन की एक ऐसी स्थिति से साक्षात कराता है जहां इंसान असत्य के विष से छुटकारा तो पाता ही है अपनी गलती को स्वीकार करते हुए अपना कद और भी बड़ा कर लेता है...

जब से हम ब्राइटन में मिले, आप मुझ पर प्रेम रखती रही हैं. मां जिस तरह अपने बेटे की चिंता रखती है, उसी तरह आप मेरी चिंता रखती हैं. आप तो यह भी मानती हैं कि मुझे ब्याह करना चाहिए, और इसी खयाल से आप मेरा परिचय युवतियों से कराती हैं. ऐसे संबंध के अधिक आगे बढ़ने से पहले ही मुझे आपसे यह कहना चाहिए कि मैं आपके प्रेम के योग्य नहीं हूं. मैं आपके घर आने लगा तभी मुझे आपसे यह कह देना चाहिए था कि मैं विवाहित हूं. मैं जानता हूं कि हिंदुस्तान के जो विद्यार्थी विवाहित होते हैं, वे इस देश में अपने ब्याह की बात प्रकट नहीं करते. मैंने भी उस रिवाज का अनुकरण किया. पर अब मैं देखता हूं कि मुझे अपने विवाह की बात बिलकुल छिपानी नहीं चाहिए थी. मुझे साथ में यह भी कह देना चाहिए कि मेरा ब्याह बचपन में हुआ है. और मेरे एक लड़का भी है. आपसे इस बात को छिपाने का अब मुझे बहुत दुःख होता है, पर अब भगवान ने सच कह देने की हिम्मत दी है, इससे मुझे आनंद होता है. क्या आप मुझे माफ करेंगी? जिस बहन के साथ आपने मेरा परिचय कराया है, उसके साथ मैंने कोई अनुचित छूट नहीं ली, इसका विश्वास मैं आपको दिलाता हूं. मुझे इस बात का पूरा-पूरा खयाल है कि मुझे ऐसी छूट नहीं लेनी चाहिए. पर आप तो स्वाभाविक रूप से यह चाहती हैं कि किसी के साथ मेरा संबंध जुड़ जाये. आपके मन में यह बात आगे न बढ़े, इसके लिए भी मुझे आपके सामने सत्य प्रकट कर देना चाहिए.

''यदि इस पत्र के मिलने पर आप मुझे अपने यहां आने के लिए अयोग्य समझेंगी तो मुझे उससे जरा भी बुरा नहीं लगेगा. आपकी ममता के लिए तो मैं आपका चिरऋणी बन चुका हूं. मुझे स्वीकार करना चाहिए कि अगर आप मेरा त्याग न करेंगी तो मुझे खुशी होगी. यदि अब भी आप मुझे अपने घर आने योग्य मानेंगी तो उसे मैं आपके प्रेम की एक नयी निशानी समझूंगा और उस प्रेम के योग्य बनने का सदा प्रयत्न करता रहूंगा.''

पाठक समझ लें कि यह पत्र मैंने क्षण भर में नहीं लिख डाला था. न जाने कितने मसविदे तैयार किये होंगे. पर यह पत्र भेजकर मैंने अपने सिर का एक बड़ा बोझ उतार डाला.

लगभग लौटती डाक से मुझे उस विधवा बहन का उत्तर मिला. उसने लिखा था:

''खुले दिल से लिखा तुम्हार पत्र मिला. हम दोनों खुश हुई और खूब हंसीं. तुमने जिस असत्य से काम लिया, वह तो क्षमा के योग्य ही है. पर तुमने अपनी सही स्थिति प्रकट कर दी, यह अच्छा ही हुआ. मेरा न्योता कायम है. अगले रविवार को हम अवश्य तुम्हारी राह देखेंगी, तुम्हारे बाल-विवाह की बातें सुनेंगी और तुम्हारा मजाक उड़ाने का आनंद भी लूटेंगी. विश्वास रखो कि हमारी मित्रता तो जैसी थी वैसी ही रहेगी.''

इस प्रकार मैंने अपने अंदर घुसे हुए असत्य के विष को बाहर निकाल दिया और फिर तो अपने विवाह आदि की बात करने में मुझे कहीं घबराहट नहीं हुई. □

(संदर्भ : 'सत्य के प्रयोग')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपराधी का मन

विला कॉथर

शुरू से ही यॉल बड़ा कमजोर था—शारीरिक दृष्टि से भी और मानसिक दृष्टि से भी. और, उसकी आंखों में न जाने क्या था कि उन्हें देखते ही, देखनेवाले को उससे विरक्ति हो जाती थी. उससे न घरवाले खुश थे, न बाहर वाले. जब स्कूल के प्रिंसीपल ने उसे स्कूल से निकालने की सूचना उसके पिता को दी तो उसके पिता ने प्रिंसीपल से कहा, "मैं खुद उसके आचरण से परेशान हूं और समझ नहीं पा रहा हूं कि उसे सुधारने के लिए क्या करूं."

वह स्कूल में पढ़ने के साथ-साथ, एक सिनेमा हॉल में 'अशर' (प्रवेशक) की पार्ट-टाइम नौकरी भी करता था. मगर, जब प्रिंसीपल की शिकायत पर सिनेमा के मैनेजर ने भी उसे इस नौकरी से निकाल दिया तो उसका सर चकराने लगा.

उसे डर था कि उसके पिता उसे घर में रखना तो दूर शायद उसका मुंह भी नहीं देखेंगे, मगर उन्होंने उसे शीघ्र ही डेनी एंड कार्सन नाम की एक फर्म में चपरासी की नौकरी दिलवा दी. पहले ही दिन फर्म के मैनेजर ने उससे बैंक में कुछ चैक और हजार डालर जमा करने को कहा, उसने चैक तो जमा कर दिये लेकिन एक हजार डॉलर के नोट लेकर, उसी रात अपने सपनों की नगरी न्यूयार्क रवाना हो गया. अब वह अपने सभी परिचितों की पहुंच से बाहर था, और मना रहा था कि अभी उनके चंगुल में न आये.

न्यूयार्क के अपने होटल के कमरे से वह रात को देर तक रोशनियों के बीच गिरती बर्फ के सुहाने नजारे को देखता रहा. अपनी सुखानुभूति के कारण वह धीरे-धीरे अपनी पिछली सब तकलीफों और निराशाओं को भूलता जा रहा था. इस होटल में कुछ दिन बितानें पर उसे लगा, जैसे वह अब एक नयी दुनिया का वासी है जो पुरानी, नीरस दुनिया की अपेक्षा अधिक वास्तविक है. लेकिन, कुछ दिन बाद, जब उसकी निगाह अपने शहर पिट्सबर्ग के एक समाचारपत्र में अपने बारे में छपे एक समाचार पर पड़ी तो उसका दिल बैठ गया. सारी खुशियां काफूर हो गयीं. समाचार में कहा गया था कि डेनी एंड कार्सन नामक फर्म ने उसके एक हजार डॉलर लेकर चंपत हो जाने वाले नये चपरासी के विरुद्ध कोई कार्यवाही न करने का निश्चय किया है, क्योंकि उसी फर्म में काम करने वाले चपरासी के पिता ने उस रकम की भरपाई कर दी है. समाचार में आगे कहा गया था कि उसका पिता शीघ्र ही अपने पुत्र को खोजने न्यूयार्क आ रहा है. क्योंकि उसे पता चला है कि उसका पुत्र न्यूयार्क के किसी होटल में रंगरेलियां मना रहा है. वह जानता था कि उसके पिता उसे आज या कल में खोज निकालेंगे. और दुबारा उसे उस अंधेरी दुनिया में ले जायेंगे- जिससे निकलकर वह अभी अभी आया था और जिसमें दुबारा जाने की उसकी कोई इच्छा नहीं थी.

मन में एक निश्चय करके वह होटल के बाहर आया और एक टैक्सी करके नगर से काफी दूर आ गया और टैक्सी को छोड़कर रेल की पटरियों के सहारे-सहारे आगे बढ़ने लगा. ...दूर से एक एंजिन को आते देख, वह पटरी से हटकर खड़ा हो गया, मगर जैसे ही एंजिन उसके बिल्कुल पास आया, वह उसके सामने कूद पड़ा. □

अपने-पराये

हरमॅन हुम्मेर

इतनी परेशानी फ्रायड्रिख ब्लॉख को पहले कभी महसूस नहीं हुई थी.

फर्म में लगातार नुकसान हो रहा था. पिछले सब ऑर्डर रद्द हो चुके थे और नये ऑर्डर मिलने बंद हो गये थे. फर्म की ऐसी हालत देखकर उसके भागीदार फ्रिज कून ने अलग होने का फैसला कर लिया था और कई दिन से लगातार अपने हिस्से की रकम की मांग कर रहा था. ब्लॉख के पास देने के लिए वह पूरी रकम क्या, उसका सौवां हिस्सा भी न था.

घर पर वह पहले ही बीबी की कूटक्तियों से परेशान था. वह परेशानी अब उसकी सास के आ जाने से और ज्यादा बढ़ गयी थी. उसकी सास को वही बातें नापसंद थीं जो फ्रायड्रिख को पसंद थीं. इसलिए उनके आ जाने पर उसका डाक्टरों और दवाइयों के बिलों का खर्चा भी बढ़ गया था. कारण कोई न कोई अज्ञात रोग उसे लगा ही रहता था. और सास महोदया पहले आयी थीं एकाध महीने रहने के लिए लेकिन बाद में उनका इरादा न-मालूम-कब-तक-रहने का हो गया था.

फ्रिज कून को कुछ दिन तक और भागीदार बनाये रखने के उद्देश्य से, ब्लॉख ने एक दिन उसे अपने घर पर डिनर के लिए आमंत्रित किया. डिनर के दौरान, कून ने ब्लॉख से कहा, "मेरे खयाल से जब तक फर्म के मैनेजर को नहीं बदला जाता, तब तक न तो फर्म की हालत सुधरेगी, न मेरे फर्म में भागीदार बने रहने की आशा है."

ब्लॉख ने कहा, "मैनेजर को आसानी से अलग किया जा सकता है." तभी दूसरे कमरे में बैठी उसकी सास महोदया ने आकर उससे कहा, "मैनेजर अच्छा आदमी है और भगवान सब कुछ देखता है."

फ्रिज कून पर इस बात का बहुत असर पड़ा. उसने ब्लॉख से कहा, "भई मैंने अलग होने का आखिरी फैसला कर लिया है. तुम जल्दी से मेरी रकम का इंतजाम कर लो."

तभी, ब्लॉख ने चीते जैसी फुर्ती के साथ कून की गर्दन पकड़ ली. एक जोर का हाथ का दबाव... और फिर सब कुछ खत्म! कून फर्श पर मृत पड़ा था.

"अरे, अरे, यह क्या किया, बेटा? कून तो शरीफ आदमी था," कमरे में प्रवेश करती हुई ब्लॉख की सास ने कहा.

"अब आप क्या करेंगी मां जी! आपने मुझे कून की गर्दन दबाते देख लिया है."

"गलती सबसे होती है. फिर तुम जैसे भी हो, अपने हो, कून कैसा भी था, पराया था. जब तक तुम मेरे जाने की बात नहीं उठाते, मैं तुम्हारी इस बात पर पर्दा डाले रहूंगी. यह शर्त मंजूर हो तो, चलो. इस लाश को ठिकाने लगाएं." सास ने कहा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौत किसी न किसी की

अल्बर्तो मोराविया

उसने लड़की की तरफ देखा. उस लड़की का मुंह रुमाल से बंद था और आंखें डरी हुई थीं. दोनों हाथ पीठ के पीछे बंधे थे. इस हालत में वह कोई खास अच्छी नहीं लग रही थी, पर कोई खास बुरी भी नहीं लग रही थी. लड़कियां उसे अच्छी लगती थीं पर तब नहीं जब पुलिस उसके पीछे पड़ी हो. उसने परेशान स्वर में साथी से कहा, "इसे छोड़ ही देना चाहिए था. इसकी कार ले लेते, बस!"

जो कार उन्होंने चुरायी थी, वह बीच में ही खराब हो गयी थी और तब कार की मालकिन उस लड़की ने उन दोनों को आकर दबोच लिया था. साथी ने उससे कहा, "इतना दरिया-दिल मत बन. अकल से काम ले. अगर हम इसे पकड़ कर न रखते तो वह पुलिस के पास जाती हमारा और कार का हुलिया उन्हें बताने. पुलिस को फिलहाल इतना पता है कि तनख्वाहों की रकम चुराने के लिए चोरी की एक कार का इस्तेमाल किया गया है. हम पुलिस का काम आसान क्यों करें?"

जिस चोर ने अपने साथी के सामने लड़की को छोड़ देने का प्रस्ताव रखा था, उसे लड़की से डर लगने लगा था. वह काफी कुछ जानती है. उसे मार देना ही ठीक होगा.

लड़की की कार झड़ियों में छिपी थी. उसने कार का 'बूट' खोलकर उसमें से एक 'टायर लीवर' निकाला. उसे लेकर वह वहां आया, जहां लड़की बंधी पड़ी थी. उसने लड़की को उठाया और कहा, "मरने को तैयार हो जाओ. तुम ज़िंदा रहीं, तो हम मर जायेंगे."

"मुझे क्यों मारते हो? मेरा भी वही धंधा है, जो तुम्हारा है. और कार मेरी नहीं है, हालांकि कुछ महीनों से मेरे नाम से रजिस्टर्ड है. हम दोनों बे खौफ कहीं भी जा सकते हैं, उस रकम के साथ जो इस वक्त तुम्हारे साथी के पास है. कैसी रहेगी हम दोनों की जोड़ी?"

"बहुत जमेगी. अच्छा, मैं अभी आया."

घर के दूसरे कमरे के एक कोने में उसका साथी आराम कर रहा था. उसने चुपके से आगे बढ़कर, 'टायर लीवर' उसकी पीठ में दे मारा. उसका साथी इस मार से वहीं का वहीं ढेर हो गया. उसने आकर लड़की से कहा, "मैंने अपने साथी को खत्म कर दिया. अब हम दोनों आजाद हैं, कहीं भी जाने के लिए, कुछ भी करने के लिए."

"किसी न किसी को तो मरना ही था." लड़की ने कहा, "आओ, अब मुझे खोल दो. फिर जल्दी से यहां से भाग चलेंगे." □

नाटक का अंत

एम. देलारु

बोरिस ने अपना ऊबड़-खाबड़ चेहरा दर्पण में देखा और सोचा कोई कुछ भी कहता रहे, उसका चेहरा है दिलचस्प. ऐसा चेहरा, जिसने काफी उतार-चढ़ाव देखे हैं, जो स्टेज पर कभी नायक का चेहरा बनकर दिखाई दिया है तो कभी खलनायक का.

...मगर, आज? आज कोई उसका नाम भी नहीं जानता. वह गुस्से से तमतमाता हुआ, मार्शील के बैडरूम से बाहर निकला. अब लोग उसे मार्शील एक्ट्रैस के सैक्रेटरी के रूप में ही जानते थे और वह यह भूल गये थे कि वह कभी फ्रांस का सबसे लोकप्रिय हीरो था.

वह डाइनिंग रूम में आया, जहां नौकरानी ने दोनों के नाश्ते का सामान मेज पर सजा दिया था. इतवार का दिन था और दोनों की छुट्टी थी.

नाश्ता करते करते मार्शील ने नफरत से बुझे स्वर में कहा, "कल तुम्हारी भूतपूर्व हीरोइन इविच दिखाई दी थी. बुरा हाल था बेचारी का. तुम्हारे मौजूदा हाल से भी गया बीता. मैंने अपने एजेंट से कहा, दिलवा दो बेचारी को किसी फिल्म में छोटा-मोटा काम. तो वह बोला, मैं तो बोरिस और इविच दोनों के लिए ही कोशिश करता रहता हूं. मगर दोनों की किस्मत ही खराब है, तो मैं क्या करूं?"

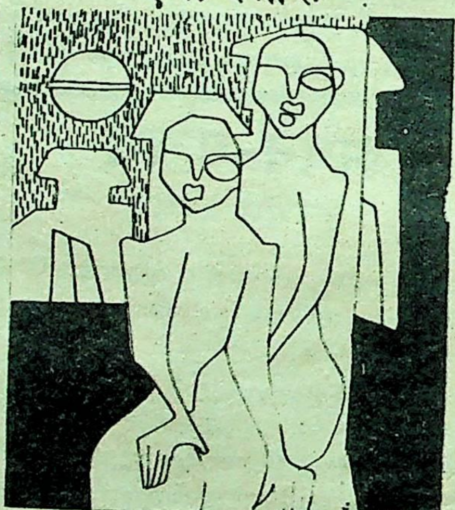

"इविच तुमसे बेहतर एक्ट्रैस है—आज भी."

"उस चुड़ैल की बात छोड़ो, डियर! और तुम्हारा भरम भी दूर कर दूं. यह वह कि मैं तुम्हें कभी तलाक नहीं दूंगी. किसी भी हालत में नहीं. और मेरे पति होकर तुम्हें मेरे साथ वैसे ही पेश आना होगा जैसे मैं तुम्हारी मालकिन हूं जो मैं असल में हूं भी."

मगर बोरिस का ध्यान अपनी बीबी की बातों की ओर न था. वह 'आधी रात में हत्या' नामक उस फिल्म के बारे में सोच रहा था जिसमें उसने इविच के साथ काम किया था. उसने चुपके से अपनी जेब टटोली. हत्या का हथियार वहां मौजूद था. अब उसे जरूरत थी, सिर्फ एक मौके की. जो दुपहर को मार्शील के सो जाने पर उसे मिल गया. उसने तब सोती हुई मार्शील की बाहों में इन्जैक्शन की एक सुई घुसा दी. अब वह एक घंटे में मर जायेगी. बोरिस ने राहत की सांस लेते हुए सोचा, कितनी त्रुटिहीन हत्या की है मैंने! शव-परीक्षा में किसी को कुछ मालूम नहीं पड़ेगा. जैसे नाटक के कोरोनर को भी कुछ मालूम नहीं पड़ा था. वह सोने चला गया.

मगर कुछ देर बाद वह अचानक जग गया. मार्शील ने, जो उसके पास खड़ी थी, कहा, "तुम्हारी जेब में इंजैक्शन की सुई देखकर मैं सब समझ गयी थी. तुम्हें शायद मालूम न होगा कि 'आधी रात में हत्या' फिल्म दुबारा बन रही है और मैं उसमें काम कर रही हूं, बतौर हीरोइन. मैंने तुम्हारी जेब से असली सुई निकाल कर वह नकली सुई रख दी, जो फिल्म में काम आ रही है. और, तुम्हारे सो जाने पर तुम्हारा असली इंजैक्शन तुम्हें ही लगा दिया. देखो, अपनी बांह पर निशान. अच्छा, अल्विदा बोरिस!" □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्यु से साक्षात्कार

हमारा विमान पैरिस से उड़ा. मुश्किल से दस मिनट हुए होंगे कि सहसा किसी चीज से टकराया और तेजी से चक्कर खाता हुआ धरती की ओर जाने लगा. विमान के जबरदस्त झटकों से यात्री अपनी-अपनी सीटों से उछल रहे थे, लुढ़क रहे थे. एक दूसरे पर गिर रहे थे. तकिये और कंबल यात्रियों के सिरों पर यों गिर रहे थे, जैसे स्वयं विमान का ढांचा टूट रहा हो, और उसके परखचे उड़ रहे हों. एक-एक चूल से चटकने की भयंकर आवाजें आ रही थीं. पुरुषों की आंखों में दहशत बैठ गयी थी. चेहरों पर हवाइयां उड़ रही थीं. स्त्रियां भयानक तरीके से चिल्ला रही थीं. मृत्यु के भय से चीखें मेरे कंठ से भी निकल रही थीं. मेरे हाथ मजबूती से सीट के बाजुओं में गड़े हुए थे. विमान के कर्मचारी यात्रियों की सहायता करने में असमर्थ थे, क्योंकि उन्हें अपने प्राणों के लाले पड़े हुए थे. प्रलय की अफरा-तफरी मची हुई थी. वह भयानक घड़ी सिर पर थी. विमान अभी गिरकर टुकड़े-टुकड़े होनेवाला था.

मुझे क्या पता था, कि मई की उन्नीस तारीख होगी और मैं पैरिस से प्रातःकाल की फ्लाइट पर केवल एक घंटे की यात्रा पर नाईस नगर जा रही होऊंगी कि यमदूत इस निर्दयता से मुझे दबोच लेगा. गंतव्य अभी पंचास मिनट की दूरी पर है और यह संभव नहीं है कि इन पचास मिनटों में कोई चमत्कार घटित हो और यह विमान प्राणघातक दुर्घटना से बच सके. यहीं कहीं खेतों में, चट्टानों में इसके मलबे से मेरी लाश निकाली जाएगी. मेरे पति कार्लो अब तक मुझे लेने के लिए एयर-पोर्ट पर पहुंच चुके होंगे. जब मलबे से लाश निकलेगी तो बस वही मुझे पहचान सकेंगे. मैं बैल्ट में कसी हुई अपनी सीट में धंसी हुई मिलूंगी. मेरा मस्तिष्क बिलकुल स्पष्ट है. मैं आतंकित तो हूं, किंतु मुझे पूर्ण विश्वास है कि कुछ मिनटों के अंदर-अंदर मृत्यु निश्चित है.

'हे ईश्वर! हे भगवान!' मेरे मुख से बरबस निकलता है. मैं प्रार्थना नहीं करती, क्योंकि मैं उन अर्थों में अब धार्मिक नहीं रही हूं, किंतु मैंने ईश्वर के सर्वशक्तिमान, सार्वभौम होने की कल्पना करके अनुभव किया, जैसे अब सुरक्षित हो गयी हूं.

इन प्रलयंकारी क्षणों में मुझे सबसे पहले अपने दो छोटे-छोटे बच्चों का खयाल आया. मेरे मरने के बाद उनका क्या बनेगा? मेरे बिना वे कैसे जियेंगे? कौन उनकी देखभाल करेगा? मैंने जिन संकटों में उनका पालन-पोषण किया है, उनकी खातिर कौन वैसे संकट मोल लेगा? मेरे पति कार्लो का क्या बनेगा? वह क्या करेंगे? कहां जायेंगे? मानो एक फिल्म-सी चल पड़ी और मेरे जीवन की झलकियां तेजी से मेरी आंखों के सामने घूम गयीं. मेरी मां, जिसने मेरी खातिर मातृत्व और त्याग का अविस्मरणीय उदाहरण स्थापित किया, मेरी बहन-आयु भर की मित्र और हमदर्द, यातनाजनक स्मृतियों, भूली-बिसरी स्मृतियों का एक तांता बंध गया, जिसे विमान के झटकों ने निर्ममता से तोड़-फोड़ दिया. मैंने खिड़की से बाहर झांका. धरती पर ऊंचे-नीचे टीले निकट, और निकट आ रहे थे. दुर्घटना निश्चित थी और मृत्यु दुर्घटना से भी पूर्ण निश्चित.

सोफिया लारां : दुख में सुमिरन

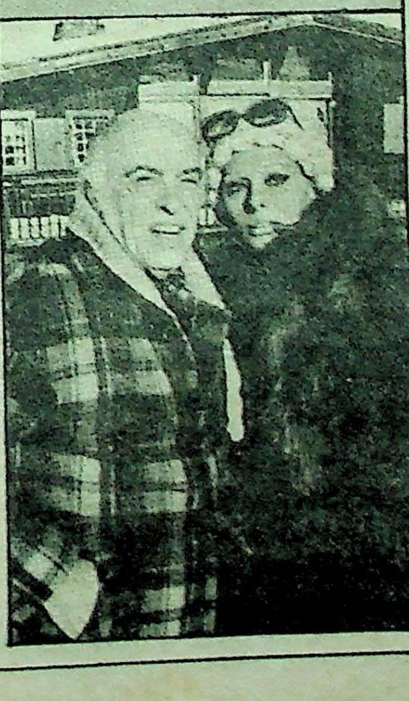

किंतु यह विचित्र बात हुई कि चमत्कार घटित हो गया और विमान दुर्घटना से बाल-बाल बच गया. अब हम सुरक्षापूर्वक एयर-पोर्ट पर उतर चुके हैं. कार्लो प्यार से मेरा हाथ थामते हैं और एयरपोर्ट के कोलाहल से साफ बचा ले जाते हैं. इस मानसिक अवस्था में बस इतना याद रहा कि किसी ने लाल फूलों का एक गुलदस्ता पेश किया. हालांकि मैं पूरी तरह से चेतन नहीं थी, फिर भी, क्योंकि फोटोग्राफरों का हुजूम था, और क्लिक-क्लिक की आवाजें थीं और फ्लैश के झपाकों से तेज प्रकाश की एक मेहराब-सी बन गयी थी, जिस से मुझे गुजरना था. इसलिए विवशतः मुझे अपने चेहरे पर मुस्कराहट आच्छादित करनी पड़ी. मैंने कार्लो को इस भयानक फ्लाइट के बारे में कुछ नहीं बताया था, किंतु उन्हें सब कुछ पता था. कार्लो भी बहुत गजब के आदमी हैं. उनकी भावनाएं और संज्ञाएं बहुत शक्तिशाली हैं. अपने इर्द-गिर्द उनके हाथ को अनुभव करते हुए यों महसूस हो रहा था, जैसे सुरक्षा के आकाश ने मुझे अपनी भुजाओं में समेट लिया हो. उनकी निर्दोष और निश्छल मुस्कराहट वैसे ही दूसरे व्यक्ति को अपने भीतर समेट लिया करती है. विशेष रूप में मुझे कभी उनकी इतनी आवश्यकता... हां, इतनी आवश्यकता न पड़ी थी, जितनी उन क्षणों में, जब मुझे दोबारा जीवन प्राप्त हो रहा था, मानो नवजीवन के द्वार पर भी स्वागत करनेवाला कार्लो ही था.

कल ही एक कृपालु मित्र ने एक पत्रिका पढ़ने को दी थी, जिसमें हम दोनों पर एक लेख प्रकाशित हुआ था. मुखपृष्ठ पर कार्लो और मेरी साझी तसवीर थी. नीचे वाक्य लिखा था, "यह कब अलग होंगे?" लेख में विस्तारपूर्वक पाठकों को बताया गया था कि हमारा तलाक होनेवाला है. पृथकता तो पहले ही हो चुकी थी. अब वकील हमारे तलाक की अन्य बातें और शर्तें आदि तय कर रहे हैं. शायद ही कोई दिन ऐसा बीतता होगा, जब हमारी शादी के टूटने की या मौत का समाचार विश्वस्त सूत्रों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशित न किया जाता हो और शोक प्रकट करने के लिए एक शोकपूर्ण निबंध न लिखा जाता हो. यह देखकर पत्रकारों को कष्ट होता है कि फिल्मी-जगत में जहां परस्पर संबंध बड़े दुर्बल, कोमल और अस्थायी होते हैं, विश्वविख्यात एक जोड़ा पच्चीस-तीस वर्ष के बाद भी सही-सलामत चला आ रहा है. जब कार्लो से मेरी पहली मुलाकात हुई तो मैं पंद्रह वर्ष की थी. जब उनसे प्रेम हुआ, तो उन्नीस वर्ष की थी. अब चवालीस वर्ष की हूं, तब भी मेरे लिए सब कुछ वही हैं. हमने बड़े कठिन दिन इकट्ठे बिताये हैं. वह दिन जब चर्च का प्रकोप हम दोनों पर टूटा था, वह दिन जब इतालवी सरकार ने बहुविवाह या बहुपत्नी के अभियोग में हम पर मुकद्दमा चलाया... किंतु यह प्रकोप और यह संकट हमारे प्रेम के लिए एक ऐसी अग्नि सिद्ध हुआ जिसने हमारे सांसारिक शरीरों को फौलाद और फौलाद को सोना बनाया.

कार्लो ने अपने हाथ की पकड़ मज़बूत करते हुए मेरे कान में कहा, "तुम कुशलतापूर्वक पहुंच गयी हो. सामने हमारी कार खड़ी है." कार्लो चाहनेवाला, रक्षा करने वाला, मित्र, स्नेहशील, भावुक, जिम्मेदार, सृजनकार, मेरे लिए पिता के, हां, पिता के स्थान पर, पिता जो मुझे नसीब न हो सका. हां, आज चवालीस वर्ष की आयु में भी वह मेरी दृष्टि में पिता के स्थान पर हैं. वह नन्हीं-सी, शर्मीली, नाजायज, बिना पिता की बच्ची, आज भी मेरे भीतर है, जिसे पिता के स्नेह की आवश्यकता पग-पग पर रहती है.

मैं इस समय होटल के शानदार कमरे में हूं. दस मिनट के बाद हम यहां से चलने वाले हैं. मेरी फिल्म 'ए स्पेशल डे' का प्रीमियर-शो होनेवाला है. विमान का भयानक अनुभव अब धीरे-धीरे समाप्त हो रहा था. मैं प्रसन्न हूं. इसलिए कि अपनी एक बेहद महत्वपूर्ण फिल्म स्वयं देख सकूंगी. यह फिल्म मेरी ख्याति को चार चांद भी लगा सकती है और उसकी अर्थी भी निकाल सकती है. मैंने मेकअप के बिना मुसौलिनी के शासनकाल में रोम की एक फूहड़, उजड्ड, विवश, संकटग्रस्त, घरेलू स्त्री की भूमिका अदा की है. देखना चाहती हूं कि यह कठिन भूमिका मैंने कैसे अदा की है, लेकिन इस समय स्थितियां बिलकुल प्रतिकूल हैं. प्रीमियर शो है और हीरोइन ने नया गाउन, चमचमाते रंगों की पोशाक पहन रखी है. अदा की गयी भूमिका और अदा करनेवाली की भूमिका में धरती-आकाश का अंतर है. यह विरोधाभास मुझे खाये जाय रहा है कि लोग सिने-पट पर मेरा एक रूप देखेंगे, और मंच पर दूसरा रूप. कैसी अजीब लगूंगी!

मार्सलो कमरे में प्रवेश करता है. सुंदर, जवान, सदा-बहार, मुस्कराता हुआ. जासूस अपनी समस्याएं दुहराते हैं. वह बेपरवाही से कंधे झटकाता है. मेरे निकट आता है. मेरी गरदन पर उचटता हुआ चुंबन लेता है और गहरी सहृदयपूर्ण मुस्कराहट उपहार में देता है. मार्सलो मेरी प्रसिद्ध फिल्मों का हीरो है. आज जिस फिल्म का प्रीमियर शो होने वाला है, वह हमारी आठवीं सांझी फिल्म है अर्थात वह हीरो और मैं हीरोइन हूं. इस हिसाब से भी देखा जाये, तो लगता है जैसे मार्सलो से मेरी मित्रता सदा कायम रहनेवाली चीज है. मार्सलो और मैं एक दूसरे का आदर करते हैं. एक दूसरे से स्नेह करते हैं और सेट पर तो वह कमाल का आदमी होता है, लेकिन जब कोई फिल्म न बन रही हो तो हम आपस में कम ही मिलते हैं. मार्सलो हर समय समस्याओं में घिरा रहता है. एक का समाधान होता है तो दूसरी पैदा हो जाती है. कोई समस्या पैदा न हो तो वह स्वयं पैदा कर लेता है. समस्याएं भी ऐसी जिनका प्रकट में कोई समाधान नजर न आये. पच्चीस वर्ष से यही देख रही हूं. उसके जीवन में कितने ही लोग आये और चले गये, किंतु समस्याएं ज्यों की त्यों कायम हैं. मानो समस्याओं से निपटने में उसे एक आनंद मिलता है. मैंने देखा है कि वह जितनी बड़ी समस्या से दो-चार होता है, उतना ही उदासपूर्ण और उल्लसित होता है. उसमें गजब की हास्य-भावना है. अपने ऊपर स्वयं ही हंसता है और दूसरों को हंसाता है.

मुझे विश्वास है किसी ने मार्सलो को निराश और चिंतातुर नहीं देखा होगा. अपनी बच्ची से बहुत प्यार करता है, जो कैथरीन के गर्भ से पैदा हुई थी. स्वयं इटली में रहता है. पत्नी पैरिस में. मिलना-जुलना समाप्त हो गया है. बच्ची मां के पास है. बच्ची के ख्याल से कभी-कभी उदासीन हो जाता है.

पैलेस थियेटर में लोगों का हुजूम और शोर अधिक था. नारों की गूंज में कान पड़ी आवाज सुनाई न देती थी. धक्कापेल हो रही थी. एक रेला दायें से आता था, दूसरा बायें से. ऐसे अवसरों पर समझ में नहीं आता कि मुझे भयभीत होना चाहिए या स्वयं पर गर्व होना चाहिए, क्योंकि लोग एक ऐसी भावना को प्रकट करते हैं जो आदमी को विशिष्ट और महान बना देती है. मैंने सोचा कि शायद यह भावना और उसकी अभिव्यक्ति मेरे लिए भावी जीवन में फिर कभी हो या न हो, इसलिए मैंने उसे तीव्रता से अनुभव करने का प्रयास किया.

जब कभी ऐसा अवसर आता है तो मुझे यों लगता है जैसे स्वप्न देख रही हूं. उस समय मैं सोफिया लारां के भीतर से निकलकर बाहर खड़ी हो जाती हूं, जैसे मैं अपने आप को टेलीविजन पर देख रही हूं. अपने आप से बाहर निकलकर स्वयं को निष्पक्षता से देखना मेरी बहुत पुरानी आदत है, जिससे अपने आप पर काबू पाने और स्वयं को संतुलित रखने में मुझे बड़ी सहायता मिली है.

सबसे सुखदायक अनुभूति यह होती है कि ये लोग मनुष्य के रूप में मुझे पसंद करते हैं और कलाकार के रूप में मुझे चाहते हैं और अपनी इस पसंद और चाहत की अभिव्यक्ति खुल्लम-खुल्ला सामूहिक रूप में करते हैं. पुलिस के डंडे खाकर भी करते हैं. पुलिस का घेरा तोड़कर सामने आते हैं. यह मानो प्रदर्शन कर रहे हैं कि उन्हें अतीत की मेरी भूमिका और मेरी पिछली फिल्में पसंद हैं.

फिल्म 'ए स्पेशल डे' का टाइटल ज्यों ही आया उन्होंने बड़े स्नेह से तालियां बजा-बजाकर आग्रह किया कि सोफिया, सामने आओ. मैं और मार्सलो उठे. मंच पर आये और उनकी प्रशंसा और बधाई को मन-प्राण से स्वीकार किया, यह मेरे जीवन का बेहद सच्चा, खरा और संतोषपूर्ण क्षण था.

'ए स्पेशल डे' बड़ी कलात्मक और कठिन फिल्म थी. उसका बनाना बेहद मुश्किल था. अब तक मैंने जितनी भी भूमिकाएं की थीं, उनमें सबसे कठिन भूमिका यही थी और यों आज का दिन मेरे जीवन का अद्भुत दिन था. आरंभ विमान की दुर्घटना से हुआ. मृत्यु के मुख तक हो आयी और अंत यों हुआ, जैसे दोबारा जीवन मिल गया हो. □

प्रस्तुति : सुरजीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलराज साहनी ने जितना नाम 'तमाशे की दुनिया' यानी फिल्मों में कमाया, उसकी सही-सही 'कीमत' उन्हें क्या चुकानी पड़ी थी—इस ईमानदार खुलासे को उन्होंने बजरिये अपनी फिल्मी आत्मकथा बयां किया है. निजी जीवन की ही तरह से वे इस आत्मकथा को लिखकर स्वयं को बहुत सारे संघर्षशील लेखकों, वाम वैचारिक समर्थकों और मंचीय कलाकारों की भीड़ का एक हिस्सा मात्र ही साबित करना चाहते हैं. अपनी कमजोरियों को उन्होंने छिपाया या दुलराया नहीं, बल्कि उन्हें कसकर दुत्कारा है; स्वीकार किया है. यह सच चाहे **"आधे बाल तो फिल्मों में आने से पहले ही सफेद हो चुके थे"**—स्तर का हो या फिर जीवन के दूसरे पहलू के रूप में 'जादू की कुरसी' नाटक के लेखन को लेकर इस स्तर पर कि: **"जिन लोगों ने यह नाटक देखा है, मुझसे बार-बार उसकी पांडुलिपि मांगते हैं. पर मैं उन्हें बता नहीं सकता कि अपनी उस गलत हरकत पर मैं कितना शर्मिंदा हूं. मेरे जैसे नगण्य व्यक्ति ने नेहरू जैसे महान व्यक्ति का मजाक उड़ाने की कोशिश की, यह सोचकर मैं शर्म से पानी-पानी हो जाता हूं. उस मनहूस नाटक की सभी कापियां मैंने आग लगाकर नष्ट कर दी थीं."**

यहां प्रश्न यह नहीं है कि नेहरू महान व्यक्ति थे या नहीं, प्रश्न एक कलाकार के आत्मस्वीकार का है, उसके विरोधाभासों का है, इन विरोधाभासों का डटकर सामना करने का है, इसके विपरीत उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता के साक्ष्य में एक उद्धरण देना उपयुक्त होगा: **"दम्मो (दमयंती, लेखक की पहली पत्नी तथा प्रसिद्ध अभिनेत्री) के शव को लाल झंडे से ढककर दाह-संस्कार किया गया था. पार्टी मेरे जीवन का अभिन्न अंग बनी हुई थी."** जबकि उन्हीं दमयंती के प्रति बलराजजी का मानना कुछ और भी था जिसे उन्होंने बेहिचक यूं स्वीकार किया है: **"अमीर घरों के लोग भी हमारे साथ दोस्ती करने के लिए बेचैन रहते थे. फिल्म-स्टार के साथ उठने-बैठने से उनकी इज्जत बढ़ती थी. जब हम उनकी घटिया पार्टियों से उकताकर पीछा छुड़ाते, तो वे इप्टा या कम्युनिस्ट पार्टी को चंदा देकर हमें ललचाते. अभिनेता और खासकर अभिनेत्री 'बूर्ज्वा' समाज के लिए एक खिलौना है—इस तथ्य का हमें बिल्कुल ज्ञान नहीं था. अभिनेत्री को दिये जानेवाले सम्मान में बहुत-सा तिरस्कार का भी अंश होता है, यह भी मुझे नहीं पता था.** एक बार जब अखबार में पढ़ा कि रेस में दौड़नेवाली घोड़ियों के नाम बेगम पाश, नर्गिस, दमयंती आदि रखे गये हैं तो मुझे बहुत गुस्सा आया."

'उस हरकत पर मैं कितना शर्मिंदा हूं'

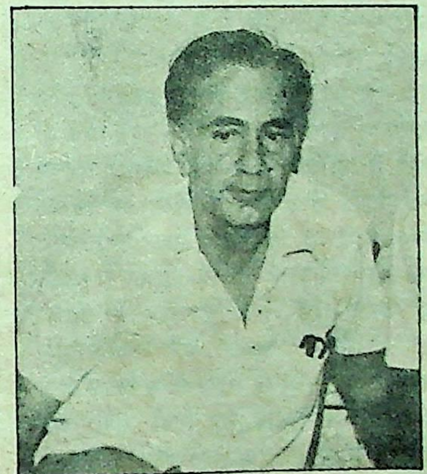

बलराजजी आगे लिखते हैं कि: **"मेरा कर्तव्य था कि उस समय अपनी पत्नी की ढाल बनता, उसके कलात्मक जीवन की कद्र करता, रक्षा करता, उसे फिजूल के झमेलों से बचाता, और पारिवारिक जीवन की जिम्मेदारियां अपने ऊपर लेता. पर मैं अपनी संकीर्णता के कारण मन ही मन में दम्मो की प्रसिद्धि और सफलता से ईर्ष्या करने लगा था. वह स्टूडियो से थकी-हारी हुई आती तो मैं उससे ऐसा सलूक करता जैसे वह कोई गलती करके आयी हो. मैं चाहता कि वह आते ही घर के काम-काज में लग जाये, जो कि मेरी नजर में उसका असली काम था. अपने बड़प्पन का दिखावा करने के लिए मैं इप्टा और कम्युनिष्ट पार्टी के अनावश्यक काम भी करने लग जाता. मैं मर्द था. जिन संस्कारों में मैं पला था, उनके अनुसार मर्द हर हालत में ऊंचा था. और जिन संस्कारों में दम्मो पली थी, उनके अनुसार पतिपरायणता उसका पहला कर्तव्य था. बेचारी बिना किसी शिकायत के वह सारा भार उठाती गयी, जिसे उठाने की उसमें सामर्थ्य नहीं थी. इन बातों को याद करके मेरे दिल में टीस उठती है. दम्मो एक अमूल्य हीरा था, जो उसके माता-पिता ने एक ऐसे व्यक्ति को सौंप दिया था जिसके दिल में उसकी कद्र थी, न ही कोई कृतज्ञता का भाव था."**

आदमी के अंतरतम में छिपे ऐसे भयानक सच को स्वीकार करने का यह दुस्साहस बलराज साहनी ने वैयक्तिक जीवन में ही नहीं, अपने 'वैचारिक जीवन' में भी किया है. अपनी एक ऐसी कमजोरी को भी उन्होंने लिखकर बताया था कि जिसे जानकर हम क्षुब्ध नहीं होते, भयभीत हो जाते हैं. फणी मजुमदार की एक फिल्म में बलराजजी ने स्क्रिप्ट की अनभिज्ञता से जूझते, उन आरंभिक दिनों की 'विवशता', जो उनके फिल्मों में प्रवेश का पहला ही प्रयास था, का वर्णन किया है, वह वास्तव में हमें हिला देता है. वे लिखते हैं, **"फिर मेरे सामने, मेज पर, भुना हुआ एक पूरा मुर्गा लाकर रखा गया. फणी-दा ने समझाया कि क्लैप बजने के बाद, कैमरे के पास खड़ा असिस्टैंट ऊंची आवाज में कहेगा, 'लेनिन!' और मैं उसकी ओर हंसकर देखता हुआ, मुर्गे को दोनों हाथों से उठा लूंगा, और मुर्गे की ओर देखकर कहूंगा, 'जानवर!'... लेनिन जैसे महान व्यक्ति के नाम के साथ जानवर शब्द जोड़ना मुझे बहुत भद्दा लगा. पर इस बारे में सवाल-जवाब कैसे कर सकता था, जबकि शॉट लिया जाने वाला था? शायद 'लेनिन' शब्द हीरो की ओर से बोला जा रहा था, जिसे कम्युनिस्ट विचारों का दिखाया गया होगा. उन दिनों कम्युनिस्ट लड़ाई को 'लोक-युद्ध' कहते थे और रूस-अमरीका-इंग्लैंड पक्ष का समर्थन**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते थे. इसके अलावा सुभाषचंद्र बोस के अनुयायी जर्मनी-जापान के पक्ष का समर्थन करते थे और कम्युनिस्टों को गद्दार कहते थे. कांग्रेस दोनों ओर कदम रखती थी. वह लड़ाई को 'लोक-युद्ध' कहती थी, पर कम्युनिस्टों को गद्दार घोषित करती थी. क्या पता, फणी-दा सुभाषवादी हों, और इप्टा के एक मेंबर से, जिसे कि आमतौर पर कम्युनिस्ट समझा जाता था, लेनिन के बारे में अपमान-भरा शब्द कहलवाकर खुश होना चाहते हों या फिल्म के शुरू में हीरो के कम्युनिस्ट विचारों का मजाक उड़ाकर, अंत में उसे ठीक साबित करना चाहते हों, क्योंकि हीरो तो आखिर हीरो होता है.... ज्यादा सोचने का समय नहीं था. एक रास्ता था. शॉट देने से साफ इंकार कर देना. दूसरा रास्ता था, इन बातों की ओर से ध्यान हटाकर काम में लग जाना. दूसरा रास्ता आसान था. मैं उसी रास्ते पर चला. पर इस बात का मुझे आज तक अफसोस है. मुझे किसी हालत में भी ऐसा शब्द बोलने के लिए मानना नहीं चाहिए था, जिससे कि एक महापुरुष का अपमान होने की संभावना हो, यह मेरी नैतिक कमजोरी थी.''

दिल तथा दिमाग का अद्भुत संतुलन ही किसी व्यक्ति को अद्वितीय बनाता है. अपनी दुर्बलताओं का वर्णन करके बलराजजी ने अपनी महानता को ही उद्घाटित किया है. वे माफी नहीं मांगते, प्रायश्चित नहीं करते, बल्कि उसे स्वीकार करते हैं जो संभवतः इन दोनों गुणों का वास्तविक मूल है. मीनाकुमारी के साथ मिलकर की गयी एक कोशिश जो अभिनय को यथार्थ के चरम तक पहुंचाने से ताल्लुक रखती है, ऐसे 'निगेटिव अटेंप्ट' का वर्णन भी बलराजजी बड़े दिलचस्प तरीके से करते हैं. उन्हीं के शब्दों में : **''खंडाला में 'पिंजरे के पंछी' की आउट डोर शूटिंग. शॉट है : मीनाकुमारी आत्महत्या करने के लिए रेल की पटरी पर चली जा रही हैं. मैं उनके पीछे ''बहू!... बहू!'' पुकारता हुआ भाग रहा हूं, और ऐन वक्त पर उन्हें गाड़ी के नीचे आने से बचा लेता हूं. हम दोनों रेलवे-लाइन से बाहर गिर पड़ते हैं, और हमारे बीच में बड़ा जज़बाती झगड़ा होने लगता है.**

''सलिल चौधरी सिर्फ हमारे भागने और रेलवे-लाइन से बाहर गिरने का शॉट लेना चाहते थे. गाड़ी के आने और हमारे झगड़े के शॉट वे बाद में बैक-प्रोजेक्शन की मदद से ले सकते थे. अचानक मुझे खयाल आया कि 'डेक्कन क्वीन' के आने का समय हो रहा है. वह खंडाला पर नहीं रुकती थी. अगर कैमरामैन जल्दी-जल्दी लाइटें फिक्स कर लें, तो सारा सीन एक ही शॉट में हो सकता है. मैंने सलिल चौधरी से बात की तो उन्होंने मीनाकुमारी से पूछा, वे झट मान गयीं. सो, जल्दी-जल्दी सारी तैयारी कर ली गयी. तब मुझे ख्याल आया कि मीनाकुमारी को तो सिर्फ एक बार सुनकर संवाद याद हो जाते हैं, लेकिन मेरा क्या बनेगा? काफी लंबे संवाद थे ये. पर उस समय सोचने का समय नहीं था. मैं संवाद अभी पूरी तरह सुन भी नहीं पाया था कि सामने से गाड़ी आ गयी—बड़ी तेज रफ्तार के साथ. ड्राइवर ने हमें लाइन पर भगाते हुए देखकर लंबी-लंबी सीटियां बजानी शुरू कर दीं. मुझे खीझ होने लगी. अगर वह इसी तरह सीटियां बजाता गया, तो हमारे संवाद कैसे रिकार्ड होंगे? मुश्किल से दस गज का फासला रह गया होगा, जब मैं मीनाकुमारी को बाहों में भरकर लाइन के बाहर गिर पड़ा. गाड़ी के पहिये हमारे पीछे खड़-खड़ करते हुए गुजर रहे थे. लाइटें ठीक हमारे चेहरों पर पड़ रही थीं. सब काम बड़ी खूबसूरती से हो गया. हमने खुशी-खुशी पेक-अप किया और होटल में पहुंचे. मेरा सारा शरीर दुख रहा था. थकावट से अंग-अंग चूर था. मैं गर्म पानी का टब भरकर उसमें लेट गया. एकाएक मुझे अपनी थकावट का कारण समझ में आया. कितना खतरनाक काम मोल लिया था हमने! अगर हममें से किसी का भी पांव लड़खड़ा जाता तो? कितनी मूर्खतापूर्ण तजवीज पेश की थी मैंने! किसी दूसरे की जान खतरे में डालने का क्या हक था मुझे? मुझे बेहद पछतावा होने लगा.

''नहाकर मैं कमरे से बाहर निकला. मीनाकुमारी अपनी कॉटेज के बाहर बरामदे की सीढ़ियों पर बांहों में सिर दिये बैठी हुई थीं. मुझे देखकर उन्होंने कहा, 'आपने यह क्या किया बलराजजी, जिंदगी से तंग आये हुए हैं क्या?'

''यही सोच-सोचकर तो मेरी जान निकली जा रही है. मैं तो बेवकूफी कर ही रहा था, पर तुमने क्यों नहीं रोका?' वे हंस दीं. वही हंसी, जो आदमी एक बार सुनकर कभी भुला नहीं सकता.' 'आप शॉट जो उस तरह लेना चाहते थे. भला मैं आपको कैसे रोकती?''

बलराज साहनी यह किताब तथा अन्य लेखन ऐसे ही अनेक विस्फोटक आत्म सत्यों के हमारा परिचय कराता है. **'दो बीघा जमीन'** की शूटिंग के वक्त जब मजदूर उन्हें 'असली गरीब' नहीं पाते तो उनकी आंखों में बलराज जी पढ़ ही लेते हैं कि उन्होंने मजदूर का भेस बनाकर उनके साथ क्रूर मजाक किया था. इसी क्रम में वे किशोरावस्था में देखी गयी सेक्सप्रधान फिल्मों के प्रभाव का भी वर्णन करते हैं और बी.बी.सी. (इंगलैंड) में रहे एक सामान्य जन जैसे स्वाभाविक 'गर्व' पर भी वे कई बार व्यंग्य करते हैं. संक्षिप्ततः यह कि बलराजजी की अनेकानेक आत्म-स्वीकृतियां ही उनके लेखन की मुख्य आत्मा है □

('मेरी फिल्मी आत्मकथा' से)

मतलब

फिल्म निर्माता स्पाइरोस स्कूरास यूनानी लहजे में अंग्रेजी बोलता था. उस के सहायक उलरिक बैल को उस की बातें सुनने में हमेशा कठिनाई होती थी और उसे अपने कानों पर विशेष जोर देना पड़ता था.

एक दिन स्कूरास ने उसे कहा कि वह ऊंचा सुनाई देनेवाला यंत्र कान में लगवाये.

जब बैल यंत्र लगवाकर उसके पास आया तो स्कूरास ने पूछा, ''क्या अब मेरी बातें सुनायी देती हैं?''

''हां, बहुत साफ सुनायी देती हैं, पर अब उनका मतलब समझ में नहीं आता.'' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं जो काम शुरू कर रहा हूं... वह दरअसल ऐसा काम है जो मुझसे पहले किसी ने नहीं किया और मेरे बाद भी कोई नहीं कर सकेगा. मैं दुनिया के सामने अपने बारे में सौ फीसदी सच खोलकर रख देना चाहता हूं. मैं खुद को तो अच्छी तरह जानता ही हूं... दूसरे आदमियों को भी खूब पहचानता हूं." यह

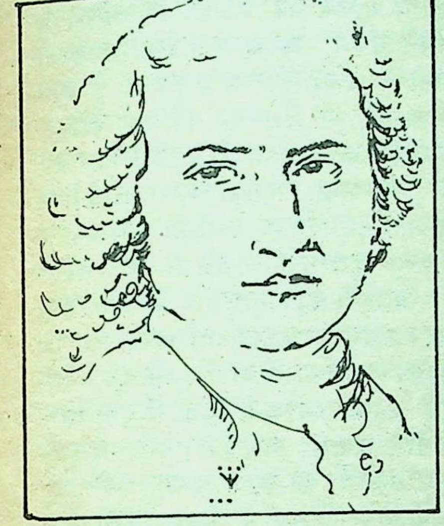

रूसो की आत्मकथा का प्रारंभिक अंश है, "जब तक आप खुद को अच्छी तरह से नहीं समझते तब तक दूसरों को भी नहीं समझ सकते. और इसकी विपरीत स्थिति भी इतनी ही सही है. खुद को समझ पाने के लिए दूसरों को समझना भी जरूरी है."

रूसो को आत्मकथा की सच्चाई पर इतना यकीन था कि 'कनफैशंस' के पहले पृष्ठ पर ही लिखा है— "क्यामत के दिन का बिगुल कभी भी बजे... मैं भगवान के सामने अपनी यह किताब पेश कर दूंगा और उससे कहूंगा— लो, इसे पढ़ लो! जान लो कि मैंने जिंदगी में क्या किया है! क्या सोचा है, और मैं किस तरह का आदमी हूं. मैंने अपनी अच्छाईयां और बुराईयां बिना किसी खौफ के लिखी हैं." घटनापूर्ण होते हुए भी यह पुस्तक रूसो की भावनाओं का स्पष्ट प्रतिबिंब है. संवेदनशीलता के स्तर पर इस आदमी का कोई सानी नहीं... अपने गिरेबान में झांककर बात करना इसकी आदत में शुमार था. आत्मरागी तो वह था ही... कई तरह के भय भी उसे सताते रहते थे. ईर्ष्या आक्रोश और संदेह उसे हरदम मथते रहते थे. अंतिम दिनों में बीमारी की हालत ने उसकी भावनाओं को और अधिक गहरा दिया था. उसने जो कुछ भी लिखा है, वह इसी आवेश के तहत लिखा है— "मुझे हमेशा विचार के पहले अनुभूति होती है. ऐसा कुछ हद तक हर एक मनुष्य के साथ होता है. पर मेरी अनुभूतियां दूसरों से

"हर दुर्व्यवहार के बाद चोरी करना और झूठ बोलना वाजिब है..."

कुछ ज्यादा ही गहरी होती हैं." रूसो की इस अप्रतिम पुस्तक का आनंद उसी के शब्दों में लिया जा सकता है—

"मेरे पैदा होने के साथ ही मां की मृत्यु हो गयी. यह मेरा पहला दुर्भाग्य था. मेरे पिता हमेशा मुझमें मेरी मां को देखते थे. वे कभी यह बात अपने दिमाग से नहीं निकाल सके कि मैं उनकी प्रिय पत्नी की मौत का कारण बना. वे मुझे जब कभी प्यार करते... वह मां की मौत की दुखभरी याद से जहर में तब्दील हो जाता. चालीस साल बाद भी जब उनकी मौत हुई... दूसरी पत्नी के होते हुए भी वे मेरी मां को अंतिम क्षणों तक याद कर रहे थे."

कुछ बड़ा होने पर रूसो को वकालत का काम सीखने के लिए एक वकील के पास भेजा गया. रूसो को इस पेशे से बेहद चिढ़ थी. उसके आत्म-सम्मान को धक्का लगना स्वाभाविक था— "यह वकील भी अजीबोगरीब इंसान था. हमेशा डांटता फटकारता रहता मुझे. कहता, 'तुम निरे गधे हो... और तुम्हारे चाचा ने यह कहकर कि तुम चतुर इंसान हो... मेरे गले

मढ़ दिया है.' इस वकील से ज्यादा दिन तक कैसे पट सकती थी? मैं नक्काशी करने वाले एक आदमी के साथ रहने लगा. बाद में पाया कि यह भी निहायत जाहिल और नृशंस प्रकृति का इंसान था.

जब तक आप खुद को अच्छी तरह से नहीं समझ सकते... तब तक दूसरों को भी नहीं समझा जा सकता...! क्या यह सही है कि खुद को समझने के लिए पहले दूसरों को समझने की कोशिश की जाए?

मुझे नक्काश से ही नहीं उसके पेशे से नफरत हो गयी. उससे जान बचाने के लिए मैं झूठ बोलने, मटरगश्ती और चोरी भी करने लगा. मैंने जल्द ही सीख लिया कि चोरी करना कोई बड़ी बात नहीं है. मैं सोचता रहता और जो चीज मुझे पसंद आ जाती... वह सुरक्षित न रहती. मेरा नक्काश मालिक जब कभी कोई बढ़िया चीज खा रहा होता, जानबूझकर मुझे वहां से चले जाने को कहता ताकि मैं अंदर ही अंदर किलसता रहूं. इसका उलटा असर यह हुआ कि मैं पेटू हो गया. मालिक की रसोई से बढ़िया चीजें उड़ाकर खाने लगा. मैं सोचता कि चोरी में मुझे जो माल मिलता है, वह एक तरह से दुर्व्यवहार का मुआवजा है. और इसलिए हर दुर्व्यवहार के बाद चोरी करना और झूठ बोलना वाजिब है. यदि मेरी शराफत के बावजूद मुझे बदमाश बताते हुए सजा दी जाती है तो फिर मुझे भी बदमाश की तरह व्यवहार करने का पूरा हक है! मालिक अपना काम करे, मैं अपना काम करूंगा."

रूसो ने माल उड़ाने का अपना काम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना तेज कर दिया कि मालिक का दिवाला ही निकल गया. आखिरकार उसने रूसो को लात मारकर बाहर कर दिया. दरअसल, यह रूसो की प्रतिशोधात्मक कार्रवाई का जवाब था. रूसो ने लिखा है– **''पैसे के प्रति मेरे मन में कोई चाह नहीं. वह सब मैं लालच के बजाय प्रतिशोधवश करता था. पैसे के प्रति अनिच्छा-भाव मेरे आलस्य की वजह से है. जिस तरह कष्ट सहकर पैसा अर्जित किया जाता है उसकी तुलना में पैसा मिलने का आनंद उसका आधा भी नहीं.''**

रूसो की जिंदगी में वारेंस की भूमिका केंद्रीय महत्व की रही है. इस औरत से अपने संबंधों का खुलासा जिस तरह से रूसो ने किया है, वह अभूतपूर्व ही नहीं बेमिसाल भी है. उसे वह मां कहकर संबोधित करता रहा और उसी से फिर प्रेम भी करने लगा... पर मां कहना उसने फिर भी न छोड़ा. रूसो के शब्दों में– **''वह बेहद दयालु, खुशमिजाज, सीधी और सहज थी. बड़ी से बड़ी मुसीबतों में भी उसके इस स्वभाव में बदलाव नहीं आया. खुद पर कलंक लगाने वालों के प्रति भी वह उदार बनी रहती. आखिरी दिनों में एक साथ आयी तमाम मुसीबतें भी उसकी खुशमिजाजी को खत्म न कर सकीं.''**

वाल्तेयर के बारे में भी रूसो इसी तरह खुलकर अपने विचार रखते हैं– **''उसके व्यक्तित्व की कुंजी इस तथ्य में थी कि उसमें किसी भी तरह सुखी रहने की सलाहियत नहीं थी. पर मैं शुरू में उसके विचारों और लेखन से काफी प्रभावित था.''**

जीवन के अंतिम दिनों में रूसो को यह यकीन हो चला था कि उसके समकालीन लेखकों-बुद्धिजीवियों ने उसके खिलाफ षड्यंत्र किया है. अंततः वह दार्शनिक ह्यूम के आमंत्रण पर इंग्लैंड जाकर रहने लगा. यहां उसकी मुलाकात डा. सैमुअल जानसन और एडमंड बर्क से हुई. रूसो के बारे में इन दोनों के विचार अच्छे नहीं थे. कुछ ही दिनों में रूसों का ह्यूम से झगड़ा हो गया. रूसो को इसमें भी ह्यूम की साजिश नजर आयी, **''इस साजिश से मैं इतना भयभीत हुआ कि भागकर एक प्रिंस के घर नाम बदलकर रहने लगा. मुझे डर था कि यहां भी ह्यूम मेरा पीछा करेगा.''** उधर ह्यूम ने भी नाराज होकर यह प्रचारित कर दिया कि रूसो एक भयंकर दुष्टात्मा है. □

जीता कौन?

(पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' कृत 'अपनी खबर' से... संदर्भ : कमलापति त्रिपाठी)

सो, तुम जीते-कमला, और बहुत खूब जीते. अभी गत कल ही की तो बात है. तुम प्रादेशिक साहित्य-सम्मेलन के अध्यक्ष बने थे. (सन 1948-49). उन्हीं दिनों लखनऊ में मैं भी मोहक मिनिस्टर श्री केशवदेव मालवीय का मेहमान था. अतः, सहज ही, उस जलसे में हाजिर था जिसके तुम जनाबे-सद्र थे. पहले दिन की कार्रवाई खत्म होने के बाद ही मंच से दर्शकों के बीच में आने पर मुझे पहचान तुमने मेरे कंधे पर परिचित हाथ रखा था और–परिचित ही सदा में–मैंने गुजारिश की थी हिं.सा. सम्मलेन के अध्यक्ष से कि आगामी कल के जलसे में मुझे भी चंद अल्फाज बोलने की इजाजत दें. लेकिन तुमने तहन ना कर दिया था, ''तुम न जाने क्या बोलो–मैं तुम्हें बोलने नहीं दूंगा.'' तब तुम मिनिस्टर नहीं–महज एम.एल.ए. थे, लेकिन तब भी तपना तुमने प्रायः मिनिस्टरों की तरह ही शुरू कर दिया था. मैं रहता था मिर्जापुर तथा 'मतवाला' वाले महादेवप्रसाद सेठ के योग्य-पुत्र के करते फिर से प्रकाशित 'मतवाला' का संपादक था. दूसरे दिन तुमने सभा में मुझे बोलने नहीं दिया था. पांचवे दिन अपने पेपर में मैंने तुम्हारे दर्शन की, भाषण की, हिन्दी-साहित्यिक-आसन पर से पालिटीशियन मुख्यमंत्री पंत के पद-पल्लव पकड़ने के आचरण की भर्त्सना की था–जरा भी अपनत्व दिखाये बगैर. इसके बाद मिर्जा पुर से बनारसा जाने पर, जान-बूझकर, तुम्हारी प्रतिक्रिया ताड़ने के लिए मैं तुम्हारे घर गया था. दरबार तुम्हारा भरा था, मैंने देखा. मुझे देखते ही चेहरे पर अहंकार तुम्हारा उभरा था. मेरी तरफ से दीठ हटा, पीठ दिखाते तीव्र-तिरस्कार से तुमने कहा था, ''कोई मुझसे पॉलिटिक्स में भिड़ावे (फिर देखे...).'' उस समय मैंने नहीं समझा था कि तुम्हारे इस पॉलिटिक्स-परिज्ञान-अहंकार के पीछे इतना कूट-प्रभुत्वपूर्ण 'पावर' था. तुम सिंचाई मंत्री बन गए जब तब भी मैंने अंहकार योग्य कोई खुसूसियत तुममें नहीं देखी थी. लेकिन जब काल ने तुम्हारे पक्ष में 'किक' मार सी.बी. गुप्त को पाताल पठाया और संपूर्णानन्द को प्रान्तीय प्रभुत्व के आकाश की तरफ उछाला तब जैसे रातोंरात तुम्हारा साइज यू.पी. के पाताल से (नक्षत्र-ग्रह-चन्द्रार्क-मण्डित) आकाश तक विराट हो गया था. तुम्हारा यह विराट रूप मुझे बहुत ही भाया. जीवन में जीवट से डटने की क्षमता, बल, 'पावर' मुझे बहुत ही सुहाते हैं. मैंने कहा, 'भाते हैं', 'सुहाते हैं. 'लुभाते' ये मुझे उतना नहीं. देखो तुम, जब से तुम 'पावर में हो मेरी-तुम्हारी भेंट तक नहीं. लखनऊ तो दूर मैं बनारस भी नहीं गया, मिर्जापुर नहीं आया. तब से जब से तुम वैसे शक्तिशाली बने जिसकी कल्पना तक मैं न कर पा सका था. वैसे ही-ठीक वैसे ही कमला-जैसे अलिफ लैला के दीन अलादीन को अपने ही हाथ के चिराग में प्रचंड शक्तिशाली 'जिन' के होने की कल्पना तक नहीं थी. विश्वास रखो, मैं तुम पर एक अक्षर भी न लिखता-यह सब तो अपना अहंकार प्रकट करने के लिए लिखा है–खासकर प्रांत के उन साहित्यिकों, कलम-बाजों, आचार्यों, तथाकथित प्रतिभाशालियों पर जो आज तुम्हारे प्रसाद से प्रसादीलाल बने हुए हैं. मेरा दावा है आज यू.पी. के जो भी तुम्हारे सामने झुककर सम्पूर्णानंदित हैं ये सभी मेरे सामने भी सरासर झुके हुए हैं. याद तो करो सन् 1921 ई. की घटना. गांधीजी काशी आये हुए थे और टीचर्स ट्रेनिंग कालेज के दुमंजिले पर हिंदूविश्वविद्यालय के एक-से-एक विवेकी आचार्य को असहयोग का प्रोग्राम सुतर्कित रीति से समझा रहे थे. और तुम थे. और मैं था. हमने तय किया कि महात्माजी जब गोष्ठी वाले कमरे के बाहर निकलें तब अचानक लपक-कर पावन चरण-स्पर्श किया जाए. और हम कर गुजरे लड़कपन. बड़े-बड़ों के आगे-आगे आते गांधीजी के गतिवान चरण एक ओर से तुमने और एक ओर से मैंने पकड़ ही लिए थे. गांधीजी चमककर शांत रह गए थे. मुझे याद है–मेरे हाथ में उनका दाहिना चरण आया था और तुम्हारे बायां. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमीर अली

इसे जल्दी से गुड़ खिला दिया जाये

सन् 1831. 66वीं बंगाल नेटिव इंफेंट्री में जगह-जगह चर्चा हो रही थी. सिपाही मातादीन पांडे छुट्टी काटकर वापस क्यों नहीं आया. इससे पहले 34वीं और 12वीं बटालियन के सिपाही मुहम्मद खां और कामेश्वर सिंह भी छुट्टी काटकर नहीं लौटे थे. मेजर जनरल हर्सी के हुक्म से ही कर्नल मेकडॉनल्ड ने अवध से तहकीकात-रपट मंगवायी थी. पता चला कि ये तीनों सिपाही अपने घर तो गये ही नहीं थे. और तभी सूबेदार सुरजन तिवारी ने साहब को बतलाया था, "सर, हो न हो, हमारे ये जवान ठगों के जाल में फंसकर मारे गये हों." उन दिनों भारत में ठगों का जाल सब जगह फैला था– विशेषकर दमोह, सुजाना, नरसिंहपुर और उत्तराखंड के क्षेत्र में. ठगों की जमात में हिंदू, मुसलमान दोनों ही थे. इटावा जिले में कहारों ने अपना जाल फैला रखा था. वहां के मेघपूनिया ठग बच्चों को उठाने के लिए माता-पिता को मार डालते थे.

वैसे ठग शब्द संस्कृत 'स्थग' से बना है और ठग सोलहवीं शताब्दी से सक्रिय थे. इसमें मुसलमानों की सात कौमें और हिंदुओं की अनेक जातियां मिली थीं. ठगों का आतंक इस प्रकार छाया था कि यात्रा करना जोखिम का काम बन गया था. ठगों से निबटने के लिए गवर्नर जनरल लार्ड बैंटिक ने ही बीड़ा उठाया और 'ऐंटी-ठगी ऑर्गनाइजेशन' तैयार किया जिसमें सिविल सर्विस और मिलिटरी के अफसर चुने गये. इनमें एफ.सी. स्मिथ, मार्टिन, जार्ज स्टॉकवैल, चार्ल्स फ्रेजर, जार्ज क्लार्क, विलकिनसन और बैक्स उल्लेखनीय हैं. पर विशेष तौर पर फौजी अफसरों ने ही ईंट का जवाब पत्थर से दिया था जिसका चीफ एजेंट मेजर विलियम स्लीमैन और उसका साथी कैप्टिन मीडोज टेलर था. मेजर जनरल कबन और फ्रेजर हैडक्वार्टर में बैठे थे. इनके अतिरिक्त कर्नल लो, स्टयूबर्ट, ऐलविस स्पायर्स, कॉलफील्ड, सदरलैंड और वेड भी थे.

इस दल ने सन 1831 से 1837 तक जी जान से ठगों से लोहा लिया और परिणाम स्वरूप 3266 ठग पकड़े गये जिनमें से 412 को फांसी दी गयी और 483 सरकारी गवाह बन गये जिन्हें आजन्म कारावास दिया गया.

ठगों के संसार में घिरंगिया बामन और अमीर अली, ठगों के रीति-रिवाज का सूक्ष्म अध्ययन किया और फिर मेजर स्लीमेन से परामर्श लिया था. ठगों को ठगने का जाल बिछाया और फिर एक दिन अमीर अली जैसे जाने-माने उस्ताद को धर लिया. समझाने-बुझाने पर ही अमीर अली 'सरकारी-गवाह' बन गया और वह स्वीकारोक्ति के लिए तैयार हो गया. कैप्टिन मीडोज टेलर ने बाकायदा अमीर अली से उनका 'ठग पुराण' एवं 'ठग विद्या' के हथकंडों को जाना और एक पुस्तक लिख डाली– 'कनफैशंस ऑफ ए ठग'. इस आत्म-स्वीकारोक्ति के अनुसार अमीर अली ने अपनी जो दास्तान सुनायी उसका संक्षिप्त-सारांश इस प्रकार है.

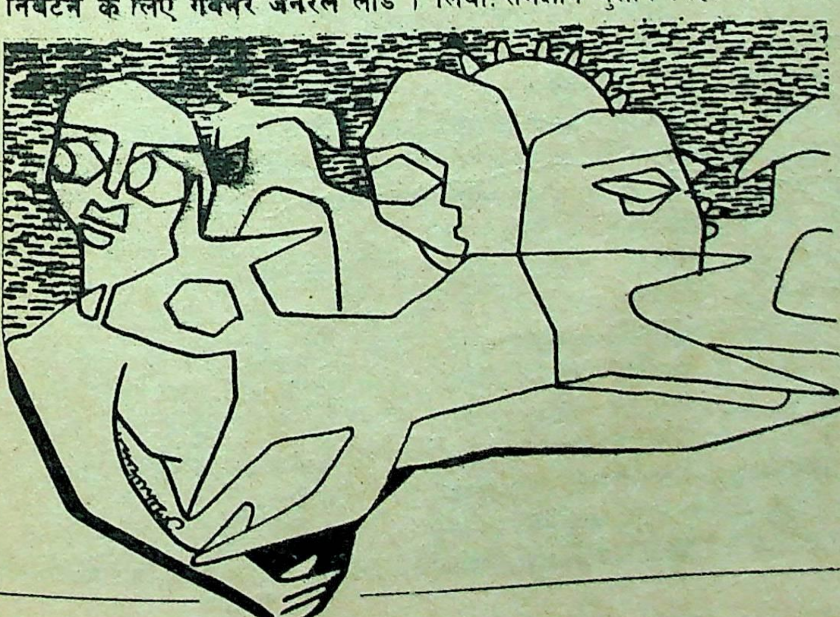

'मेरा जन्म मध्य भारत में हुआ. मेरे माता-पिता कौन थे, मैं नहीं जानता. मुझे इतना याद है कि मेरी देखरेख के लिए एक नौकरानी तैनात थी और मैं सोने-चांदी के जेवर पहनता था जिसका मतलब हुआ कि मैं किसी अमीर बाप का बेटा था. मुझे वह हादसा आज भी याद है जब मैं अपने परिवार के साथ किसी यात्रा पर जा रहा था और ठगों के जाल में हम फंस चुके थे. तब एक नदी के किनारे मेरे परिवार और नौकरों की हत्या कर दी गयी पर मैं बच गया या कहिये मुझे बचा लिया गया. मैंने तब उन लोगों को गालियां दी थीं जिससे क्रुद्ध होकर एक ठग, जिसका नाम गनेशा था, मुझे मारने को फिर से तैयार हो गय. पर दूसरे ठग इस्माइल ने मुझे बचा लिया. बाद में इसी इस्माइल ने मुझे गोद ले लिया और मैं उसकी बीवी को अम्मीं और उसे अब्बा कहने लगा. इस्माइल कपड़े की दूकान भी करता था. थोड़े अर्से बाद 'अम्मीं' का देहांत हो गया. इस्माइल ने तभी जगह बदल डाली और हम सब मुरैना आ गये जो सिंधिया के आधीन था. वहीं पर मुझे बाकायदा तालीम दी गयी. एक बुजुर्ग मुझे फारसी भी पढ़ाया करते थे. मैं देखता था कि शाम को घर पर बहुत से लोग इकट्ठे होते हैं और किसी अजीब भाषा में बातें करते हैं. मैं सोने का बहाना करके लेट जाता और उनकी भाषा समझने की कोशिश करता. एक दिन मैंने चुपचाप कमरे की अलमारी में बंद एक बक्सा खोला जिसमें तरह-तरह के सोने के जेवर, मोतियों की लड़ियां और जवाहरात थे.

...और फिर एक दिन उनमें से एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदमी बोला, "तुम्हारा अमीर के बारे में क्या इरादा है. अब यह जवान हो गया है और समझदार भी. इसे जल्दी से 'गुड़' खिला दिया जाये जिससे कि यह हमारे धंधे में शरीक हो जाये और इसे चटखारा लग जाये वर्ना तो यह खतरनाक भी साबित हो सकता है."

सबकी यही राय हुई कि मुझे शीघ्र ही 'गुड़' खिला दिया जाये.

मेरे अब्बा इस्माइल ने एक दिन मुझे अपने पास बैठाकर सब कुछ बतला दिया कि वे एक ठग हैं. उन्होंने कहा कि इस पेशे में हिंदू मुसलमान दोनों ही मां जाये भाइयों की भांति काम करते हैं. एक दूसरे को पहचानने के लिए हमने कुछ इशारे बना रखे हैं. फिर अब्बा ने बतलाया कि उत्तर भारत के सभी ठग उनके हुक्म के गुलाम हैं और एक हफ्ते के नोटिस पर हजारों ठग इकट्ठे होकर उनके आदेशों का पालन करेंगे. अब्बा ने फिर कहा कि मुझे कल शिवपुर चलना है जहां पर मुझे ठगी की दीक्षा दी जानी थी. दशहरे के दो दिन बाकी थे. वहां इकट्ठे हुए ठगों ने मेरे अब्बा की बड़ी आवभगत की. दशहरे को बहुत महत्व दिया जा रहा था लिहाजा मैंने अब्बा से पूछा कि इसका क्या कारण है. अब्बा बोले, "पहले तो यह समझ लो कि यह ठग विद्या हमने हिंदुओं से सीखी है. दशहरा ही एक ऐसा हिंदू त्यौहार है जिसे हम मानते हैं. हिंदुओं के मुताबिक सृष्टि के आरंभ में दुनिया में दो शक्तियां थीं– एक निर्माण करनेवाली और दूसरी विनाश करने वाली. जब जनसंख्या ज्यादा बढ़ने लगी तो विनाश करनेवाली शक्ति पिछड़ गयी. तभी भवानी या काली मां ने एक पुतला बनाया और फिर उसमें जान डाल दी. जान डालते ही उसने बहुत से भक्त इकट्ठे कर लिये जिन्हें 'ठग' का नाम दिया. देवी ने उन्हें ठग-विद्या सिखायी और फिर प्रदर्शन के हेतु उस पुतले की हत्या अपने हाथ से कर दी. उसी हत्या के ढंग को हमने अपना लिया है जो हम आज भी काम में लाते हैं. हत्या के बाद मरनेवाले का माल-मता हम छीन लेते हैं और उसे जमीन में गाड़ देते हैं."

दशहरे के दिन ही मुझे ठग-विद्या की दीक्षा दी गयी, नहलाकर नये कपड़े पहनाये गये और फिर ठग भाइयों के साथ एक खुले मैदान में लाकर अब्बा आकाश की ओर देखकर जोर से बोले, "ओ भवानी! ओ जगत जननी! इस बच्चे को अपनी सेवा में ले!" तभी पेड़ की शाख पर बैठा एक घुग्घू बोल उठा जो शुभ सगुन माना गया और जिसे सुनकर सब ठग बोल उठे, "जय भवानी! जय भवानी!" फिर मेरी हथेली पर एक रूमाल रखा गया और धंधे का प्रतीक कुदाल रख दी गयी. फिर मैंने बांया हाथ उठाकर शपथ ली और उसके बाद मुझे गुड़ की डली खाने को दी गयी.

सबने अब्बा को बधाई दी. फिर अब्बा ने हिदायत दी, "याद रखना, धोबी, भाट, तेली, लुहार, बढ़ई, सिख, नानकशाही, मदारी, फकीर, नर्तक, संगीतज्ञ, भंगी, और अपंग या कोढ़ी को कभी मत मारना."

फिर अभियान शुरू होना था. उस समय हमारे गिरोह में कुल एक सौ पैंतीस ठग थे. इनमें से 60 हमारी टुकड़ी में, 45 हुसैन की टुकड़ी में और 30 गयासखां की टुकड़ी में थे. कूच करने से पहले सगुन विचारा गया. क्योंकि मेरे अब्बा समूचे गिरोह के नेता थे, लिहाजा उन्होंने एक पानी भरे लोटे की रस्सी अपने दांत से दबायी थी. लोटे का गिरना भयंकर अपशकुन हो सकता था लिहाजा वे सतर्क थे. कुछ देर चलने के बाद उन्होंने रुककर अपना बायां हाथ छाती पर रखा और पूरे सम्मान के साथ आकाश की ओर आंखें उठाकर कहा, "जगतजननी, हमारी व्यवस्था की संरक्षिका, मां भवानी, अगर इस अभियान से प्रसन्न है तो कुछ शगुन दिखा." और तभी बायीं ओर से एक गीदड़ बोल उठा जो कि एक बढ़िया शगुन था.

अमीर अली ठग ने हुक्के का कश खींचकर फिर कैप्टिन मीडोज टेलर को बतलाया कि ठगों के नियम एवं अनुशासन किस प्रकार का था. ठगों की भाषा 'रामसी' कहलाती थी जिसे वे ही आपस में समझते थे. उनके कई इशारे भी थे जिन्हें 'झिरनी' कहते थे. दल का अनुशासन कंपनी बहादुर की फौज के बराबर ही था. अलग-अलग काम के लिए अलग ठग बंटे थे. सबसे पहले 'सोठा' लोग यात्री दल के पास बहुरूप भरकर जाते, उनका विश्वास जीतते और उन्हें फंसाकर लाते. मुख्य दल भांति-भांति से यानी दल का दिल मोह लेता और पड़ावों पर आमोद-प्रमोद का प्रबंध करते. राग-रंग, शराब के दौर, दावत, मुजरे– सब ही हथकंडे-प्रयोग में लाते. जिस पड़ाव पर उन्हें ठिकाने लगाने का निर्णय किया जाता, उस दिन 'लुघा' (कबरखोदे) पहले से ही जितने यात्री मारकर दबाने होते उनकी ही कब्र खोदकर तैयार रखते. काम खत्म होते ही वह सरदार के पास आते और सरदार उनसे 'झिरनी' (इशारे) में पूछता 'बिल मांजेह' यानी बिल (कब्र) तैयार हो गयीं कि नहीं. तसल्ली बख्श जवाब पाने पर फिर जश्न मनाया जाता. ज्यादातर आटे में धतूरे का चूर्ण मिला दिया जाता. जब महफिल रंग पर आ जाती और यात्री सुध-बुध भूलकर नाच-गाने में मग्न हो जाते तभी सरदार के इशारे पर हरेक यात्री के ऐन पीछे एक 'भटोट' (गला घोंट कर मारनेवाला) बैठ जाता जो अपने रूमाल के छोर पर चांदी का रुपया बांधे उससे खेलता रहता. और फिर ठीक माहौल देखकर सरदार चिल्लाता 'तंबाकू लाओ' यात्री समझते कि हुक्कों के लिये तंबाकू मंगायी जा रही है और उसी समय हरेक 'भटोट' अपना रूमाल सामने बैठे यात्री के गले में इस खूबी से डालता कि चांदी का रुपया उसके कंठ पर आ जाता. और फिर फुर्ती से वह रूमाल को अपने हाथ से ऐंठ देता कि आनन-फानन ही में उस यात्री के प्राण-पखेरू उड़ जाते. सब यात्री एक झटके में खत्म कर दिये जाते. फिर ठग उनके जेवर और माल-मता इकट्ठा करते. तब तक 'लुघा' लोग (कबखोदे) लाशों को घसीटकर कब्रों में डाल देते और जल्दी से पाट देते. दबाने से पहले वे हरेक लाश के पेट में बड़े-बड़े सूराख कर देते जिससे कि लाश फूले नहीं. अक्सर कब्र एक बड़ा-सा गड्ढा होती थी जिसमें आठ-आठ लाशें एक साथ दबा दी जातीं. यह गड्ढा इतना गहरा होता जिसमें वे गीदड़ लाश खोद नहीं पाते. जहां से लाश घसीटी जाती, वहां पेड़ों की डाल जमीन पर खींच देते जिससे खींचने के निशान मिट जाते. कब्र खोदने की कुदाल को 'खुस्सी' कहते थे और इस कुदाल की बाकायदा पूजा की जाती थी. मुसलमान हों या हिंदू, हरेक के माथे पर सिंदूर का टीका लगाया जाता जो भवानी का प्रतीक माना जाता.

अमीर अली ने बाद में कैप्टिन मीडोज टेलर और उसके दल को ले जाकर कई जगहें बतायीं जहां लाशें दबायी गयी थीं. खोदने पर किसी गड्ढे से आठ-आठ और किसी से दस-दस कंकाल निकाले गये.

प्रस्तुति : बाला दुबे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अब मैं एक आजाद सिपाही हूं. मेरे पास करने को कुछ भी नहीं है. सेवानिवृत्त आदमी अपनी मौत का इंतजार भर करता रहता है. बुढ़ापे में अगर आदमी के पास करने को काम न हो तो जिंदगी काटनी भी मुश्किल हो जाती है... खासतौर पर मेरे जैसे आदमी के लिए जो हरदम हलचलों के बीच रहा हो. बावजूद इसके, मुझे कोई शिकायत नहीं है क्योंकि कभी न कभी ऐसा समय तो आता ही है कि आदमी का शरीर जवाब देने लग जाये.... मैं स्तालिन का नजदीकी आदमी था. मैं उसकी विश्वासघाती और मुजरिमाना नीतियों का गवाह रहा था."

अक्तूबर 1964 में खुश्चेव को जबरदस्ती अवकाश देने के बाद मास्को से 20 किलोमीटर दूर एक घर में नजरबंद कर दिया गया था. हालांकि उन्हें लोगों से मिलने की आजादी थी पर उन पर पुलिस बराबर नजर रखती थी. सन् 1967 से सन् 1971 तक वे एक टेपरिकार्डर में अपने संस्मरण रिकार्ड करते रहे. जाहिर है, कि इस टेप में बहुतेरी बातें ऐसी रही होंगी जो क्रेमलिन के नेताओं को नापसंद होतीं. यही वजह थी कि उनके संस्मरणों का कुछ भाग प्रकाशित होने से रोका भी गया. स्टालिन के बारे में खुश्चेव कहते हैं– **"स्तालिन बेहद पढ़ा-लिखा था और वह लेखकों के साथ भी अच्छा बर्ताव करता था, बशर्ते वे उसकी तारीफ करते रहें..."** पर 'डा. जिवागो' जैसे उपन्यास के बारे में उसकी राय अच्छी नहीं थी. इस रूप में वे पास्तरनाक के मुकाबले इलिया एहरनबर्ग को ज्यादा तरजीह देते थे.

क्या माओ का यह कहना पागलपन की मिशाल है कि तीसरे विश्वयुद्ध में पूंजीवादी देशों का नाश हो जायेगा... और समाजवादी देश बचे रह जायेंगे...?

"मैं स्तालिन की मुजरिमाना नीतियों का गवाह रहा"

लगातार तीन चीन-यात्राओं के बावजूद, खुश्चेव के समय में रूस-चीन संबंध बिगड़ते ही चले गये. और अंततः खुश्चेव माओ से नफरत ही करने लगे. माओ और स्तालिन की तुलना करते हुए उनकी टिप्पणी गौरतलब है– **"स्तालिन अपने ज्यादा नजदीकी कामरेडों की बहुत निर्ममता से हत्या करवाता था... तो माओ अपने कामरेडों की हत्या करने के बजाय**

खुश्चेव

स्तालिन

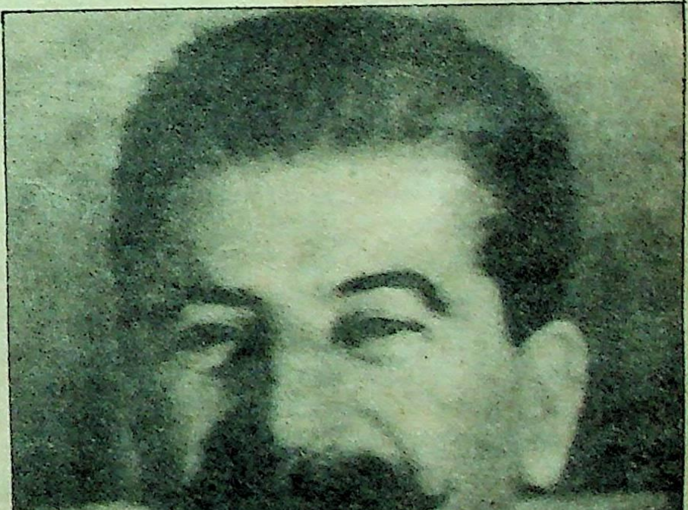

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोध-कथा

सब से बड़ा नाम

इदरीस शाह

अनुवाद : सुदीप

भारत के एक फकीर ने एक बार एक सूफी से पूछा कि क्या वह उसे अल्लाह का सौवां नाम बतायेगा, जिसे सबसे बड़ा नाम कहा गया है? जिन्हें इस नाम की खबर है, वे चमत्कार कर सकते हैं और जीवन तथा इतिहास का रास्ता बदल सकते हैं. जब तक कोई व्यक्ति इसके योग्य नहीं होता, तब तक वह इसे जान भी नहीं सकता.

सूफी ने कहा, ''परंपरा के अनुसार मुझे पहले तुम्हारी परीक्षा लेनी होगी ताकि तुम्हारी योग्यता का पता चल सके. तुम इस शहर के मुख्य द्वार पर जाओगे और रात होने तक वहां रहोगे. फिर लौट कर तुम मुझे बताओगे कि तुमने वहां क्या देखा.''

फकीर को जैसा कहा गया था, उसने वैसा ही किया. रात होने के बाद वह लौट आया और उसने इन शब्दों में अपनी रपट दी, ''जैसा कि मुझे निर्देश दिया गया था, मैं शहर के मुख्यद्वार के पास जा कर रुका. मैं चौकन्ना रहा. दिन में घटी जिस घटना ने मुझे सबसे ज्यादा प्रभावित किया, उसका संबंध एक बूढ़े आदमी से है. अपनी पीठ पर लकड़ियों का बड़ा-सा गट्ठर लादे वह हमारे शहर में घुसना चाहता था.

''द्वारपाल ने उससे कहा कि वह पहले अपने माल की कीमत के अनुरूप कर अदा करे. बूढ़े ने कहा कि उसके पास एक दमड़ी भी नहीं है, पहले उसे लकड़ियां बेच लेने दिया जाये फिर वह कर अदा कर देगा. यह देखकर कि बूढ़ा मित्रहीन और असहाय है, द्वारपाल ने उसकी सारी लकड़ियां रखवा लीं और उन्हें अपने घर भिजवा दिया. फिर बूढ़े आदमी को मार-मार कर भगा दिया गया.''

सूफी ने कहा, ''जब तुमने यह सब देखा, तब तुम्हें कैसा लगा?''

फकीर ने उत्तर दिया, ''सबसे बड़ा नाम जानने की मेरी इच्छा और भी बलवती हो उठी. मुझे मालूम होता, तो उस बदनसीब और निर्दोष लकड़हारे की हालत ऐसी न होती.''

सूफी ने कहा, ''ऐ खुदा के बंदे! मैंने खुद अपने गुरु से सौवां नाम तब सीखा था, जब उन्होंने मेरे दृढ़ निश्चय को जान लिया और उन्हें यकीन हो गया कि मैं भावुक नहीं, आदमी का सेवक हूं. उन्होंने मुझे ऐसे अनुभव कराये, जिन्होंने मुझे मेरे अपने विचारों और व्यवहार को समझने का अवसर दिया. मनुष्य मात्र की सेवा ही सौवां नाम है. मेरे गुरु और कोई नहीं, वही लकड़हारा थे, जिन्हें तुम शहर के मुख्यद्वार पर मिले थे.'' □

उन्हें औपचारिक रूप से महत्वपूर्ण होते हुए भी ऐसे पदों पर नियुक्ति कर देता था जो करीब-करीब अर्थहीन होते थे.''

विश्व के तमाम बड़े नेताओं पर टिप्पणी करते हुए भी दरअसल ख्रुश्चेव आत्मस्वीकार के गलियारे में भटकते प्रतीत होते हैं. पं. नेहरू के बारे में वे कहते हैं– ''वे एक शांति प्रिय और शरीफ इंसान थे... और रूस को यह यकीन था कि वे चीन के साथ अपने संबंधों को सुधारने के लिए हर वाजिब तरीके का इस्तेमाल करेंगे. जब चीन ने भारत पर हमला किया और रूस की ओर से एक तटस्थ बयान जारी कर दिया गया तो माओ ने (ख्रुश्चेव से) नाराजी प्रकट करते हुए कहा, 'आप इस तरह का बयान कैसे जारी कर सकते हैं... क्या आप नहीं जानते कि वह अमरीकी एजेंट है.' ...तब मेरा जवाब था– 'नेहरू भारत के एक महान प्रगतिशील नेता हैं... और अगर कम्यूनिस्ट पार्टी को छोड़ दिया जाये तो उनसे ज्यादा स्वीकार्य नेता और कोई नहीं होगा. यही नहीं, मैं चेतावनी देता हूं कि नेहरू यदि खत्म हो जाते तो उनकी जगह कोई प्रतिक्रियावादी ले लेगा... जो न तो भारत के हित में होगा और न ही चीन या रूस के. मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि आप भारत के साथ अपने रिश्ते युद्ध के बजाय कूटनीति के जरिये सुलझाइये!'

द गाल के संदर्भ में भी इसी तरह एकदम साफ वक्तव्य देखने को मिलता है– ''द गाल कम्यूनिस्ट पार्टी को पूरी तरह ध्वस्त करने के लिए कृतसंकल्प थे... किंतु मैं उनसे राजनीतिक बातचीत करने से बच नहीं सकता था... हालांकि मैं जानता था कि उससे कोई लाभ नहीं होगा. द गाल की कैथोलिक पत्नी भी घोर कम्यूनिस्ट विरोधी थीं.''

ख्रुश्चेव जहां अमरीकी राष्ट्रपति आइजनहावर को बुद्धिमान मानते थे वहीं निक्सन को बेहद अविश्वसनीय और विक्षिप्त किस्म का इंसान.

यह यह अजीब स्थिति है कि ख्रुश्चेव विश्वयुद्ध के लिए पूरी तरह से सहमत थे– ''विश्व के सभी नेताओं को हर हालत में तीसरे विश्वयुद्ध को होने देना चाहिए. माओ का यह कहना पागलपन ही है कि तीसरे विश्वयुद्ध में पूंजीवादी देशों का नाश हो जायेगा और समाजवादी देश अपने क्षेत्रफल और जनसंख्या के कारण बचे रह जायेंगे.''

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि ख्रुश्चेव अपने उदार व्यक्तित्व के बावजूद समाजवादी सिद्धांतों को दुनिया के सभी देशों पर लागू करने के मामले में समझौता करने को तैयार नहीं थे. यानी वे गोर्बाचोफ की तुलना में रूढ़िवादी कहे जायेंगे... □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिंदगी भर मैं जिनसे प्रभावित रहा

वह पहली घटना थी, जिससे मैं बेहद प्रभावित था और जिसे मैं याद करने लायक पहली घटना मानता हूं, मेरे दादा (जो वायसराय थे) द्वारा लार्ड गोह की प्रतिमा का अनावरण. वह घटना 1878 की है. लोगों की काफी भीड़ थी. सजी-संवरी वर्दियों में सैकड़ों सैनिक थे. अपने दादा की रौबीली आवाज में कहा गया वाक्य भी मुझे याद है. उन्होंने कहा था, ''और बिजली जैसी तेजी से उसने दुश्मनों को ध्वस्त कर दिया.''

इसी घर 'द लिटिल लाज' में ही पढ़ाई-लिखाई से भी मेरा पहला साबका हुआ. एक दिन घोषणा की गयी कि एक महिला मुझे पढ़ाने आया करेंगी. उनके आने का एक दिन भी निश्चित था. पढ़ाई की तैयारियों के सिलसिले में मेरी आया श्रीमती एवरेस्ट ने काफी मशक्कत की. वह एक किताब 'रीडिंग विदाऊट टीयर्स' (बिना आंसू के पढ़ाई) भी लायी.

पर मेरे मामले में शर्तिया यह पुस्तक अपना नाम सार्थक न कर सकी. श्रीमती एवरेस्ट और मैंने कई-कई दिनों तक जबरदस्त मेहनत की पर सब व्यर्थ रहा. अंततः शिक्षिका ने आना बंद कर दिया. ऐसे में एक बच्चा अपने दिमाग के हिसाब से जो कर सकता है, वही मैंने किया. अर्थात भागकर मैं झाड़ियों में छुप गया... पर कब तक छुपा रहता? अंततः पकड़ा गया और उस 'जालिम' के सामने पेश कर दिया गया. उन्होंने भी मुझे पढ़ाने में काफी मेहनत की. न सिर्फ अक्षर बताये बल्कि शब्द भी सिखाये.

अभी मैं बमुश्किल 12 वर्ष का ही हुआ था कि मुझे 'इम्तहानों' की जालिम दुनिया से जूझना पड़ा और यह सिलसिला अगले सात वर्षों तक चलता रहा. ये मेरे लिए हमेशा मुसीबत भरे दिन रहे.

क्योंकि परीक्षकों को जो प्रश्न या विषय प्रिय थे मेरी रुचियां बिलकुल उसके विपरीत थीं. मैं चाहता था कि मेरा इम्तहान इतिहास, कविता और निबंध लेखन में हो, पर वे लैटिन और हिसाब पसंद करते थे. यही नहीं इन विषयों में प्रश्न भी वे वही पूछते थे, जिनका संतोषजनक उत्तर देने में मैं असफल रहता. मैं चाहता था कि मुझसे वह चीज पूछी जाये जो मैं जानता हूं पर वे वही पूछते थे जो मैं नहीं जानता था. नतीजा यह रहा कि इम्तहानों में मैं कभी अच्छा प्रदर्शन नहीं कर सका.

'हैरो' में दाखिले के लिए हुए इम्तहानों में भी यही हुआ. पर हेडमास्टर श्री वेलडन की कृपा से मुझे वहां दाखिला मिल गया. घटिया छात्र होने का मुझे एक फायदा यह मिला कि मुझे अंग्रेजी पढ़ायी गयी. अन्य अच्छे छात्र जब लैटिन, ग्रीक और ऐसी ही अन्य चीजें पढ़ रहे थे, हमें सिर्फ अंग्रेजी पढ़ायी जा रही थी.

श्री सोमरवेल को हम जैसे मूर्ख छात्रों को सिर्फ अंग्रेजी पढ़ाने का जिम्मा सौंपा गया. उन्हें मैं हमेशा आदर से याद करूंगा... क्योंकि वह जानते थे पढ़ाया कैसे जाए. मैंने उनके शिक्षण में अच्छी तरह अंग्रेजी सीखी.

अभी मुझे स्कूल में दाखिल हुए एक महीने से अधिक नहीं हुआ था कि एक दिन मैंने तौलिये में जा लिपटे एकदम किनारे खड़े एक लड़के को देखा. मैं चुपचाप उसके पीछे जा पहुंचा और उसे पानी में धकेल दिया. हां, उसका तौलिया मैंने भलमनसहती में पकड़ लिया कि गीला न हो जाये.

क्षण भर बाद ही मैंने गुस्से से तमतमाये एक ताकतवर लड़के को तैरकर अपनी ओर आते देखा. मैं सर पर पैर रखकर भागा, पर अब यह सब करना बेकार था. थोड़ी ही देर बाद उसने मुझे पकड़कर सबसे गहरे हिस्से में फेंक दिया.

चर्चिल : जिंदगी भर सीखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जब मैं बाहर निकला तो दूसरे बच्चों ने बताया कि वह छठी क्लास का छात्र एमरी है. वह जिमनेजियम का चैंपियन है और फुटबाल का अच्छा खिलाड़ी भी. उससे ऐसा मजाक करने की हिम्मत कोई नहीं करता. अब मैं उन्हें कैसे बताता कि तौलिये में लिपटे बच्चे की क्लास का अंदाजा लगाना कितना मुश्किल है!

बहरहाल, मैं उसके पास पहुंचा और यह कहा कि आप इतने छोटे कद के हैं कि अंतर करना मुश्किल है कि आप चौथी कक्षा के छात्र हैं या छठी के. मैंने माफी भी मांगी पर वह 'इतने छोटे हैं' सुनकर शायद और भी खीझ गया. उसकी यह नाराजगी तब दूर हुई जब मैंने उससे कहा कि मेरे पापा भी छोटे कद के हैं.

बाद में हम अच्छे दोस्त बने और मंत्रिमंडल में भी वह मेरा साथी रहा.

1896 की सर्दियों में, जब मैंने 22 वर्ष पूरे कर लिये तो कुछ सीखने की इच्छा मुझमें जागृत हुई. इतिहास मेरा प्रिय विषय था. इसी में कुछ जानने की लालसा हुई. मैंने अपनी मां को इतिहास, दर्शन और अर्थशास्त्र आदि पर किताबें भेजने को लिखा. उन्होंने तुरत-फुरत कई किताबें भेज दीं. इतिहास में मैंने गिब्बन की किताब से पढ़ने की शुरुआत की. क्योंकि किसी ने मुझसे कहा था कि मेरे पिताजी भी गिब्बन के प्रशंसक थे और उन्होंने उसे पूरा पढ़ा हुआ था.

मैंने डीन मिलसन द्वारा आठ खंडों में प्रस्तुत गिब्बन की पुस्तक 'डिकलाइन एंड फौल ऑफ द रोमन एंपायर' पढ़ने की शुरुआत की. जल्द ही मैं उसकी शैली और कहानी से मोहित हो गया. हर दोपहर को, खाने के बाद और शाम को बाहर निकलने से पहले मैं किताबें पढ़ता. 'डिकलाइन एंड फॉल' से मैं इतना प्रभावित हुआ कि मैंने तुरंत ही गिब्बन की आत्मकथा भी पढ़ डाली.

गिब्बन के बाद मैंने मैसले का साहित्य पढ़ा. नवंबर से मई तक हर रोज दोपहर को मैं चार-पांच घंटे पढ़ता. प्लैटो की 'रिपब्लिक' पढ़ी. अरस्तू, माल्थस, डार्विन– सभी का साहित्य पढ़ डाला.

इन सबका मुझ पर गहरा असर पड़ा और इन्होंने बाद में मेरी जिंदगी के अहम क्षणों में मुझे काफी मदद भी पहुंचायी. □

प्रस्तुति : निशा श्रीवास्तव

लघुकथा

घंटी की आवाज

निरंजन

हम घर से लौट रहे थे. बरौनी से उतरकर, रिक्शे से गढ़हरा आये. पहुंचने पर रिक्शेवाले को पचहत्तर पैसे किराये के दिये. पैसे गिनकर उसने कहा, "बाबू जी! पचीस पैसे और दीजिये!"

"पैसे गिन लो! पूरा किराया दे दिया है!"

"नहीं बाबू जी!" उसने कहा, "आपने पचहत्तर पैसे ही तो दिये हैं!"

"हां, तो तुम्हें कितना चाहिए?"

"एक रुपया."

"एक रुपया?" मैं झुंझला उठा, "बरौनी से गढ़हरा का किराया तो पचहत्तर पैसे है."

"नहीं, बाबू जी," उसने अपनी आवाज को तेज करके कहा, "बाबू जी! आपलोग पढ़े-लिखे हैं. यह तो जानते ही होंगे कि बाजार में किसी चीज की कीमत एक जैसी नहीं रहती है. सभी चीजों की कीमत बढ़ती ही जाती है. इसलिये किराया भी हम लोगों को मजबूरन बढ़ाना पड़ा है."

मैंने बिगड़कर कहा, "रिक्शे पर बैठने से पहले ही तुमको कह देना चाहिए था कि एक रुपये में चलूंगा. कीमत बढ़ रही है तो सरकार का घेराव करो. नेता बन जाओ."

"नेतागिरी तो आप पढ़े-लिखे लोगों के लिये है. हम गरीब लोग हैं. मेहनत-मजदूरी करते हैं और रिक्शा चलाते हैं. महंगी के हिसाब से मैं ठीक ही तो मांग रहा हूं!" वह विनम्र, पर दृढ़ता के साथ बोला, "मेहनत की है, बाबू जी! रुपया पूरा कर दीजिये!"

वह मेरे सामने रास्ता रोककर जैसे खड़ा हो गया था. मैं तेज आवाज में बोला, "तुम रिक्शा तो बेकार चलाते हो. डकैती करो..."

"नहीं बाबू जी!" उसने दृढ़ता के साथ कहा, "डकैती क्यों करूंगा? मेहनत करता हूं और मेहनत का पैसा खाता हूं."

"मैंने ठीक किराया दिया है." यह कहकर मैं आगे डेरे की ओर बढ़ा और जाकर दरवाजे का किवाड़ बन्द कर दिया.

दरवाजे पर दस्तक की आवाज सुनकर पत्नी बोली, "कौन है?"

दरवाजे पर रिक्शेवाला ही था.

पत्नी ने पूछा, "क्या बात है?"

"मुझे पचीस पैसे और चाहिए."

"क्यों पचीस पैसे के लिये मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ गये हो?" मैंने फिर बिगड़कर कहा.

वह फिर विनम्रता पूर्वक बोला, "ऐसी बातें क्यों बोलते हैं? बाबू जी! मैं मेहनत के पैसे ही तो मांग रहा हूं. हम मेहनत करके जीना चाहते हैं. आप से कोई भीख नहीं मांग रहा हूं."

पत्नी ने बीच-बचाव करते हुए कहा, "पचीस पैसे ही तो अधिक मांग रहा है, न? दे दीजिये..." उसने अपने बटुए से पचीस पैसे का एक सिक्का निकाल कर रिक्शेवाले को दे दिया.

हम मेहनत करके जीना चाहते हैं साहब." कहता हुआ रिक्शेवाला तो रिक्शे पर चढ़कर घंटी टनटनाते हुए चला गया. लेकिन, जब तब मेरे कानों में उसके रिक्शे की घंटी की टनटन की आवाजें गूंजने लगती हैं– हम मेहनत करके जीना चाहते हैं... हम मेहनत करके जीना चाहते हैं... □

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरफ्त

बाला दुबे

वह एक छोटा-सा ही कब्रिस्तान था. कोई चार मील होगा लंदन से. पीटर को सब कुछ नजर आ रहा था. जिस पेड़ पर वह बैठा था, वह खूब घना था. कोई दस मिनट बाद ही पादरी ने क्रिया समाप्त की और लोग लाश के बक्से को कब्र में उतारने लगे. लगभग सभी ने अपने हाथ से मिट्टी डाली और कुछ सिसकते हुए और नजदीकी रिश्तेदार आंसू पोंछते हुए चल दिये.

झुटपुटा होने लगा था. आकाश की ओर मानो रंग-बिरंगी कब्र खुद गयी हो, उसी में लाल-पीला सूरज उतर रहा था. थोड़ी देर बेसब्री से और इंतजार करके ही पीटर पेड़ से उतरा. पास की झाड़ी से उसने छुपाया हुआ फावड़ा उठाया और ताजा पटी कब्र को जल्दी-जल्दी खोदने लगा. मुश्किल से उसे पांच मिनट लगे होंगे कि उसका फावड़ा खट्ट से लाश के बक्से में लगा. और फिर पीटर ने इधर-उधर देखा. लाश का बक्शा कीलों से जड़ा हुआ था. उसका भी इंतजाम पीटर के पास था. उसने अपने हथोड़े के दूसरे सिरे से कीलें उठा दीं और आसानी से ढक्कन खोल डाला. बक्से में लिटशायर गांव का दुकानदार डेविड रूपर्ट निर्जीव पड़ा था. उसके दायें हाथ की उंगली में पुखराज की अंगूठी अब भी मौजूद थी. पीटर ने अंगूठी उतारकर अपनी जेब में डाली और कांख-कूखकर लाश बाहर निकाल ली. फिर उसने जल्दी-जल्दी खाली बक्से की कीलों को फिर से जड़ दिया और फिर कब्र के इधर-उधर बिखरी मिट्टी को कब्र में बिछाकर चौरस कर दिया.

कोई तीस गज दूर उसकी काले रंग की बंद बग्घी खड़ी थी. पास ही पेड़ से घोड़ा बंधा खड़ा था. उसने जल्दी से बग्घी जोती और लाश को खींचकर उसमें डाल दिया. फिर उसने चाबुक फटकारकर जोर से कहा था, ''वोऽहा. रन मैक्सी, रन.''

अपना नाम सुनकर घोड़ा हवा से बातें करने लगा. बिखरते अंधेरे में काले लिबास में पीटर और उसकी काली बग्घी ऐसी लगती मानो शैतान हवाखोरी को निकला हो.

अठारहवीं शताब्दी का लंदन. गलियों और सड़कों पर लैंप की रोशनी हल्की-हल्की हल्दी, छाये हुए अंधेरे पर फैला रही थी. पास की फैक्टरी और मकान की चिमनियों का धुआं काली रात को सुरमई चादर-सी उढ़ा देता जिससे आठ बजे तक तो शरीफ आदमी घर से निकलना बंद कर देते थे. पीटर की गाड़ी पत्थर से पटी सड़क पर खड़खड़ाकर भागी जा रही थी.

कुछ देर बाद गाड़ी एक ऊंची-सी इमारत पर जाकर रुकी. पीटर ने चैन की सांस ली. उसकी मंजिल आ चुकी थी ना. 'ओक' की लकड़ी के भारी दरवाजे पर लटका लोहे का कुंडा खटखटाते ही किसी ने दरवाजे पर लगी छोटी खिड़की से देखा और पीटर को पहचानते हुए कहा, ''ले आये?''

''हां, बिल्कुल ताजा है बिल. यह समझ लो कि इसके घरवाले अभी शायद अपने घर भी नहीं पहुंच पाये होंगे.''

चरमराकर दरवाजा खुला. पीटर ने बग्घी से लाश को खींचा. बिल ने भी हाथ लगाया और लाश को अंदर ले आये.

''हूं. लगती तो ताजा ही है.'' बिल बोला.

''मैंने झूठ तो नहीं कहा था,'' पीटर हंसकर बोला, ''देखो, अभी तक गर्म है.''

बिल ने जेब से पांच पाउंड निकालकर पीटर की फैली हुई हथेली पर रख दिये. ''गॉड ब्लैस यू, बिल. तो चलता हूं, गुड नाइट.''

''हां, एक बात तो कहना भूल ही गया.'' बिल बोला, '' अगले सोमवार को औरत की लाश चाहिए. बोलो, ला सकोगे.''

''औरत की? कितनी उम्र की औरत की?'' पीटर बोला.

''अरे, जवान हो तो अच्छा है. जवान औरत की लाश पर चाकू ठीक चलता है. समझे?''

''कोशिश करूंगा,'' पीटर बोला. और फिर सीटी बजाता हुआ चल दिया.

रायल कालेज आफ सर्जंस एंड बारबर्स!

इस बड़ी इमारत का यही नाम था. शल्य-चिकित्सा प्रगति की ओर बढ़ रही थी. नये सिखाड़ी डाक्टर चीर-फाड़ की शैली का सूक्ष्म अध्ययन कर रहे थे. उन दिनों वहां भी भारत की भांति नाई एवं जर्राह ही काटा-पीटी का काम अपने-अपने उस्तरों से करते थे. तभी तो लंदन के इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रायल कालेज आफ सर्जन के साथ 'बारबर्स' शब्द भी जुड़ा था. 'ऐनोटमी' का ज्ञान होना जरूरी था. कौन-सा हिस्सा शरीर में किस जगह है, कौन-सी नस से खून का प्रवाह कहां पहुंचता है. और यह सब क्रिया मनुष्य की लाश पर ही होती थी—लावारिस लाश पर.

लावारिश लाश को लंदन के लावारिश ही ला सकते थे. और पीटर भी एक ऐसा ही जाना-पहचाना लाश-चोर था. शाम को लाश बेचकर नक्की कर देता और शराब पीकर स्वयं को सांत्वना देता, "पीटर, तू कितना बड़ा पुण्य कर रहा है रे. मिट्टी में दबी लाश महीने भर में वाकई मिट्टी हो जायेगी. लेकिन ये नये उभरते हुए डाक्टर इन लाशों पर हाथ रवां करके ही सैंकड़ों रोगियों को बचायेंगे."

"और वह नशे में स्वयं ही अपनी अदालत का जज बनकर फैसला सुना देता, "पीटर इज नॉट गिल्टी."

लगभग तीन साल तक पीटर का 'बिजनेस' खूब धड़ल्ले से चलता रहा. और फिर न जाने कैसी हवा चली कि दस-दस मील तक के कब्रस्तान सुनसान पड़े रहने लगे, मानो सभी ने कौओं की जबान खा ली हो. तब पीटर विचलित हुआ था. अब? अब शराब और गोश्त की जुगाड़ कैसे होगी?

तभी मैडीकल संसार में प्रगति हुई और न जाने कैसे यह निर्णय ले लिया गया कि नीम-हकीम नाइयों और जर्राहों को कालेज से अलग कर दिया जाये. बात भी ठीक थी. धारणा और यथार्थ में बहुत फर्क होता ही है. नाई लोग धारणा के बूते पर उल्टे-सीधे उस्तरे चलाते थे पर जब आदमी की लाश को चीर-फाड़ कर देखा गया तो बात ही कुछ और निकली. फिर कालेज पर टंगा हुआ साइन बोर्ड बदल दिया गया और वहां अब लिखा था 'रायल कालेज आफ सर्जंस'.

नतीजा यह हुआ कि लाशों की मांग बढ़ गयी. पर लाश आये कहां से—पीटर ने सिर खुझलाया.

जब वह टेम्स नदी के सुनसान किनारे पर इसी सोच में घूम रहा था, तब उसे चिथड़ों में लिपटा एक भिखारी दिखाई दिया. पीटर ने गौर से देखा. फिर उसे उस दिन उन डाक्टर-लड़कों को पढ़ाते हुए उस बूढ़े डाक्टर के शब्द याद हो आये—'हवा जीवनदायिनी है. अगर नाक और मुंह से हवा अंदर जाना बंद हो जाये तो आदमी एक मिनट में मर सकता है.' पीटर के चेहरे पर पसीने के मोती टंक गये हों जैसे. उसकी सांस गर्म हो उठी. पांच दिन बीत गये थे उसे शराब और गर्म-गर्म गोश्त खाये हुए.

सहसा पीटर को एहसास हुआ कि शैतान उसके जमीर में घुसकर हंस रहा है. पीटर ने घूर कर फकीर को देखा और फिर उसने उसे दबोच लिया. अंगूठे और तर्जनी उंगुली से उसकी नाक बंद कर दी और बाकी के हाथ और हथेली से उसका मुंह बंद कर दिया. फकीर फड़फड़ाया और फिर भारी-भरकम पीटर की शक्ति के आगे हार गया.

पीटर ने आंखें चौड़ाकर आश्चर्य से कहा, "वह डाक्टर ठीक कहता था. वह डाक्टर ठीक कहता था."

फिर अपनी बग्घी में उस निर्जीव फकीर को उठाकर वह कालेज जा पहुंचा. आज की रात उसे शराब और गर्म-गर्म गोश्त में आनंद ही कुछ और आया. सहसा वह हंसा, "अब पीटर की शाम कभी भूख से नहीं कटेगी." और उस दिन से लाश-चोर एक निर्मम हत्यारा बन गया.

लंदन के 'स्कॉटलेंड यार्ड' पुलिस थाने में बड़ी सरगर्मी थी. आसपास के इलाके के पांच आदमी गायब हो चुके थे. जनता की खामोश आवाज उनके मन को झकझोर देती. आखिर ये लोग गायब कहां हो जाते हैं?

शायद उन्हें अंधेरी कोठरी में बैठे पीटर के बारे में कुछ भी मालूम नहीं था. और पता भी लगता तो कैसे? पीटर भी तो मंजा हुआ हत्यारा बन गया था. अब तो उसने बिल को भी पटा लिया था और चुपचाप उन नये डाक्टरों को दिये जाते 'लैक्चर' भी सुनने लगा था. मनुष्य के जीवन के नये-नये रहस्य—मौत के नये-नये कारण. पीटर को उस बूढ़े डाक्टर का लैक्चर बहुत अच्छा लगता था. क्या-क्या बात बतलाता है जालिम और मजा यह कि हरेक बात पते की होती है.

उस दिन पीटर एक बीस वर्षीय महिला की लाश बेचकर गया था. और जब उस लाश की चीर-फाड़ अंदर होनी शुरू हो गयी तब वह नया लड़का चौंक पड़ा था—जोजफीन! यह तो उसके पड़ोसी जैक विल्सन की बेटी है.

उसी ने फिर बावेला उठाया. और जब बात की डोर पकड़ी गयी तो सहमते हुए बिल ने हकलाकर बतला दिया कि उसने लाश पांच पाउंड में लाशों के पुराने व्यापारी पीटर से खरीदी है.

वह डाक्टर फिर बिल को पकड़कर सीधा स्कॉटलैंड यार्ड थाने पहुंचा था. और वहां से पुलिस पीटर को सूंघती हुई उसके मकान पर जा पहुंची. पीटर की पड़ोसिन ने ही बतलाया था कि पीटर अपनी बग्घी लेकर 'धंधे' पर गया है. अब उसका क्या धंधा है, उसे नहीं मालूम.

पुलिस ने फिर हाइड पार्क में रंगे-हाथों पीटर को पकड़ लिया. उस समय वह एक बैंच पर बैठे 'पेंशनर' पर अपना हथकंडा आजमा रहा था.

पीटर ने फिर सब कुछ उगल दिय था. लाशों को चुराना, फिर हत्या करना. लंदन में बड़ी सनसनी फैली थी उस दिन. कुछ ने रायल कालेज आफ सर्जंस को 'हत्या-घर' कहना शुरू कर दिया तो कुछ उसकी हिमायत में भी बोले. बहरहाल पीटर के गले में 'ऐग्डन हीच' में फांसी का फंदा पहना दिया गया. □

असलियत

संत चुआंग त्सू ने सपने में देखा कि वे एक तितली हैं, जो इधर-उधर उड़ रही हैं.

उस समय वे अपने मनुष्य होने के बारे में बिलकुल अचेत थे.

अचानक उनकी आंख खुल गई और उन्हें अपने मनुष्य होने का अहसास हुआ.

तब उन्होंने सोचा : क्या मैं उस समय मनुष्य था, जब सपने में खुद को तितली के रूप में देख रहा था? या अब तितली हूं, जब सपने में खुद को मनुष्य के रूप में देख रहा हूं? □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटी मछलियों का दर्द

मीनाक्षी शर्मा, नई दिल्ली

मैं जिस मध्यवर्गीय माहौल में पली, बढ़ी उसमें रहते हुए अगर कोई भी कलम उठाएगा तो उसे पात्रों की कमी नहीं खलेगी. बचपन से ही मुझे पढ़ने के साथ-साथ लिखने का भी शौक था. इसलिए आस-पास के हर इंसान को मैं अपनी कहानियों का पात्र ही समझती थी. तब सोचती थी, बड़ी होकर जरूर लिखूंगी इन सबके बारे में. और मैंने लिखा भी बहुत-कुछ. कहानियां, कविताएं,

संस्मरण लिख कर बहुत कागज काले किए. लेकिन प्रकाशित कुछ भी नहीं हुआ, अतः घोर निराशा में डूब कर जब मैंने पत्र-पत्रिकाओं में छपे स्थापित लेखकों के लेखों पर चार छः लाइनों की टिपण्णीयां भेजीं तो आश्चर्य कि वे छपी ही नहीं, उन्होंने मेरे लिए प्रशंसक भी बटोरे. किसी के लिए भी इससे बड़ा दुःख क्या होगा कि उसकी मेहनत या तमाम दर्दों, सपनों से संचित रचनाएं घर के कोने में दुबकी सुबकती रहें और 'बस यूं ही' की तर्ज पर छपी चार पंक्तियां छपती रहें. बहुत मन चाहता है सब को अपनी कहानियों के पात्रों के बारे में बताने का. खासकर उन नारी पात्रों के बारे में जो आज के युग में भी असीम वेदना को अपने में समेटे आस-पास की परिस्थितियों से लड़ रही हैं. कोशिश जारी है, हमेशा रहेगी शायद. खुद को स्थापित करने की ललक है और आशा है जिस पर टिक कर मैं लिख रही हूं.

आत्मविश्वासी प्रयास

संतोष परिहार, बुरहानपुर

"सफलता एक सामूहिक उत्सव है तो विफलता निजी मातम" इस कथन की सत्यता से खेद सहित लौटकर आती रचनाओं ने परिचित करवाया. एक नये रचनाकार के लिये रचना का लौट आना किसी मातम से कम नहीं होता. कारण उसका दर्द कोई समझ नहीं पाता. विपरीत परिस्थितियों से गुजर कर भी मन, मस्तिष्क में जन्मी रचना से जूझता रहता है.

आंगन में आम के पेड़ के नीचे बैठा. वापस आयी एक रचना की कमियां निकालने का यत्न कर रहा था. दूसरों की आलोचना करना जितना सहज है, खुद की कमियां निकालना उतना ही कठिन कार्य है. उसी समय पेड़ पर से एक चिड़िया का बच्चा नीचे गिरा. गिर कर फड़फड़ाने लगा. उसके नये-नये पंख निकले थे. उड़ने की कोशिश में ऊपर उठता फिर नीचे गिर जाता. इसी प्रयास में पास खड़ी खाट पर जा बैठा, फिर थोड़ी उड़ान भर खपरैल पर जा बैठा. खपरैल से आम की नीची डाल पर और उस नीची डाल से वह धीरे-धीरे एकदम ऊंची डाली पर जा कर बैठ गया.

साधारण होते हुए भी उसका यह कर्म मेरे लिये असाधारण प्रेरक प्रसंग था. एक यथार्थ का ज्ञान हुआ. मैं आरंभ से ही बहुत अधिक उच्चता की प्राप्ति में प्रयत्नशील था. जबकि आरम्भ से कोई भी प्रेमचंद, अमृतलाल नागर या धर्मवीर भारती नहीं बन सकता, लघु एवं स्थानीय पत्र-पत्रिकाओं से लेखन यात्रा आरंभ की जाये तो समय के साथ-साथ बढ़ता अनुभव, आत्म विश्वास और प्रयास निःसंदेह सफलता का सूत्र है. लेखन एक आत्मविश्वासी प्रयास है. इसी विश्वास के साथ मनभावों को अभिव्यक्ति देने लगता हूं.

प्रेम संबंधों पर...

□ अशोक प्रियदर्शी

मेरे लिए जीवन वरदान है. मेरी अपनी दृष्टि में जीवन ही परमात्मा है. क्योंकि जीवन ही सत्य और सत्य को जानने का माध्यम है. अपने

आसपास धर्म, संप्रदाय, वाद, परंपराओं के नाम पर हो रहे अन्याय को देखकर अचेतन सहज ही चीत्कार कर उठता है. मैं इसी आवाज को अपनी लेखनी के माध्यम से अंजाम देना चाहता हूं. धर्म के नाम पर कटते रू-ब-रू आदमी, गांधीवाद के नाम पर पनपती भ्रष्ट राजनीति, आदमी का असंवेदनशील रवैया मेरे लेखक मन के प्रेरणा स्रोत रहे हैं. टूटते हुए जीवन मूल्य और ढहते हुए चिंतन दर्शन को देखकर गहरी निराशा होती है.

भावों की अराजक अभिव्यक्ति मेरे लिए समस्या पैदा करती है. फिर भी इसकी चिंता किये बगैर सहज भाव से अपनी अनुभूतियों को कागज के कैनवास पर उतारना चाहता हूं. स्त्री-पुरुषों के मध्य दुविधाग्रस्त सेक्स संबंध, विवाहेतर प्रेम संबंध तथा प्रेम पर अधारित सभी संबंधों की जटिलताओं में मेरी गहरी अभिरुचि रही है तथा मैं इसे अपने लेखन का मूल बिंदु बनाना चाहता हूं. □

सामाजिकता का द्वंद्व

सुनीता आदित्य

लिखूं, पर किस लिए? स्वांतः सुखीय या परजन हिताय? अक्सर होता है कि अनुभूति के तीव्रतम क्षणों में विचार शब्दों का और शब्द किसी रचना का रूप ले लेते हैं किंतु सार्थक लेखन कर पाना बेहद मुश्किल-सा बन जाता है क्योंकि उलझन की एक नयी स्थिति सामने आ खड़ी होती है—क्या यह जन सामान्य की पीड़ा है जो बालपीड़ा बन मेरी रचना में मुखरित हुई है या महज

एक नितांत वैयक्तिक अनुभव जो वायवी सृजनात्मकता का उदाहरण तो हो सकता है पर सामाजिक यथार्थ का वाहक नहीं. यहीं लेखन की सार्थकता और उद्देश्य पर प्रश्न-चिन्ह लग जाता है. यही उलझन अभिव्यक्ति की कसमसाहट को कभी-कभी घोंट-सा देती है, आड़ी-तिरछी लाइनें लगने लगती हैं. अपने विचार, अपने ही लिखे शब्द. उन्हें डायरी के पन्नों की कैद से छुड़ाकर जनसामान्य के बीच ले जाने का साहस यदा-कदा ही जुट पाता है. सच पूछो तो यह भटकाव और गिरता आत्मविश्वास ही हम युवाओं की अभिव्यक्ति को कुंठित करता लगता है. पर इतना अवश्य है कि सागर की उद्दाम लहरों के बीच तटबंधों को यदि मजबूती से संयोजित न किया जाय तो वे कट-कट कर गिरने लगते हैं. हमारे वैचारिक तटबंधों को संयोजित करने का लेखन से अच्छा और सशक्त माध्यम दूसरा क्या हो सकता है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

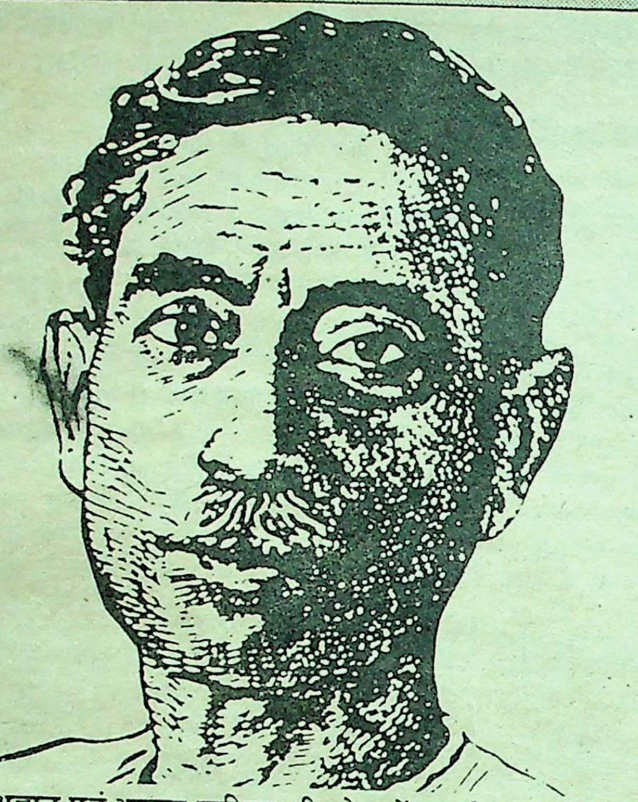

प्रेमचंद के अज्ञात एवं अप्राप्य साहित्य की खोज में उनकी जो उर्दू-हिंदी कहानियां मिलीं, उनमें 'खेल' सबसे अधिक कलात्मक कहानी है. इस कहानी की सहज यथार्थता, ग्रामीण परिवेश, कृषक-बालकों का मनोविज्ञान तथा खोंमचे वाले का अभिनय इस कहानी को कलात्मक ऊंचाइयों तक ले जाता है. प्रेमचंद की खूबी यह है कि ग्रामीण बच्चे की एक अत्यंत सहज घटना को उन्होंने कहानी की रोचकता, आकर्षण तथा हृदयस्पर्शिता से पूर्ण कर दिया है. आश्चर्य यही होता है कि प्रेमचंद ने इस कहानी को अपने संकलनों में क्यों स्थान नहीं दिया और यह पाठकों से 50-55 वर्षों तक ओझल बनी रही.

'खेल' कहानी उर्दू मासिक पत्रिका 'चंदन' के अप्रैल, 1931 के अंक में प्रकाशित हुई थी. पं. सुदर्शन इस पत्रिका के संपादक थे और प्रेमचंद से उनका यह समझौता था कि वे अपनी कहानियां 'चंदन' में प्रकाशनार्थ देंगे और सुदर्शन अपनी हिंदी कहानियां, 'हंस' में. इसी कारण 'चंदन' में प्रेमचंद की कई उर्दू कहानियां प्रकाशित हुईं, जिनमें 'खेल' भी शामिल थी, किंतु– 'खेल' के अतिरिक्त शेष कहानियां उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं के संकलनों में मिलती हैं. इसकी अभी खोज होनी है कि 'खेल' कहानी का हिंदी रूपांतर क्या प्रेमचंद ने किया और क्या वह किसी हिंदी पत्रिका में प्रकाशित हुई? इस तथ्य की जानकारी तो तत्कालीन हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की गहरी खोजबीन के बाद ही हो सकती है.

हिंदी पाठकों के सम्मुख यह 'खेल' कहानी पहली बार आ रही है. इस प्रकार उनके लिए यह प्रेमचंद की सर्वथा नयी कहानी है. पाठकों ने प्रेमचंद की 'ईदगाह' कहानी पढ़ी है, जिसका बाल चरित्र हामिद हमें भाव-विभोर करता है और वह हमारे मानस में छाया रहता है. मेरा विश्वास है कि 'खेल' कहानी पढ़ने के बाद पाठकों को कहानी का बाल पात्र फुंदन किसी भी दृष्टि से, हामिद की तुलना में, कम वजनदार प्रतीत नहीं होगा. फुंदन की बाल-क्रीड़ा कैसे एक अविस्मरणीय कलात्मक कहानी बन जाती है, यह प्रेमचंद की कलम का ही कमाल है.

खेल

तीसरा पहर हो गया था. किसान अपने खेतों में पहुंच चुके थे. दरख्तों के साये झुक चले थे. ऊख के हरे-भरे खेतों में जाबजा (जगह-जगह) सारस आ बैठे थे. फिर भी धूप तेज थी और हवा गर्म. बच्चे अभी तक लू के खौफ से घरों से न निकलने पाये थे कि यकायक एक झोंपड़े का दरवाजा खुला और एक चार-पांच साल के लड़के ने दरवाजे से झांका. झोंपड़े के सामने नीम के साये में एक बुढ़िया बैठी अपनी कमजोर आंखों पर जोर डाल-डालकर एक टोकरी बुन रही थी. बच्चे को देखते ही उसने पुकारा, ''कहां जाते हो फुंदन. जाकर अंदर सोओ, धूप बहुत कड़ी है. अभी तो सब लड़के सो रहे हैं.''

फुंदन ने ठनककर कहा, ''अम्मां तो खेत गोणाने गयीं. मुझे अकेले घर में डर लगता है.''

बुढ़िया गांव भर के बच्चों की दादी थी, जिसका काम बच्चों की आजादी में मुखिल (बाधक) होना था. गढ़िया के किनारे अमियां गिरी हुई थीं, लेकिन कोई बच्चा उधर नहीं जा सकता. गढ़िया में गिर पड़ेगा. बेरों का दरख्त सुर्ख व जर्द (लाल और पीले) बेरों से लदा हुआ है. कोई लड़का उस पर चढ़ नहीं सकता, फिसल पड़ेगा. तालाब में कितना साफ पानी भरा हुआ है, मछलियां उसमें फुदक रही हैं. कमल खिले हुए हैं, पर कोई लड़का तालाब के किनारे नहीं जा सकता, डूब जायेगा. इसलिए बच्चे उसकी सूरत से बेजार (विमुख अप्रसन्न) थे. उसकी आंखें बचाकर सरक जाने की हिकमतें (युक्तियां) सोचा करते थे. मगर बुढ़िया अपने हश्ताद साला (अस्सी वर्ष के) तजुर्बे से उनकी हर एक नकल व हरकत को ताड़ जाती थी और कोई-न-कोई पेशबंदी कर लेती थी.

बुढ़िया ने डांटा, ''मैं तो बैठी हूं. डर किस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बात का है? जा सो रह, नहीं उठती हूं.'' लड़के ने दरवाजे के बाहर आकर कहा, ''अब तो निकलने की बेला हो गयी.''

''अभी से निकल के कहां जाओगे?''

''कहीं नहीं जाता हूं दादी.''

वह दस कदम और आगे बढ़ा. दादी ने टोकरी और सूजा रख दिया और उठना ही चाहती थी कि फुंदन ने छलांग मारी और सौ गज के फासले पर था. बुढ़िया ने अब सख्ती से काम न चलते देखकर नरमी से पुकारा, ''अभी कहीं मत जा बेटा.''

फुंदन ने वहीं खड़े-खड़े कहा, ''जतीन को देखने जाते हैं,'' और भागता हुआ गांव के बाहर निकल गया.

जतीन एक खोंमचेवाले का नाम था. इधर कुछ दिनों से उसने गांव का चक्कर लगाना शुरू किया. था. हर रोज शाम को जरूर आ जाता. गांव में पैसों की जगह अनाज मिल जाता था और अनाज असल कीमत से कुछ ज्यादा होता था. किसानों का अंदाज हमेशा फैयाजी (दानशीलता) की जानिब (ओर) मायल (उन्मुख) होता है. इसीलिए जतीन करीब के कस्बे से तीन-चार मील की मसाफत (फासिला) तय करके आता था. उसके खोंचे में मीठे और नमकीन सेव, तिल या राम दाने के लड्डू, कुछ बताशे और खुट्टियां, कुछ पट्टी होती थीं. उस पर एक मैला-सा बोसीदा (फटा-पुराना) कपड़ा होता था. मगर गांव के बच्चों के लिए वह ख्वान-ए-नेमत (अच्छी-अच्छी खाने की चीजों से भरा थाल) था, जिसे खड़े होकर देखने के लिए सारे बच्चे बेताब रहते थे. इनकी तिफलाना (बालोचित) सरगर्मियों (संलग्नता, तत्परता) में यह एक दिलचस्प इजाफा हो गया था. सबके सब तीसरे पहर ही से जतीन का इंतिजार करने लगते थे. हालांकि ऐसे खुशनसीब लड़के कम थे, जिन्हें इस ख्वान-ए-नेमत से हकाइकी (यथार्थ में) फैज (लाभ) पहुंचता हो. मगर खोंचे के गिर्द (निकट) जमा होकर ख्वानपोश (थाल पर ढंके कपड़े) को आहिस्ता से उठते और उन नेमतों को रानियों की तरह अपनी-अपनी जगह तकल्लुफ (संकोच) से बैठे देखना बजायेखुद (स्वयं) बेहद दिलआवेज (प्रियदर्शन, खुशनुमा) था. हालांकि जतीन का आना हर एक घर में कुहराम मचा देता था और आध घंटे सारे गांव में हंगामा-सा बरपा (उपस्थिति) हो जाता था. मगर बच्चे इसका खैरमक्दम (स्वागत) करने को मुज्तरिब (अधीर) रहते थे. यह जानते हुए भी कि जतीन की आमद (आगमन) उनके लिए हंसी का नहीं, रोने का मौका है. सबके सब बड़ी बेसब्री से उसके मुंतजिर (प्रतीक्षा में) रहते थे, क्योंकि मिठाईयों के दर्शन से चाहे जबान आसूदा (संतुष्ट) न हो, रूहानी तक्वियत (तसल्ली, सांत्वना) जरूर होती थी. फुंदन भी इन्हीं गरीब लड़कों में था. और रूठने, तिफलाना (बालोचित) मिन्नत गरसना (भूखी) निगाहों से देखता था. रोने और रुठने, तिफलाना (बालोचित) मिन्नत और खुशामद एक से भी उसकी मक्सद बरारी (उद्देश्य पूर्ति) न होती थी. गोया नाकामी ही उसकी तकदीर में लिखी हो.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मगर इन नाकामियों के बावजूद उसका हौसला पस्त न होता था.

आज फुंदन दोपहर को न सोया. जतीन ने आज कच्ची गरी और इमर्तियां लाने का जिक्र किया था. यह खबर लड़कों की उस दुनिया में किसी अहमे (महत्वपूर्ण) तारीखी वाकए (ऐतिहासिक घटना) से कम न थी. सुबह से ही जतीन की तरफ दिल लगा हुआ था. ऐसी आंखों में नींद कहां से आती?

फुंदन ने बाग में पहुंचकर सोचा— क्या अभी सबेरा है? इस वक्त तो जतीन आ जाता था, मगर नहीं अभी सबेर है. चुन्नू और सोहन और कल्लू एक भी तो नहीं उठे. जतीन सड़क पर पहुंच गया होगा. इमर्तियां जरूर लायेगा, सुर्ख और चिकनी होंगी. एक बार न जाने कब... हां दसहरे के मेले में एक इमर्ती खायी थी. कितनी मजेदार थी. उस जायके को याद कर के उसके मुंह में पानी भर आया. इश्तियाक (उत्कंठा, लालसा) और भी तेज हो गया. वह बाग के आगे निकल गया. अब सड़क तक हमवार (समतल) मैदान था, लेकिन जतीन का कहीं पता न था.

कुछ देर तक फुंदन गांव के निकस पर खड़ा जतीन की राह देखता रहा. उसके दिल में एक गुदगुदी उठी— आज मैं सबसे पहिले जतीन को पुकारूंगा. मैं जतीन के साथ-साथ गांव में पहुंचूंगा. तब लोग कितना चकरायेंगे? इस खयाल ने उसके इश्तियाक में बेसब्र का इजाफा कर दिया. वह तालियां बजा-बजाकर दिल ही दिल में चहकता हुआ सड़क की तरफ चला.

इत्तिफाक (संयोग) से उसी वक्त गेंदा आ गया. यह गांव का पंचायती कुत्ता था—चौकादीर का चौकीदार, खिलौने का खिलौना. हस्बे मामूल (नित्य नियमानुसार) तीसरे पहर का गश्त लगाने निकला था. इसी वक्त सांड और बैल खेत्तों में घुसते थे. यहां पहुंचा तो फुंदन को देखकर रुक गया और दुम हिलाकर गोया पूछा— 'तुम आज यहां क्यूं आये!' फुंदन ने उसके सिर पर थपकियां दीं, मगर गेंदा को ज्यादा बातचीत करने की मुहलत (फुर्सत) न थी. वह आगे बढ़ा तो फुंदन भी उसके पीछे दौड़ा. अब उसके दिल में एक ताजा उमंग पैदा हो रही थी. वह तनहा (अकेला) न था. उसका रफीक (दोस्त) भी साथ था. वह अब कच्ची सड़क पर जतीन का खैरमक्दम

> रफ्ता रफ्ता साया लंबा हो गया. धूप थके हुए मुसाफिर की तरह पांव फैलाकर सोती हुई मालूम हुई. अब तक जतीन के आने की उम्मीद रही. उम्मीद में वक्त उड़ता चला जाता था...

(स्वागत) करना चाहता था. सड़क पर पहुंचकर उसने दूर तक निगाह दौड़ायी. जतीन का कहीं निशान नहीं था. कई बार उसे वहम हुआ वह जतीन आ रहा है, मगर एक लम्हे में उसका इजाला (निवारण) हो गया. सड़क पर नाजिरी (दर्शनीय) दिलचस्पियों की कमी न थी. बैल-गाड़ियों की कतारें थीं. कभी-कभी एक्के और पैर-गाड़ियां भी निकल जाती थीं. एक बार एक ऊंट भी नजर आया, जिसके पीछे वह कई सौ कदम तालियां बजाता गया, मगर इन सरीउस्सैर (शीघ्रगामी) दिलचस्पियों में वह इश्तियाक (लालसा) किसी मीनार की तरह खड़ा था.

सड़क के किनारे दो रोया (आमने-सामने) दरख्त खड़े थे. उनमें आम के दरख्त भी थे. इस इश्तियाक (उत्कंठा, लालसा) में उसे आमों पर निशाने मारने का एक दिलचस्प मशगला (काम) हाथ आया, मगर आंखें जतीन के लिए बरसरे-राह (ठीक रास्ते पर) थीं. यह बात क्या है, आज वह आ क्यूं नहीं रहा है?

रफ्ता-रफ्ता (धीरे-धीरे) साया लंबा हो गया. धूप किसी थके हुए मुसाफिर की तरह पांव फैलाकर सोती हुई मालूम हुई. अब तक जतीन के आने की उम्मीद रही. उम्मीद में वक्त उड़ता चला जाता था. मायूसी में वह गोया घुटने तोड़कर बैठ गया. फुंदन की आंखों से बेअख्तियार उम्मीद-ए-शिकस्ता (भग्न आशा) के आंसू बहने लगे. हिचकियां बंध गयीं. जतीन कितना बेरहम है. रोज आप ही दौड़ा आता था. आज जब मैं दौड़ा आया तो घर बैठ रहा. कल आयेगा तो गांव में घुसने न दूंगा. उसकी तिफलाना (बालोचित) आरजूएं (उत्साह) के साथ उसके दिल को मसारने (मथने) लगीं.

दफअतन (सहसा) उसे जमीन पर एक टूटा हुआ झब्बा नजर आया. इस यास-व-नाकामी फितरी (नैसर्गिक) खुश बासी (निश्चितता) ने अनदोह रूबाई (दुःख दूर करने) का सामान पैदा कर दिया. कुछ पत्तियां चुनकर झब्बे में बिछाईं. उसमें कुछ बजरियां और कंकड चुनकर रखे. अपना कुर्ता उतारकर उसको ढका और उसे सिर पर रखकर गांव की तरफ चला. अब वह जतीन का मुतलाशी (ढूंढनेवाला) लड़का न था, खुद जतीन था. वही ख्वान-ए-नेमत (अच्छी-अच्छी खाने की चीजों से भरा थाल) सिर पर रखे उसी तरह मुहमल (अर्थहीन) सदा (आवाज) लगाता हुआ, रफ्तार भी वही, तर्जेकलाम (बात करने का ढंग) भी वही. जतीन के आगे-आगे चलकर क्या उसे वह मुसर्रत (खुशी) हो सकती थी जो इस वक्त जतीन बनकर हो रही थी? वह हवा में उड़ा जा रहा था— सराब (मृगतृष्णा) में हकीकत का मजा लेता हुआ, नकल में अस्ल की सूरत देखता हुआ. खुशी अस्बाब (कारण) से किस कदर बेनियाज (निःस्पृह, आजाद) है. इसकी चाल कितनी मस्ताना थी? गुरूर से उसका सिर कितना उठा हुआ था?

वाकेइयत (यथार्थतः) का उसका तिफलाना (बालोचित) चेहरे पर ऐसा मुलम्मा था कि क्या मजाल जरा भी हंसी आ जाये. इस शान से वह गांव में दाखिल हुआ. लड़कों ने उसकी आवाज सुनी, "रेवड़ी कड़ाकेदार!" और सब-के-सब दौड़े आन की आन में. फुंदन मुशताक (उत्सुक) सूरतों से महसूर (घिरा हुआ) हो गया, उसी तरह जैसा जतीन हो जाता था. किसी ने न पूछा यह क्या स्वांग है? दिल ने दिल की बात समझी. मिठाईयों की खरीद होने लगी. ठीकरों के पैसे थे, कंकड़ और बजरियों की मिठाई. इस खेल में लुत्फ कहीं ज्यादा था. माद्दियत (भौतिकता) में रूहानियत (आध्यात्मिकता) का अंदाज कहां, मुसर्रत कहां, एहसास-ए-परवाज (उड़ने का अनुभव) कहां?

मुन्नू ने एक ठीकरा देकर कहा, "जतीन, एक पैसे की खुट्टियां दे दो."

जतीन ने एक पत्ते में तीन-चार कंकड़ रखकर दे दिये.

खट्टियों में इतनी शारीनी (मिठास), इतनी लज्जत (आनंद, स्वाद) कब हासिल हुई थी? □

'चंदन' उर्दू मासिक पत्रिका के अप्रैल 1931 में प्रकाशित)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथा पहेली : अगस्त 1988 के पुरस्कार विजेता तथा सर्वशुद्ध हल

इस बार अधिकांश प्रतियोगियों की पूर्तियां यह आभास दे रही थीं कि वे पत्रिका पूरे मनोयोग से पढ़ रहे हैं. बावजूद इसके, आठ हजार प्रतियोगियों में आठ प्रतियोगी ही ऐसे रहे जिनके हल पूरी तरह सही हैं.

इस बार के पुरस्कार विजेता

1. आनंद शर्मा, अनुभागीय अधिकारी, खैरागढ़, राजानंद गांव (म.प्र.) 491445
2. सुनील माथुर, द्वारा श्री गोपाल मोहन माथुर, जी-276, शास्त्री नगर, जोधपुर-342001
3. रमा कश्यप, द्वारा ई.एन. सिंह, अशोकनगर, सराय तलफी डाकखाना, बरेली-243004
4. विनेश कुमार शर्मा, शर्मा भवन-नीलकमल के पास, बी-14, नई बस्ती, बिजनौर-246701
5. निशिकांत भारद्वाज 'निशि' एन.जी.-14, आजाद भवन, रुड़की विश्वविद्यालय, रुड़की (उ.प्र.)
6. निशा निशांत, 139-एफ, लोको शेड, रेलवे कालोनी, दिल्ली 110006
7. सुरेंद्र प्रताप सिंह, प्रताप विद्युत संस्थान, गुड़ मंडी, परीक्षित गढ़ (मेरठ)-250406
8. मोना नेमा, विद्या विहार 77-डी, पिलानी, राजस्थान.

कथा-पहेली का सर्वशुद्ध हल

1. 'रूप के अमृत में घुला ज़हर'
2. 'अलिप्त नायिका' की हैजल स्मिथ
3. पतिव्रता, संकेत कन्या, खबर, हनीफा, सैली वाटसन.
4. एक्टेयॉन
5. शूद्रक, नार्मन मेलर, विशाख दत्त, आचार्य क्षेमेंद्र, रामकुमार वर्मा
6. 'अलिप्त नायिका' में डा. गोयरलिज
7. 'एक कवि की प्रार्थना और नरकंकाल पर खड़ी सभ्यता' में 'अरब डैथ'
8. जर्मन से कभी प्रेम न मिल पाने के कारण
9. मार्सेल
10. गुलाम रब्बानी ताबां

सारिका कथा पहेली

कहानियां गौर से पढ़िये और 200 रुपये के पुरस्कार जीतिए

'सारिका कथा-पहेली' में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं. प्रतियोगियों को 'सारिका' के इसी पृष्ठ पर पूर्तियां भेजनी होंगी. पूर्तियां सादे कागज पर न भेजें. इस कथा पहेली के सभी प्रश्न 'सारिका' सितंबर, 1988 अंक पर आधारित है. कार्यालय में डाक द्वारा हल प्राप्त होने की अंति तिथि 20 अक्तूबर, 1988 है. पुरस्कार विजेताओं के नाम दिसंबर, 1988 के अंक में प्रकाशित किए जायेंगे.

प्रतियोगियों के लिए विशेष

दूर-दराज के जिन इलाकों में पाठकों तक 'सारिका' देर से पहुंचती है वे 'सारिका कथा पहेली' में अपनी पूतियां 20 तारीख के बाद भी भेज सकते हैं. पूर्तियां भेजते समय यह उल्लेख अवश्य होना चाहिए कि 'सारिका' आप तक देर से पहुंची.

सारिका कथा पहेली : अकतूबर, 1988

1. .... लेख में जाना पहचाना मुहावरा चरितार्थ हुआ है.
2. बछड़े को देख रोना और हंसना साथ-साथ संभव इसलिए हुआ क्योंकि ....
3. लिंकन की दुखद हत्या के बाद .... को राष्ट्रपति बनाया गया.
4. मां-बेटे के संवाद में बेटे का उत्तर.................... रचना में निरुत्तर कर देने वाला है.
5. 'हथियारों के हरम' का संदर्भ .... रचना के संबंध में आया है.
6. अपने मित्र.................... के मुसीबत के दिनों में रॉबर्ट फ्रॉस्ट ने सबसे ज्यादा मदद की.
7. यह पुस्तकें जिन लेखकों की हैं, उनके नाम कोष्ठक में लिखें.
   1. 'आज की कहानी' (   )
   2. 'अयलॉग ऑफ टू सिटीज' (   )
   3. 'भविष्यत् चित्रपटम्' (   )
   4. 'और कब तक' (   )
8. 'मुकदमे का फैसला हो जाने के बावजूद पत्नी फिर पति के साथ रहने लगी' यह दास्तान .... से संबंधित है.
9. ''औरत ललसायी होती है .... तो पिघलती है.'' यह प्रसंग .... कहानी में आया है.
10. अपने-अपने कमंडलों में वक्त की सच्चाइयां संकलित करना .... पुस्तक के संदर्भ में आया है.

नाम ....

पता ....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मछुआ और जिन्न

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि मछुआ 'अल्लाह की मर्जी' कहकर अपना जाल साफ करने लगा... अल्लाहताला से दुआ करते हुए जब वह जाल निचोड़ सागर में उतरा

जब मछुए ने जाल को निचोड़ा और उसे लेकर फिर सागर में उतरा तो वह अल्लाहताला से दुआ कर रहा था कि वह उसे सागर से कोई कीमती उपहार दिलवाये. जब लाल तल तक पहुंच गया तो उसने उसे खींचा. इस बार वह पहले से भी ज्यादा भारी लग रहा था. मछुए को विश्वास हो गया कि इस बार जरूर कोई बड़ी मछली उसके जाल में फंसी है.

लेकिन, जब उसने जाल को किनारे पर खाली किया तो उसे यह देखकर बड़ी निराशा हुई कि जाल में मिट्टी का एक बड़ा घड़ा फंसा है. ऐसा घड़ा, जिसमें मिट्टी और रेत के अलावा कुछ और नहीं है. उसने घड़ा फेंक दिया और तीसरी बार अपना जाल सागर में फेंका. इस बार फिर उसे महसूस हुआ कि कोई भारी वस्तु जाल में अटकी है. उसने जाल को फिर ऊपर खींचा लेकिन उसमें टूटे कांच से भरे मिट्टी के बर्तनों के अलावा कुछ और न था. उसे फिर बड़ी निराशा हुई.

फिर भी, उसने हिम्मत न हारी. उसने अल्लाहताला को पुकारते हुए कहा, "या खुदा! तुझे मालूम है कि मैं हर रोज चार बार सागर में जाल डालता हूं. आज तीन बार डाल चुका हूं लेकिन कोई सफलता नहीं मिली. अब तेरा नाम लेकर चौथी और आखिरी बार जाल सागर में डाल रहा हूं. उम्मीद है, इस बार तू मुझ पर जरूर मेहरबान होगा."

यही दुआ मांगकर, उसने चौथी बार जाल सागर में डाला. इस बार जाल में इतनी भारी चीज आयी कि वह बहुत जोर लगाने के बावजूद, उसे एक इंच भी नहीं हिला सका. 'देखें, इस बार अल्लाह की मर्जी क्या है.' वह एड़ी चोटी का जोर लगाकर जाल को ऊपर खींचने की कोशिश करने लगा.

जब मुश्किलतमाम, जाल ऊपर आया तो उसने बड़ी बेताबी के साथ जाल को खोलकर उसका मुआयना किया, इस बार उसे पीले तांबे का एक भारी मर्तबान दिखाई दिया. उसने देखा कि मर्तबान को देखकर मछुए को बड़ी खुशी हुई. उसने सोचा, 'अकेले मर्तबान के बदले में ही मुझे सोने की दस दीनारें मिल जायेंगी.'

मर्तबान चूंकि भारी था, इसलिए उसने सोचा कि मैं पहले उसे खाली करूंगा और जो कुछ उसके अंदर होगा, उसे अपनी टोकरी में छिपाकर इस मर्तबान को बेचने के लिए बाजार ले जाऊंगा. यह निश्चय करके उसने मर्तबान को खोलना आरंभ किया. मगर, सीलबंद मर्तबान के खुलते ही, वह फिर निराश हो गया, कारण मर्तबान में घनीभूत धुएं के अलावा कुछ और न था. सिर्फ धुएं से मर्तबान इतना भारी कैसे हो गया, वह चकित होकर सोच रहा था. धुएं में तो कोई वजन नहीं होता.

उसकी हैरानी तब और बढ़ गयी, जब यह धुआं एक दैत्याकार जिन्न की शक्ल अख्तियार करने लगा. जैसे-जैसे, जिन्न का आकार बढ़ता जा रहा था, वैसे-वैसे मछुआ डर के मारे आधा हुआ जा रहा था.

जब जिन्न ने अपनी पूरी शक्ल अख्तियार कर ली तो मछुए ने भयभीत नेत्रों से उसकी ओर देखा. गुंबद की शक्ल का उसका सिर बादलों को छू रहा था. हाथ दो विशालकाय कांटे जैसे लग रहे थे. पांव-जहाज की मस्तूलों जैसे थे. गुफा के आकार जैसे उसके मुंह में, उसके दांत सफेद चट्टान के टुकड़ों जैसे दिखाई दे रहे थे. आंखें मशाल की तरह चमक रही थीं. नथुने खुले मर्तबान जैसे और बाल सन जैसे प्रतीत हो रहे थे.

जिन्न ने भयभीत मछुए को आश्वस्त करते हुए कहा, "इस दुनिया में अल्लाह से बढ़कर कोई नहीं है और सुलेमान अल्लाहताला के नबी हैं. मैं कसम खाकर कहता हूं कि मैं कभी उनकी मर्जी के खिलाफ कोई काम नहीं करूंगा. आप मुझे मारें नहीं. माफ कर दें."

जिन्न को इतना विनम्र देखकर मछुए की हिम्मत बढ़ी और उसने जिन्न से कहा, "क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि हजरत सुलेमान को गुजरे अट्ठारह सौ साल हो चुके हैं. तुम अब किससे माफी मांग रहे हो? अपने बारे में बताओ. तुम मर्तबान में आये कैसे?"

इन प्रश्नों के उत्तर में जिन्न ने मछुए से कहा, "इस दुनिया में अल्लाह से बढ़कर और कोई नहीं है. ओ, मछुए सुन! मैं तेरे लिए अच्छी और खुशखबर लेकर आया हूं."

"कैसी खबर?" मछुए ने पूछा.

"तेरी मौत की खबर! मौत जो फौरन होगी और बहुत ज्यादा भयानक होगी."

"मगर मैंने ऐसा कौन-सी जुर्म किया जिसके बदले में तुम मुझे यह भीषण सज़ा दे रहे हो. जिन अल्लाहताला को तुमने दो बार याद किया, वे और उनके नबी सुलेमान तो बहुत रहमदिल हैं. तुम्हें तो मेरा शुक्रगुजार होना चाहिए कि मैंने तुम्हें मर्तबान की लंबी कैद से आजाद किया."

"मगर जिन्न पर मछुए की बात का कोई असर नहीं हुआ. उसने मछुए से कहा, "मैं तुम्हें एक ही रियायत दे सकता हूं और वह यह कि मैं तुम्हें उसी ढंग से मारूंगा, जो तुम्हें पसंद होगा."

"लेकिन, मेरा कसूर क्या है, यह तो बताओ!"

"मेरी कहानी सुनोगे तो पता चल जायेगा!"

"तो फिर जल्दी से सुनाओ अपनी कहानी."

"मेरा नाम सख-अल-जिन है," जिन्न ने अपनी कहानी शुरू की. "मैंने नबी सुलेमान के खिलाफ बगावत की थी. सुलेमान ने अपने वजीर आसिफ-बिन-बराख्या को मुझसे लड़ने के लिए भेजा. ताकत और डील-डौल में मुझसे कम होते हुए भी वजीर ने मुझे अपनी अक्ल के सहारे आसानी से हरा दिया और पकड़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुलेमान के पास ले गया. नबी ने मुझसे कहा, 'अगर तुम अल्लाह को सबसे बड़ा मानने तथा उसका हुक्म बजा लाने का वायदा करो तो मैं तुम्हें माफ करके रिहा कर सकता हूं.'

''लेकिन, मैं ऐसा करने से साफ इंकार कर दिया.

''मेरे बार-बार मना करने पर, उन्होंने यह मर्तबान मंगाया और उसमें मुझे बंद कर दिया. बाद में उन्होंने मर्तबान पर अपने नाम की सील लगा दी और मुझे सागर के बीचोंबीच फिकवा दिया. मैं सागर में सौ वर्ष तक रहा और लगातार यही कहता रहा, 'जो भी मुझे इस जेल से रिहा कर देगा, मैं उसे मालामाल कर दूंगा.' जब दो सौ साल की बंदी के बाद भी किसी ने मुझे मर्तबान से रिहा नहीं किया, तो मैंने कहा, 'जो मुझे इस मर्तबान से मुक्ति दिलायेगा, मैं उसे पृथ्वी की सारी धन-दौलत दे दूंगा.' लेकिन, कोई मुझे रिहा करने नहीं आया और इसी प्रकार चार सौ वर्ष बीत गये. तब मैंने घोषणा की, 'जो मुझे रिहा करेगा, मैं उसकी तीन इच्छाएं पूरी करूंगा.' मगर, जब इस घोषणा के बाद भी किसी का ध्यान मुझे मुक्त करने की ओर नहीं गया, तो मैंने गुस्से में भरकर निश्चय किया कि अब जो भी मुक्त करेगा, मैं उसे फौरन मार डालूंगा, मगर उसी ढंग से, जिससे वह मरना चाहे. अपने इस निश्चय के अनुसार ही, मैं तुझे तेरी पसंद के ढंग से मारने वाला हूं.''

मछुए ने कहा, ''ओ जिन्न! तुम्हारे पहले तीन निश्चयों और चौथे निश्चय में कितना फर्क है! मैं हाथ जोड़कर तुमसे इल्तिजा करता हूं कि मुझे मार मत. यदि तुमने मुझ बेकसूर को मारा तो अल्लाहताला तुम्हें भी जिंदा नहीं छोड़ेंगे वह मेरी मौत का बदला तुमसे जरूर लेंगे.''

''मुझे तुम्हें मारना ही पड़ेगा. मैं अपने से यह वायदा कर चुका हूं.''

''ओ, जिन्न-श्रेष्ठ! क्या तुम भलाई का बदला लोगों को जान से मारकर देने के ही आदी हो?''

''बस, बकवास बंद करो और मरने के लिए तैयार हो जाओ.''

मछुए ने सोचा कि वह ताकत के सहारे तो जिन्न को हरा नहीं सकता लेकिन अक्ल के इस्तेमाल से जरूर उसे हराकर अपनी जान बचा सकता है. तभी उसके मन में एक विचार आया और उसने जिन्न से कहा, ''तुमने एक वायदा किया था कि तुम मुझे मेरी पसंद के अनुसार, मारोगे.''

''हां, अपनी वह शर्त मुझे याद है.''

''तो मैं मरने से पहले तुमसे अपने एक सवाल का जवाब चाहता हूं. उस सवाल का सही और खरा जवाब मिलने पर मैं तुम्हारे हाथों, जिस ढंग से तुम चाहो, मरने को तैयार हो जाऊंगा. क्या कहते हो?''

''जिन्न ने कुछ सोचकर कहा, ''अच्छा! पूछो, क्या पूछना है. मैं तुम्हारे सिर्फ एक ही सवाल का जवाब दूंगा.''

''मंजूर है! मुझे सिर्फ यह पूछना है कि तुम जैसा दैत्याकार जिन्न इस छोटे से मर्तबान में कैसे समा गया? यह असंभव लगता है.''

''मगर, तुमने खुद ही तो मुझे इसमें से निकाला था.''

''हां, मगर बिना खुद अपनी आंखों से यह देखे कि तुम इस मर्तबान में सचमुच घुसे थे, मुझे यकीन नहीं आयेगा.''

·मगर तभी, सुबह होने को हुई और शहरजाद चुप हो गयी. मछुए और जिन्न की कहानी अधूरी रह गयी.

चौथी रात को शहरजाद ने अपनी कहानी ऐसे आगे बढ़ायी :

''तुझे यकीन दिलाने के लिए, मैं पुनः इस मर्तबान में प्रवेश करके दिखाता हूं.'' यह कहकर जिन्न ने अपना शरीर हिलाया और धुआं बनने लगा. यह गाढ़ा हुआ धुआं धीरे-धीरे मर्तबान में प्रवेश करने लगा और अंत में पूरा का पूरा उसमें समा गया. जैसे ही वह मर्तबान में समाया, वैसे ही मछुए ने फुर्ती से आगे बढ़कर, उसका ढक्कन बंदकर दिया, और उस पर नबी सुलेमान की मुहर लगा दी. फिर उसने जिन्न से कहा, ''अब तू बता, तू कैसे मरना चाहता है? जल्दी जवाब दे, नहीं तो मैं तुझे सागर में उसी स्थान पर फेंक दूंगा, जहां से मैंने तेरा उद्धार किया थ. फिर वहां किनारे पर एक मकान बनाकर रहने लगूंगा और जो भी यहां मछली मारने आयेगा, उससे कहूंगा, कहीं और जाकर मछलियां मारो. यहां एक मर्तबान में एक खतरनाक जिन्न बंद है. अगर तुमने गलती से भी उसे बचाया तो वह तुम्हारी जान लिये बिना नहीं रहेगा.' तुम फिर यहां कयामत के दिन तक वैसे ही पड़े रहोगे, जैसे पिछले 1800 सालों से पड़े थे.'' यह कहकर वह मर्तबान को सागर की ओर ले जाने लगा.

मर्तबान के अंदर से जिन्न चिल्लाया, ''नहीं, नहीं, नहीं, मुझे सागर में मत फेंको.'' मछुए ने कहा, ''हां, हां, हां, मैं जरूर फेंकूंगा. तूने मेरी कोई बात नहीं मानी तो मैं क्यों तेरी बात मानूं?''

जिन्न ने कहा, ''मुझे माफ कर दो. मैं वायदा करता हूं कि आजाद होते ही मैं तुम्हें मालामाल कर दूंगा, तुम्हारी सारी इच्छाएं पूरी कर दूंगा.''

''मुझे तुम पर विश्वास नहीं है. तुम मुझे फिर मार सकते हो. मेरे और तुम्हारे बीच वैसी ही स्थिति उत्पन्न हो गयी है, जों राजा यूनान और रय्यन हकीम के बीच पैदा हो गयी थी.''

''मुझे इन दोनों की कहानी सुनाओ, तब कुछ समझ में आयेगा.'' जिन्न ने कहा.

अगले अंक में

कहानी राजा यूनान के वजीर और रय्यन हकीम की...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपहली यादें

दास्तोयेवस्की

पिछले अंक में आप पढ़ चुके है कि नायक बिना महसूसे ही किस तरह तमाम क्रिया कलापों से गुज़रता रहा...! अब देखिए, किस तरह इस स्वप्नदर्शी नायक की कल्पना पुनः खड़ी होकर एक नयी उड़ान भर रही हैं...?

कमरे का अंधकार बढ़ने लगा है और उसके साथ ही हृदय में अभाव और उदासी की अनुभूति भी. कल्पना के तानों-बानों से बुना हुआ वह संसार, जिसमें अभी तक वह विचार रहा था सहसा धराशायी होने लगता है. उसके नष्ट होने से कोई आवाज नहीं होती, और जब वह सपनीला संसार बिखरकर अस्तित्वहीन हो चुका होता है, तो उसे यह भी याद नहीं रह पाता कि उसका वह सपना क्या और कैसा था... लेकिन अब एक नयी कामना, किसी धुंधले से संवेग को लेकर उसके हृदय की धड़कन बढ़ाकर अपनी चुभन से अनायास उसे उत्तेजित करते हुए, उसकी कल्पना की तितली को शरारत से अपने पंख फैलाने के लिए उत्साहित करती हुई नये-नये दृश्यों से उसके मानस पट पर छाने लगती है... छोटे से इस कमरे में निस्तब्धता का साम्राज्य है. अवसाद और एकांतिकता में कल्पना की दुलार भरी बाहों की ऊष्मा भर गयी है जो अब फासफोरस की तरह जल उठती है.. और दीन-दुनिया से बेखबर मात्रयोना कमरे से सटे हुए बगल के रसोई-घर में काफी बना रही है और बर्तन में रखा हुआ पानी आंच पाकर उबलने लगा है. तभी कल्पना की यह फासफोरस सी लौ धीरे-धीरे रंग-बिरंगे प्रकाश की फुलझड़ियों में परिवर्तित हो जाती है और निरुद्देश्य भाव से हाथ में ली हुई पुस्तक—जिसके केवल एक या दो पृष्ठ ही उसने मुश्किल से पढ़ पाये होंगे, सहसा हमारे स्वप्नदर्शी नायक के हाथ से फिसलकर गिर जाती है... उसकी कल्पना पुनः खड़ी होकर नयी उड़ान भरने के लिए तैयार अपने पंख फड़फड़ाने लगी है और सहसा एक नया, बिल्कुल नया संसार अपनी सारी जगमगाती हुई संभावनाओं सहित उसकी आंखों के सामने कौंध जाता है. एक नया सपना—एक नयी स्वप्नदर्शी संवेदनाओं को छूनेवाला, धीरे-धीरे घुलता हुआ मीठे विष का एक नया घूंट. हमारी इस वास्तविकता की दुनिया की भला इस स्वप्नदर्शी को क्या परवाह. उसके उन्मादित दृष्टिकोण के अनुसार, मैं और तुम और बाकी सब लोग एक घिसटती हुई और सतही जिंदगी जी रहे हैं. नास्तेंका, उसका विचार है कि हम लोग अपने आप से इस कदर ऊब चुके हैं कि हमें अपनी जिंदगी विवशता का एक भार बनकर रह गयी लगती है. और अगर सचमुच देखें तो हम लोग एक दूसरे के प्रति कितने संवेदनशून्य, उदासीन और ईर्ष्यालु दिखाई देते हैं.

स्वप्नदर्शी हमें देखकर करुणासिक्त स्वर में बोल उठता है—बेचारे दयनीय लोग. और अगर वह ऐसा सोचता है तो इसमें आश्चर्य क्या. देखो तो, कल्पना रश्मियों ने कितनी कुशलता, प्रचुरता और मुक्त भावना से वह आकर्षक तस्वीर उसके सामने बनकर रख दी है जिसका सबसे महत्वपूर्ण अंग और केंद्रबिंदु हमारा यह स्वप्नदर्शी खुद है. जरा उसके विभिन्न अनोखे कार्यकलापों को देखो, जरा नैसर्गिक आनंद से अभिभूत उसके स्वप्नों की निरंतर प्रवहमान लहरों को देखो. शायद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम पूछो कि वह इन सपनों में क्या देखता है? अरे, यह भी कोई प्रश्न हुआ भला? क्या-क्या नहीं देखता है वह. कभी वह अपने को एक कवि के रूप में देखता है, जिसे पहले कोई मान्यता नहीं मिलती लेकिन बाद में उसे कीर्ति के शिखर पर बिठाया जाता है. कभी किसी सच्चे मित्र के रूप में प्राणों की बाजी लगाते हुए, कभी मधुऋतु की किसी रतनारी सांझ में गुलमुहरतले—किसी की प्रतीक्षा करते हुए, कभी महान जार इवान की सेवा में कजान पर चढ़ाई के समय अद्भुत प्रदर्शित करते हुए, कभी 'रोबर्ता' जैसे गीतिनाट्य में मर्मस्पर्शी संगीत के बीच ईसामसीह की तरह पुनर्जीवित होते हुए, कभी द्वंद्वयुद्ध में अपने प्रतिद्वंद्वी को यमलोक पहुंचाते हुए, कभी अनिंद्य सौंदर्य की प्रतिमा काउंटेस 'क' के शयनकक्ष के अघनीले प्रकाश में अपनी कविताएं सुनाते हुए, कभी विश्वमोहिनी क्लियोपेट्रा के प्रेमी के स्थान पर, और कभी वह देखता है कि जाड़े की एक सुहावनी रात को अपने छोटे से नीड़ में शिशु-सुलभ स्वभाववाली अपनी भोली प्रियतमा को वह कोई अनूठी कथा सुना रहा है और उसकी वह मुग्धाप्रिय अधखुले होंठ और विस्फारित नेत्रों से उसका संभाषण सुन रही है... जैसे कि मेरी नन्हीं देवकन्या, इस समय तुम मुझे सुन रही हो. नहीं नास्तेंका, वह संवेदनशील लज्जालु एकांत प्रेमी इस जिंदगी की जरा भी परवाह नहीं करता जिसका स्वाद लेने के लिए हम-तुम इस कदर बेचैन हैं. वह सोचता है कि हम लोगों का जीवन निरर्थक और दयनीय है. वह यह नहीं जानता कि एक दिन मंदिर के संध्याकालीन घंटों की करुण ध्वनि उसकी प्रस्थान-बेला की सूचना देगी, और तब पीड़ा, अनुताप और अथाह दुख के उस क्षण में यदि वह अपने सारे स्वप्न वर्ष देकर भी इस निरर्थक और दयनीय जीवन का एक पल और मांगेगा, तो उसे इतनी भी रिआयत न मिलेगी. लेकिन, लेकिन जब तक वह क्रूर निर्दय क्षण नहीं आता, तब तक उसे कोई कामना नहीं है, क्योंकि वह कामनाओं से परे है, क्योंकि उसके पास सब कुछ है. वह परितृप्त है, क्योंकि वह अपने आप में एक सृष्टा है और जब कोई नयी उमंग उसे अनुप्रेरित करती है तो वह अपने लिए नये-नये संसार रच लेता है. और तब हमें ज्ञात होता है कि यह गंधर्व-लोक, कल्पना का संसार इतनी आसानी से और इतनी स्वाभाविकता से सृजित हो सकता है, जैसे वास्तव में वह कल्पना प्रसून है ही नहीं— सच, कई बार मुझे आभास होता है कि यह संसार भ्रम नहीं है, मेरी भावनाओं की उड़ान नहीं छल, कल्पना द्वारा रचा गया एक छल नहीं है वरन वास्तव में वह यथार्थ है, स्थूल और उसका भी अस्तित्व है. लेकिन यह बताओ नास्तेंका कि ऐसे अवसर पर मेरी भावना दर्द में क्यों डूब जाती है? उस समय कौन से चमत्कार और कौन-सी रहस्यमय शक्ति के वशीभूत होकर उस स्वप्नदर्शी के दिल की धड़कन कई गुना बढ़ जाती है और उसकी आंखों में आंसू छलक आते हैं, फिर उसके पीले आंसू भीगे गालों पर गुलाब से दहकने लगते हैं और उसके मन-प्राण एक नैसर्गिक उल्लास से प्रकाशित हो उठते हैं? क्यों उसे ये अनिद्रा की रातें केवल अनंत उल्लास और हर्ष के अनुक्षणों जैसी मालूम होती हैं? और जब उषा की पहली गुलाबी किरण उसकी खिड़की पर दस्तक देती है और भोर का रहस्यमय धुंधला-सा प्रकाश उसके कमरे में बिखर जाता है तो उस समय थका-हारा हमारा स्वप्नदर्शी अपने को बिस्तर पर निढाल फेंककर अपनी रोगी और विश्रृंखल चेतना को इस अनिर्वचनीय सुख के नशे में सराबोर कर और, इस असहनीय मधुर पीड़ा को हृदय में संजोये हुए सो जाता है. हां नास्तेंका, यह भ्रम हमें छलता है और हम हैं कि विवेकहीन होकर यह विश्वास कर बैठते हैं कि इन झूठे सपनों में सचमुच कुछ न कुछ गेय और संजीव और जीवंत है. जरा इस विभ्रम पर तो गौर करो. उदाहरण के लिए, जब कभी उसका हृदय अपनी समस्त नैसर्गिक और दुखद पीड़ा लिये हुए प्यार से भर उठता है, उस समय एक नजर देखने भर से तुम्हें विश्वास हो जायेगा कि इस समय वह किसी के प्यार में खोया हुआ है. नास्तेंका प्रिये, क्या तुम उसे देखकर विश्वास कर सकोगी कि जिससे वह अपने इन मदहोश सपनों में अनहद प्रेम करता है, उस प्रियतमा को यथार्थ में उसने कभी देखा ही नहीं? भला यह कैसे हो सकता है कि केवल अपनी भ्रामक कल्पनाओं में ही उसे देखकर वह इस मधुर-आवेग का सपना देख रहा हो? क्या ऐसा भी हो सकता है कि वास्तव में इन दोनों प्रेमियों ने पूरे जमाने को ठुकराकर, अपने दो संसार जोड़कर एक नयी तकदीर बनाने के प्रयत्न में एक दूसरे की बांह थामे हुए अनेक वर्ष साथ-साथ न गुजारे हों? तब जुदाई की उस रात को गहन काले आकाश के नीचे अंधियारे में गर्जन-तर्जन करते लहराते हुए तूफान से बेखबर उसके सीने पर सिर टिकाये रोती और सिसकियां भरती हुई वह कौन थी? अपनी सुरमीली आंखों की कोर से ढुलकते हुए आंसुओं को एक थपेड़े से उछालकर किसी दूर देश में ले जाती हुई हवा की क्रूरता से अविचलित रहनेवाली वह क्या उसकी प्रेमिका न थी? नहीं, यह सब स्वप्न तो नहीं हो सकता. वह उजाड़ और उपेक्षित, पदचापों की आहट से सूना उपवन, वह उदास और एकाकी उपवन जिस पर वे जाने कितनी बार, हर्षित, उदास, और प्यार करते हुए, देर तक... हां, देर तक एक दूसरे को प्यार करते हुए जाने कितने घंटों तक एक सुकोमल भावना में आकंठ डूबे हुए टहला करते थे? और उसका वह अजीब-सा पैतृक मकान, जिसमें अपने क्रूर, सदा चुप रहनेवाले और क्रोधी पति के साथ उसने जीवन के इतने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वष बिना किसी हलचल के उदासी में डूबे हुए बिताये थे... और कितनी यंत्रणा और विकलता के थे वे दिन जब उस बूढ़े क्रोधी पति की आशंका से सहमे हुए वे इतने लंबे समय तक एक दूसरे से अपना प्यार छुपाये रहे थे? उन्होंने कितनी पीड़ा झेली थी, कितने भयतीत थे वे, कितना पवित्र और अबोध था उनका प्यार, और लोग कितने दुष्ट थे : यह तो हम बिना कहे ही जानते हैं, नास्तेंका, लेकिन ईश्वर को धन्यवाद. परदेश की धरती पर, एक विदेशी आकाश, देवताओं की उस सुंदर नगरी के झुके हुए गरमाते आकाश के नीचे, अपनी मातृभूमि के इस छोर से बहुत दूर, काफी लंबे समय के बाद, प्रकाश से जगमगाते हुए पलाजो में आरकेस्ट्रा की मधुर दिलकश गुंजती हुई स्वर लहरियों के वातावरण में क्या वही उसकी प्रेमिका नहीं मिली थी? क्या लता और गुलाब से ढके हुए उस बारजे पर उसने किसी और को ही देखा था?—वहां जैसे ही उसने उसे देखा, अपना अवगुंठन उठाकर अस्फुट कंठ से बोली, "अब मैं आजाद हूं." और कांपती हुई कपोती की तरह उसकी बाहों से गिर पड़ी. उनकी आंखों में हर्ष के आंसू थे और वे एक दूसरे को जकड़े हुए खड़े रहे, और दूसरे ही क्षण मानापनाम, अनुपात, भय और आशंका से भरे हुए पल उनकी स्मृति से लुप्त हो गये—वे सारी पीड़ाएं और वह दर्द में डूबी हुई विदाई की घड़ी, वह उदास और जर्जर मकान, वह बूढ़ा और क्रूर पति, अपने दूर देश का वह मुस्कान रहित उपवन, और उस उपवन की वह बेंच जहां उन्होंने भावावेश में डूबे हुए विदाई के उत्तप्त चुंबन के साथ एक दूसरे से अपने को अलग किया था. और उसकी बाहों से छूटकर विषाद की पीड़ा से बेसुध वह भागती हुई चली गयी थी. ओह नास्तेंका, तुम मानोगी कि इस अनंत विहारिणी कल्पना के पंखों पर सवार उड़ते समय यदि तुम्हारा अनामंत्रित मित्र अप्रत्याशित और अचानक धड़ाम से दरवाजे खोलकर तुम्हारे सामने आ खड़ा होता और अपने लंबे तगड़े शरीर और मनमौजी स्वभाव को दर्शाता चीखता हुआ, जैसे कुछ भी असाधारण बात न हो, कहता, "अबे पुराने घोंचू, मैं अभी-अभी पाव्लोस्क से लौट रहा हूं"... तुम्हें मानना पड़ेगा कि उस समय तुम सकपका जातीं और तुम्हारे चेहरे से उस स्कूली बालक जैसा आतंक प्रकट होता, जिसने अपने पड़ोसी के बगीचे में घुसकर सेब चुराकर जेब में रखा ही था कि माली ने धर दबाया. हे भगवान् कहां तो वह बूढ़ा काउंट मर चुका था, अनंत सुख का वह क्षण इतने निकट था, और यहां पर सहसा एक साहब फट पड़े जो अभी-अभी पाव्लोस्क से तशरीफ लिये चले आ रहे हैं.

अपनी करुण कथा सुनाकर मैं स्वयं भी अवसाद में डूबकर निःशब्द हो गया.

मुझे याद है कि मैंने कितनी कठिनाई से अपने पर काबू पाकर मुस्कराने की कोशिश की थी. क्योंकि उस समय मेरा कंठ अवरुद्ध हो गया था, मेरी वाणी हिमशीतल हो रही थी, जैसे कोई शरारती बालक मेरे दिल की धड़कन बंद करने की कोशिश कर रहा हो, ऐसा लग रहा था. मेरी आंखें बार-बार भर आती थीं. मुझे आशंका थी कि मेरी दुखद कथा सुनने के बाद कहीं ऐसा न हो कि नास्तेंका अपनी नटखट आंखों को अविश्वास से फैलाकर अपनी बाल-सुलभ हंसी से खिलखिलाती हुई फूट पड़े और फिर रुकने का नाम ही न ले... और तब मुझे पश्चात्ताप हुआ कि मैं अकारण ही अपने हृदय पर पत्थर रखकर भावुकता की रौ में बहकर इतनी दूर चला आया वरना एक रटे-रटाये टुकड़े की तरह मैं उसे अपनी बात सुना सकता था, इसलिए कि, मैं बहुत पहले ही अपने बारे में राय बना चुका था जो मुझे इसको सुना देनी चाहिए थी. यहां पर मैं यह स्वीकार करता हूं कि मुझे इस बात की जरा भी उम्मीद न थी कि नास्तेंका मुझे समझ पायेगी. लेकिन आश्चर्य! वह गुमसुम बैठी रही और कुछ देर बाद मेरे हाथों को अपने फूल जैसे हाथों से दबाकर हौले से बोली, "क्या सचमुच अभी तक ऐसी ही रही है तुम्हारी जिंदगी?"

"ऐसी ही नास्तेंका," मैंने उत्तर दिया, "हमेशा ऐसी ही, और मैं सोचता हूं कि मुझे मृत्यु पर्यंत ऐसा ही जीवन जीना पड़ेगा."

"नहीं-नहीं तुम ऐसे नहीं रह सकते," उसने भावावेश में कहा, "ऐसा नहीं होगा, क्योंकि तब मुझे भी जीवन भर अपनी नानी के बगल में बैठकर दिन काटना होगा. सुनो, क्या तुम नहीं जानते कि इस तरह से जीवन बिताना कोई गर्व की बात नहीं है.

मैं अपनी भावनाओं के ज्वार को संयमित रखने में असमर्थ होकर चीख पड़ा, "जानता हूं नास्तेंका, मैं यह बात जानता हूं. मुझे अब महसूस हो रहा है कि मैंने अपने जीवन के सुनहरे दिन व्यर्थ में गंवा दिये. मुझे अब इस बात का अनुभव होता है और यह आभास मेरी पीड़ा को और भी बढ़ा देता है क्योंकि मेरी दयालु देवदूत, तुम्हें स्वयं ईश्वर ने मुझे यह सब बात याद दिलाने और महसूस कराने के लिए ही मेरे पास भेजा है. तुम्हारे साथ इस समय यहां बैठकर बात करते समय भविष्य के ध्यान से मैं सिहर उठा हूं... क्योंकि मेरे लिए भविष्य में केवल उस चिरस्थायी एकाकीपन के सिवा, इस निरुद्देश्य और जंग लगी हुई जिंदगी के सिवा कुछ नहीं है. और जब वास्तविकता में तुम्हारे साथ यहां इस समय बैठा हुआ इतना सुखी हूं, तब मैं और सपना भी क्या देख सकता हूं. ओह, मेरी नन्हीं-सी परी, मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूं क्योंकि तुमने मेरा तिरस्कार नहीं किया, क्योंकि अब मैं यह तो कहने लायक हूं कि मैंने कम से कम जीवन की दो संध्याएं तो जीकर बितायीं.

— अगले अंक में —

क्या वे इतनी आसानी से जुदा हो सके...?

लघुकथा

कटु सत्य

वर्षों से परिवार से उपेक्षित पं. लक्ष्मी प्रसाद जी आज एकाएक सभी परिवारी जनों में जागे स्नेह को देख कुछ तय नहीं कर पा रहे थे, कोई नया कुरता पायजामा लाया तो कोई शाल और चप्पल.

संकोचवश पंडित जी कुछ भी नहीं कह पा रहे थे कि बड़ी लड़की ने नया बैग देते हुए कहा, "पिताजी तैयार हो जाइये. कल आपको राजधानी जाना है."

"क्यों...?"

"कल आपको 50 हजार का पुरस्कार जो मिलना है."

पंडित जी ने एक निर्विकार हंसी के साथ सोचा—कितना कटु है जीवन!

राजेश शास्त्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत भवन कूट संस्कृति का अखाड़ा है...

डॉ. नामवर सिंह के साथ उदय प्रकाश और सुधीश पचौरी की बातचीत

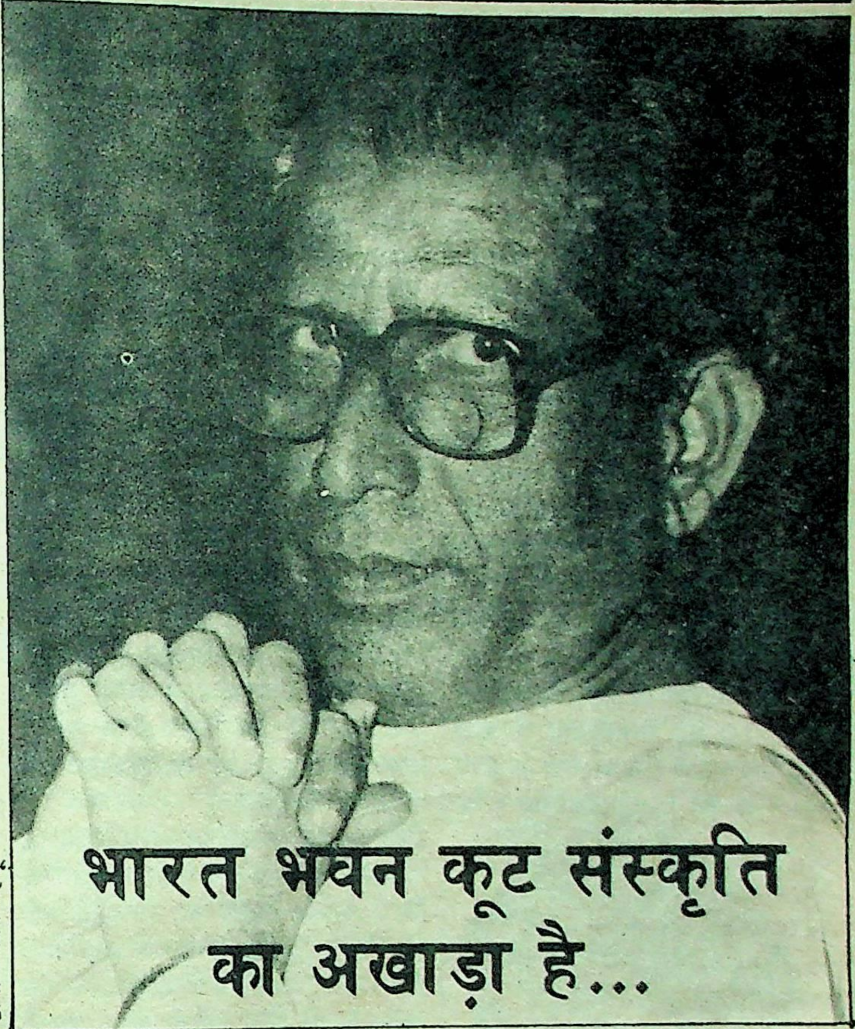

छाया : पवन महेंद्र

□ पिछले कुछ सालों से सरकार संस्कृति और कलाओं की ओर कुछ ज्यादा ही ध्यान दे रही है. अपना उत्सव, विदेशों में भारत महोत्सव, क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्रों का निर्माण— इसके उदाहरण हैं. प्रख्यात समाजशास्त्री पी.सी. जोशी का कहना है कि राजनीतिक स्तर पर आज देश बिखराव और अंतर्विरोधों के दौर से गुजर रहा है और इसे सुलझाने का कोई रास्ता सत्ताधारी वर्ग के पास है नहीं, इसीलिए उसे संस्कृति की शरण लेनी पड़ रही है. वहीं उसे अखंड भारत, विविधताओं के बावजूद एकीकृत भारत की छवि दिखायी देती है. आप क्या सोचते हैं?

यह सही है कि स्वाधीन भारत में पिछले चालीस वर्षों से सरकारी स्तर पर संस्कृति के क्षेत्र में जो काम हुए हैं, उन्हें देखा जाये तो दिलचस्प बातें सामने आयेंगी. पं. जवाहरलाल नेहरू ने तीन केंद्रीय अकादमियां स्थापित करके यह सोचा था कि इनके द्वारा सांस्कृतिक पुनर्निमाण की दिशा में कुछ काम किया जा सकता है. अब उन अकादमियों के लिए जो योजना बनायी गयी और जो काम उन्होंने वास्तव में किया, उन दोनों को एक साथ सामने रखें तो एक स्थिति सामने आयेगी. नेहरू के बाद श्रीमती इंदिरा गांधी के जमाने में भी संस्कृति के क्षेत्र में कुछ काम हुए. अपने अंतिम दिनों में उन्होंने एक 'आर्ट कौंसिल' भी बनायी थी, जो बहुत सक्रिय नहीं हो पायी. श्रीमती गांधी के कुछ सांस्कृतिक सलाहकार भी थे. केंद्र के स्तर पर न सही, राज्यों के स्तर पर— उदाहरण के लिए भोपाल में उन्होंने '**भारत भवन**' का उद्घाटन किया और भोपाल को देश की सांस्कृतिक राजधानी का दर्जा दिया. परोक्षतः यह श्रीमती गांधी के शासनकाल की एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक घटना थी. तीसरा दौर श्री राजीव गांधी के जमाने का है. इस दौर में विभिन्न क्षेत्रों में पांच या छह क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्र स्थापित किये गये. इसी दौर में अमरीका, रूस, जापान, फ्रांस में 'भारत महोत्सव' बड़े पैमाने पर मनाये गये. यह एक नयी घटना थी, जो न पं. नेहरू के जमाने में हुई थी, न श्रीमती गांधी के. इन सारी बातों को जोड़कर इनका तुलनात्मक विश्लेषण करें तो कुछ स्पष्ट चीजें उभर कर हमारे सामने आयेंगी. एक सबसे स्पष्ट बात तो यह है कि इन सबके पीछे सरकार की संस्कृति-नीति का मूल ढांचा लगभग एक जैसा दिखायी देता है. देखने की बात यह है कि यह सारे सरकारी प्रयत्न अपनी सांस्कृतिक विरासत को कितना सुरक्षित रखते हैं, संचार माध्यमों समेत अपने अन्य कार्यक्रमों के द्वारा किस हद तक आम जनता को उसे सुलभ करा पाते हैं और इस सबके पीछे मूल दृष्टि क्या है? मुझे बार-बार लगता है कि इस उपक्रम के पीछे भद्र वर्गीय दृष्टि है— अंग्रेजी में जिसे 'एलिटिस्ट' कहते हैं. स्वाधीन भारत की अपेक्षाओं के बरक्स यह दृष्टि गलत मालूम पड़ती है. स्वाधीनता आंदोलन के दौरान सांस्कृतिक स्तर पर दो दृष्टियां साथ-साथ थीं— एक गांधी की, दूसरी नेहरू की. गांधी की नजर गांव पर थी. गांधी के लिए संस्कृति एक भारतीय साधारण जन की संपूर्ण जीवन पद्धति थी. इसमें नैतिक मूल्यों से लेकर संगीत-नाटक सब कुछ शामिल था और उसे वे साधारण जनता की संपूर्ण जीवन पद्धति के रूप में देखते थे. पं. नेहरू की उदारवादी, मानववादी, और बूर्जुवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि में संस्कृति के संदर्भ में आदर्श रवींद्रनाथ टैगोर थे. आकस्मिक नहीं है कि उन्होंने जो अकादमियां कायम कीं, वे रवींद्र भवन में कायम कीं. नहीं भूलना चाहिए कि सन 1924 में संस्कृति के प्रति दृष्टि को लेकर टैगोर और गांधी में विवाद हो चुका था. नेहरू को शायद गांधी की दृष्टि में संस्कृति दिखायी ही नहीं पड़ती. इसीलिए उन्होंने उस गांधीवादी जनसाधारणवादी संस्कृति नीति का विकास ही नहीं किया. नेहरू की दृष्टि में संस्कृति एक 'एलिटिस्ट' अवधारणा थी और उन्होंने रवींद्रनाथ की परंपरा में ही भद्रवर्गोचित अकादमियों की स्थापना की.

□ समाजवादी रुझानों के बावजूद नेहरूकाल में ही पश्चिमी सभ्यता और टेक्नोलॉजी का प्रभाव सबसे ज्यादा देश पर पड़ा. अब राजीव गांधी के सत्तासीन होने की घटना को बहुत से समाजविद् देश के नव अभिजन वर्ग का सत्तासीन होना मानते हैं. देश का यह वर्ग तो पहले से ही पश्चिमीकृत है. भले ही वह भारतीयता की बात करे. इस वर्ग के एक प्रवक्ता आशीष नंदी ने तो घोषित ही कर दिया है कि भारत एक पश्चिमी समाज बन चुका है. यह चीन और जापान आदि की तरह 'ओरिएंटल सोसायटी' है ही नहीं.

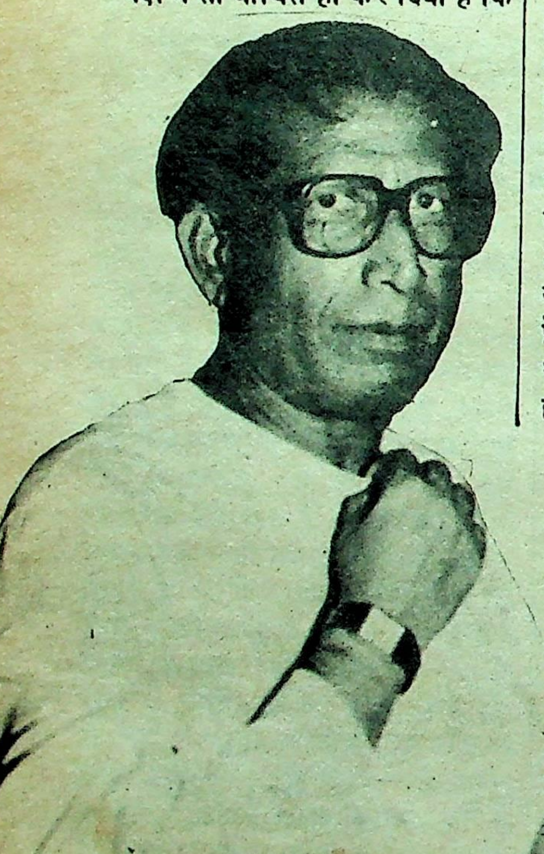

बिल्कुल ठीक कह रहे होंगे यह लोग. आप नेहरू और राजीव गांधी के शासनकाल की सांस्कृतिक दृष्टि की तुलना करें तो एक बुनियादी अंतर दिखायी पड़ेगा. अगर नेहरू की संस्कृति के मूल में **'आक्सफोर्ड'** और **'कैंब्रिज'** था तो इनकी संस्कृति के मूल में **'दून स्कूल'** है. यह आक्सफोर्ड, कैंब्रिज से ज्यादा बुरा इस मायने में है कि यह एक उपनिवेशवादी दृष्टि है. औपनिवेशिक दासता के युग से पब्लिक स्कूलों और कानवेंटों की जो विरासत भारत ने पायी, उसका नतीजा है यह दृष्टि. आक्सफोर्ड, कैंब्रिज की परंपराओं में तो रेडिकल परंपराएं भी थीं. लेकिन वह परंपरा तो दून स्कूलों वालों में आयी नहीं. पश्चिम के अभिजन वर्ग की नकल करने में यह 'दून स्कूलवादी' वर्ग और भी घटिया और नकलची साबित हुआ. पं. नेहरू की शिक्षा-दीक्षा भले ही आक्सफोर्ड में हुई हो, लेकिन स्वाधीनता आंदोलन के दौरान वे भारतीय जनता के निकट आये. उसके प्रति उनके मन में सच्चा लगाव और प्रेम पैदा हुआ. इसलिए सिर्फ अंग्रेजी शिक्षा को ही दोषी नहीं ठहराया जा सकता. उन्नीसवीं शताब्दी के पुनर्जागरण में तो अंग्रेजी पढ़े-लिखे समाज सुधारकों की भूमिका थी ही. **बंकिमचंद्र** भी अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों में से थे. बीसवीं सदी में पढ़े-लिखे लोगों में से एक **मुंशी प्रेमचंद** भी थे. **निराला** भी अंग्रेजी जानते थे. इसीलिए सिर्फ अंग्रेजी शिक्षा के कारण ही कोई अपनी जड़ों से नहीं कट जाता.

लेकिन यह जो 'दून स्कूल दृष्टि' पनपी है, इसकी जड़ें न तो अपनी संस्कृति में हैं, न परंपरा में हैं, न जनता में हैं, न चिंतन में हैं, यही नहीं, बल्कि पश्चिम का भी जो सबसे सतही और सबसे उच्छिष्ट कचरा है, यह उसकी भी तीसरे दर्जे की भद्दी नकल है. यह जड़-मूल से उखड़े-कटे लोगों की सांस्कृतिक समझ का दौर है. वे समझते हैं, संस्कृति का मतलब है— टेक्नोलॉजी या उपभोक्तावाद. ऐसे व्यक्तियों से किसी नयी सांस्कृतिक नीति की तो उम्मीद की ही नहीं जा सकती. आप देखिए, जो क्षेत्रीय सांस्कृतिक केंद्र इस बीच बने हैं, वे सरकारी नौकरशाहों के हाथ में हैं, वे दूसरे सरकारी दफ्तरों की तरह इन केंद्रों को भी चला रहे हैं. और ये सारे केंद्र सरकार के 'सूचना प्रकाशन विभाग' या 'सांग एंड ड्रामा डिवीजन' की तरह काम कर रहे हैं. इसी बीच तथाकथित महोत्सव संस्कृति का भी विकास हुआ है. जिस निर्यात तंत्र के तहत देश का माल विदेशों को निर्यात किया जाता है, संस्कृति भी उसी तंत्र के तहत निर्यात हो रही है. हमारी संस्कृति और हमारी प्राचीन कलाओं को मेलों और प्रदर्शनियों की चीज बनाकर पेश किया जा रहा है. खुद सोचिए कि बीसवीं शताब्दी के इन ढलते वर्षों में, आजादी के इकतालीस सालों के बाद, भला भारत को यह बताने की क्या जरूरत है कि हम एक सुसंस्कृत और कला संपन्न देश हैं. मैं उत्सवों का विरोधी नहीं हूं. उत्सव तो पारंपरिक भारतीय जीवन के अभिन्न अंग रहे हैं. तीज-त्यौहार और उत्सव तो वर्ष भर हमारे यहां चलते हैं. होली, दशहरा, जन्माष्टमी, ईद, मुहर्रम यहां के विविध धर्मों के सामुदायिक जीवन के अंग हैं. हमारे सामुदायिक जीवन में चलने वाले उत्सवों के पीछे हमारे लोक जीवन और साधारण जनता की जो आत्मा और दृष्टि है, उसे सांस्कृतिक स्तर पर ऊपर उठाना एक बात है और उसे मेले या प्रदर्शनी में माल की तरह प्रदर्शित करना बिल्कुल दूसरी बात है. यह संस्कृति के क्षेत्र में नव उपभोक्तावादी रुझान का उदाहरण है.

□ यह माना जाता है कि कला और संस्कृति हमारे सामुदायिक जीवन का एक अभिन्न अंग रही हैं और उनमें उत्पादक और उपभोक्ता या कलाकार और दर्शक जैसा विभाजन नहीं रहा है. हर व्यक्ति उस संस्कृति का हिस्सेदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा है. क्या आपको नहीं लगता कि अब ऐसे लोक कलाकारों को एक पेशेवर वर्ग के रूप में बदलकर उन्हें अलग से दूरदर्शन और उत्सवों में प्रस्तुत करके शेष समुदाय को अपनी ही संस्कृति के दर्शक के रूप में विभाजित किया जा रहा है?

ऐसा है कि संस्कृति और कला के क्षेत्र में 'प्रोफेशनलाइजेशन' तो होगा ही. यह अनिवार्य है क्योंकि जब उत्पादन की पद्धति में श्रम विभाजन है तो संस्कृति के क्षेत्र में यह 'पेशेवरीकरण' तो होगा ही. स्वयं लोककलाओं में भी 'प्रोफेशनलाइजेशन' है, लेकिन वह अपने सामुदायिक जीवन से पूरी तरह जुड़ा हुआ है. लोक कलाकार 'प्रोफेशनल' होते हैं. कुछ कलाएं तो कुछ जातियों के पेशे में ही सीमित रह जाती है. वह पुश्तैनी धंधा बन जाती है. लेकिन वे इसका निकास भी करते रहते हैं. किसी हुनर की तरह. वह हुनर उस पूरे लोक समाज का एक हिस्सा हुआ करता था. लेकिन अब तो उस हुनर को उसकी जमीन और उसके परिवेश से उखाड़कर उसे एक उपभोक्ता माल की तरह प्रस्तुत किया जा रहा है. यानी सवाल 'अप्रोच' का है. सरकारी स्तर पर जो तमाम संस्थान बने, उनकी भूमिका इस संस्कृति और इन कलाओं के विकास में अब तक क्या रही? उनकी दिशा क्या रही? क्या उन्होंने कोई 'अवांगार्द' भूमिका निभायी? जांच इसकी की जानी चाहिए, मोटे तौर पर पिछले कुछ दशकों में इन्होंने चित्रकला, नृत्य, संगीत और साहित्य की विविध विधाओं– जैसे कविता, कहानी, उपन्यास में किन प्रवृत्तियों और कलाकारों की पहचान की है और उनके विकास के लिए क्या कदम उठाये हैं? देखें तो घोर निराशा होती है. मैं तो यह तक कहूंगा कि इन कलाओं में बहुत से नये प्रयास तो इन संस्थाओं के विरुद्ध संघर्ष करके उभरे हैं, उनसे सहयोग पाकर नहीं. इन कलाओं में जो कुछ भी सर्वश्रेष्ठ है, वह इन संस्थाओं के बावजूद है, उनकी वजह से नहीं.

□ अभी एक नाटककार से बात हो रही थी. उनका कहना था कि पिछले कुछ सालों से संस्कृति के प्रति जो सरकारी नीति अपनायी गयी है, उसके चलते अब स्थिति यह पैदा हो गयी है कि देश के जो समकालीन आधुनिक कला रूप हैं, उनको बचाने और उनके संरक्षण की ज्यादा जरूरत पैदा हो गयी है. दिल्ली के मंडी हाउस में या दूरदर्शन और महोत्सवों में तो यक्षगान, भरतनाट्यम, कथकलि या करमा, भांगड़ा और रामलीला को बार-बार सरकारी समर्थन और सहयोग दिया जा रहा है. यानी एक तरफ क्लासिक कला रूपों को सहायता दूसरी तरफ 'फोक' को समर्थन, लेकिन जो समकालीन आधुनिक लेखक-कलाकार हैं उनको तो कोई नहीं पूछता... आज समकालीन हिंदी रंगमंच की क्या हालत है, पंडवानी और यक्षगान के सामने?

बिल्कुल सही कहना है उस नाटककार का. आज तो नवधनाढ्य भद्रवर्ग सरकार और उसकी संस्कृति का मुख्य नियंता है, जरा उसकी ओर गौर से देखिए. उनकी रुचि और अभिरुचि, उसकी जीवन पद्धति की ओर ध्यान दें. आधुनिक टेक्नालॉजी के विलासिता के उपकरणों से उनका और उनके परिवार का जीवन लदा-फंदा है. लेकिन वे अपने आपको भारतीय संस्कृति से संपन्न व्यक्ति दिखाने के लिए हजार-दो हजार रुपयों का टिकट खरीदकर पंडित भीमसेन जोशी का गाना सुनने जरूर पहुंच जायेंगे. समझ में आये या न आये. दूसरी ओर कोई 'लोकनृत्य' हो रहा हो, तो वहां भी वे पहुंच जायेंगे. आप दिल्ली के सबसे आधुनिक बाजार कनाट प्लेस के जनपथ में देखिए. वहां तिब्बतियों की भी दूकानें हैं. अब इस नवधनाढ्य वर्ग की लड़कियों को देखिए. एक तरफ पेरिस का सबसे नया और ताजा विदेशी 'परफ्यूम' और दूसरी तरफ तिब्बती कंगन. इसके बाद फिर भीमसेन जोशी या कुमार गंधर्व का गायन. इस सबके पीछे कौन-सी दृष्टि है? जाहिर है इस दृष्टि के सामने जो समकालीन कला है, वह तो 'सबवर्सिव' है. क्योंकि उसमें आज के समाज का यथार्थ है. चाहे वह कविता हो, कहानी हो या चित्रकला हो. अभी मैंने **विवान सुंदरम** के चित्र देखे. अगर ये नवधनाढ्य भद्र वर्ग के लोग विवान के चित्रों में से उभरते आज के पंजाब के यथार्थ को देखेंगे, तो उनकी तो सारी अभिरुचि ही नष्ट हो जायेगी. वे लोग तो 'क्लासिक' और 'फोक' के बीच रमने वाले फैशनपरस्त लोग हैं.

स्थिति यह है कि संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में जो कुछ कभी नया हुआ है वह सरकार और संस्थाओं द्वारा नहीं, सर्जकों

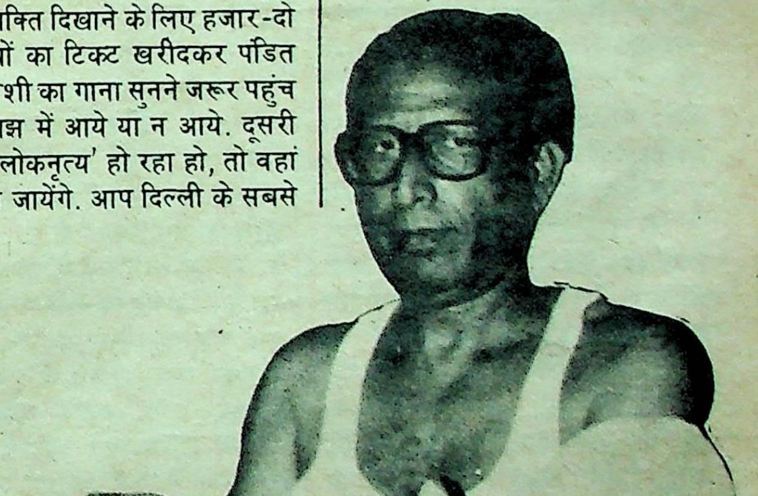

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा हुआ है. इसका एक महान उदाहरण है शेक्सपियर. उसने अपने नाटकों में क्लासिकी विरासत और नितांत लोकतत्व को मिलाकर एक नयी रचना प्रस्तुत की. ऐसा ही तुलसीदास ने किया. रामचरित मानस में संस्कृति की क्लासिकी विरासत और अवध की ठेठ लोक परंपरा को ऐसे रूप में उन्होंने ढाला कि एक महान कलाकृति की रचना संभव हुई. आधुनिक काल में कविता के क्षेत्र में यही काम निराला ने किया. सर्जक और सरकार, व्यापारी या फैशनपरस्त वर्ग की दृष्टि में यही अंतर है.

□ अब सरकारी संस्थाओं और सांस्कृतिक केंद्रों की बात हो रही है तो श्रीमती गांधी की सांस्कृतिक राजधानी भोपाल के भारत भवन की भी बात कर लें. भारत भवन में पिछले कुछ वर्षों से कला और साहित्य का प्रस्तुतीकरण ही नहीं, उनकी एक खास तरह की व्याख्या की भी चेष्टा हो रही है. एक भद्रवर्गीय सरकारी सौंदर्यशास्त्र वहां रचा जा रहा है. पिछले दिनों अशोक वाजपेयी के संपादन में निकलने वाली पत्रिका 'पूर्वग्रह' और उसकी अनुषंग पुस्तिका के जरिये ऐसी कविता और ऐसे साहित्य को स्थापित करने की कोशिश हो रही है जिसमें समाज और इस देश के जीवन के यथार्थ से ज्यादा निषेध हो. बल्कि भारत भवन से प्रकाशित एक किताब में तो कविता को अर्थ और यथार्थ से काटकर उसे एक ध्वन्यात्मक 'वरबल आर्ट' में बदलने की खासी कसरत की गयी है. क्या आपको नहीं लगता कि साहित्य को भी नृत्य और सितारवादन की तरह किसी 'प्रदर्शनकारी कला' में तब्दील करने के पीछे वही नवधनाढ्यवर्गीय भद्र दृष्टि है, जो सुंदरम के चित्रों में पंजाब को देखकर बिगड़ उठती है?

मैंने अभी जिस सरकारी सांस्कृति ढर्रे और ढांचे का जिक्र किया, भारत भवन उसी का एक अंग है. अपेक्षाकृत अधिक चतुराई से किया जानेवाला वैसा ही सांस्कृतिक प्रयत्न है. आपको स्मरण होगा, बहुत पहले स्वर्गीय **मलयज** ने आचार्य शुक्ल पर लिखे अपने लेख **'मिथ में बदलता आदमी'** में इस तरफ इशारा किया था. मलयज ने कहा था कि यह एक 'भोगवादी' या 'उपभोगवादी' दृष्टि है. **भारत भवन दिखाना** तो यह चाहता है जैसे वह कोई 'अवांगार्द' की भूमिका निभा रहा है, लेकिन सच्चाई यह है कि उसके पीछे भोगवादी, 'हेडोनिस्ट' के अर्थ में, दृष्टि काम कर रही है. इस दृष्टि की आलोचना बहुत पहले मलयज ने की थी. कुछ लोग बहुत दिनों तक इस रुझान को 'रूपवादी' या 'कलावादी' कहते-समझते रहे. लेकिन मुझे लगता है कि इसे रूपवादी या कलावादी कहना, इसे ज्यादा गौरवान्वित करना हो जायेगा. यह तो वह भी नहीं है. 'रूपवाद' और 'फार्मलिज्म' भी बहुत उच्च स्तर का होता है. हिंदी की प्रयोगवादी कविता में उसका एक रूप दिखायी देता है. लेकिन यह तो वह भी नहीं है. अगर कोई यह समझ रहा हो कि 'पूर्वग्रह' या 'भारत भवन' कविता और कला का कोई शास्त्र रच रहे हैं, तो यह भी मुगालता ही है. जरा इस 'शास्त्र' की अंतर्वस्तु की ओर देखें. जिस तरह धर्म के भीतर कई अंधविश्वास भी शामिल रहते हैं, उसी तरह कला या कविता की व्याख्या के लिए 'पूर्वग्रह' कुछ अमूर्त अंधविश्वासों, नये तरह के रहस्यवादों को जोड़ रहा है. और इसका सबसे बड़ा प्रमाण है 'पूर्वग्रह' की भाषा. 'पूर्वग्रह' के अंकों में आपको एक ऐसी 'कूट भाषा' दिखायी देगी, जिसकी जड़ें ही हिंदी में नहीं हैं. नकली किसिम के साधू-तांत्रिक एक ऐसी कूट भाषा बोलते हैं, जिसकी सार्थकता ही इस बात पर निर्भर रहती है कि वह किसी की समझ में न आये. एक अद्भुत किस्म का छद्म रहस्यवाद आपको वहां कविता की व्याख्या में भी दिखायी देगा. महर्षि रमण का जिक्र आपको समकालीन कविता की चर्चा के सिलसिले में मिल जायेगा. गांधी की भी वे बात करेंगे तो गांधीवाद का जो क्रांतिकारी चरित्र है, जो उनकी हरिजनों के प्रति, गरीबों के प्रति, दीनों के प्रति और साम्राज्यवादी औपनिवेशिकता के प्रति दृष्टि है, वह उन्हें नहीं दिखायी देगी. हद तो यह है कि संस्कृत जैसी गंभीर और महान भाषा को बोलने-समझने के लिए जिनके पास न्यूनतम तमीज नहीं है, वे संस्कृत में शास्त्र रचते दिखायी पड़ेंगे. वेद, उपनिषद न जाने क्या-क्या गलत-गलत उद्धृत करते हुए वे तमाम 'आब्स्क्योर' चीजें पेश करते दिखायी पड़ेंगे. यानी एक 'कूट कला' और 'कूट संस्कृति' के निर्माण की कोशिश हो रही है. कुमार गंधर्व, नागार्जुन जैसी विभूतियों को पुरस्कार और सम्मान देकर वे यह दिखाने की कोशिश कर रहे हैं कि इस देश में जो कुछ भी महिमामय है, हम उसका सम्मान करते हैं. लेकिन ये हाथी के दिखाने के दांत हैं. इन सारे प्रयत्नों के पीछे जो असली 'खानेवाले दांत' हैं, हमारा ध्यान उनकी ओर जाना चाहिए.

□ अभी नागार्जुन को 'मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार' देना भी क्या इसी उपक्रम की एक कड़ी है?

बिल्कुल, नागार्जुन को पुरस्कार इन्होंने बाध्य होकर दिया. एक दिन आप देखेंगे कि पुरस्कार देने के लिए भी इनके पास कोई नहीं बचेगा. शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन जैसी विभूतियों की उपेक्षा तो नहीं की जा सकती. इसलिए ऐसे लोगों का सम्मान करके वे अपने असली चरित्र को ढकना चाहते हैं. मेरा कहना है कि इस सांस्कृतिक भोगवाद के पीछे के तानाशाह को पहचानना चाहिए. **वाल्टर बेंजामिन** ने कहा था कि जर्मन नात्शीवाद के पीछे जो सबसे खतरनाक पक्ष था वह था— राजनीति का सौंदर्यीकरण— 'एस्थिटिसाइजेशन आफ पॉलिटिक्स'. ये लोग सौंदर्य-सौंदर्य, कला-कला पर इतना बल देकर मनुष्य विरोधी राजनीति का सौंदर्यीकरण कर रहे हैं. लेकिन धीरे-धीरे इनके समारोहों, उत्सवों और आयोजनों में इस संस्थान का असली चेहरा उद्घाटित होता जा रहा है. मैं तो खैर एक मामूली आदमी हूं. लेकिन उनके असली चेहरे को जब मैंने देखा तो मैंने घोषित रूप से अपने संबंध विच्छेद कर लिये.

अगले अंक में

"अगर मैंने कहा था कि अशोक वाजपेयी रेमंड विलियम्स की परंपरा के आलोचक हैं तो वह गलत था..." अगली किस्त में फोर्ड फाउंडेशन, सी.आई.ए. और सांप्रदायिक पुनरुत्थानवाद के साथ भारत भवन के रिश्तों पर विचारोत्तेजक बातचीत. "एशियाई कविता और विश्व कविता का आयोजन एक नये तरह का सांस्कृतिक आतंकवाद है."

—बातचीत की ऐसी कड़ी, जिसे आप जरूर पढ़ना चाहेंगे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभव की आंच से खौलता सृजन

चित्रामुद्गल के इस कहानी-संग्रह पर नजर डालने से यह विचार जरूरी तौर पर महसूस होता है कि इसी बीच उनके रचना-कर्म में अनुभव को संश्लिष्टता में रचने और संवारने का हुनर पैदा हुआ है. अनुभव-अनुभूति का सृजनात्मक नुकीलापन बहुत ही मामूली इंसानों की जिंदगी के नरक को न केवल व्यक्त भर करता है– बल्कि स्थिति-परिस्थिति से उत्पन्न एक ऐसे तनाव और द्वंद्व को निष्पन्न करता है कि पाठकीय-संवेदना में गंभीर हलचल हो और वह सोचने की विवशता के दौर से गुजर उठे. अधिकांश कहानियों में उनकी रचनात्मक संवेदना मामूली आदमी के आर्थिक-सामाजिक वेदन-तंत्र के इर्द-गिर्द किसी न किसी रूप में जुड़ी मन:स्थितियों और उनके घात-प्रतिघात की बारीकियों से टकराती हैं. इस टकराहट का नतीजा यह होता है कि ये कहानियां मानव के शोषण से न्याय की स्थिति को बेचैनी से उजागर करती हैं. संग्रह की प्रथम कहानी 'भूख' यातना, अवमानवीकरण और शोषणजन्य हत्या की एक ऐसी चीख है– जो हमें भीतर तक हिला देती है. भूख से मरता हुआ बच्चा उस व्यवस्था के कलंक का प्रतीक बनकर आंखों को नम कर देता है.

'फातिमाबाई कोठे पर ही नहीं रहती' जैसी कहानी की जमीन पर मानवीय यथार्थ के बीच अनुभव की एक ऐसी खोज का बिंदु है जहां आलोचनात्मक आत्म-चेतना पछाड़ खाकर रो पड़ती है. यहां न मानव के आदर्शीकरण की गुंजाइश है न उसे लांघ कर जीवन का भीतरी सच झेलने का साहस. पूरा समाज जैसे जुल्मों की संडास में बदबू फेंकने लगता है. जहां आदमी की सारी विपन्नता, सारी देहगाथा, सारी हाय-हाय, सारी धोखाधड़ी साफ-साफ नजर आती है. कहानी का कथ्य और रूपबंध विश्वसनीय भाषा की चतुर बनावट से जीवंत हो उठा है. भीतर तक टूटी फातिमाबाई समाज की अदालत में एक बयान फेंकना चाहती है, "बाकी सब तो खैरियत है, पन में बोलती कि सरकार हमारी इमारत भी दुरुस्त कराये. पानी हफ्ते-हफ्ते ऊपर नहीं चढ़ता... संडास भर रहे हैं. टूटे पाइप से अक्खा दिन मैला रिसता रहता है. बदबू के मारे-गिराक ऊपर नहीं चढ़ता... धंधे का खोटी कैस सहन करें... आप ही बोलो?" (पृ. 31) इस तरह के कथन या इस अन्दाज के अनेक बयान हमारी सुअर-संस्कृति का आईना बन जाते हैं– जिनसे हमें अपना चेहरा बदसूरत लगता है. किसी व्यभिचारी के बन गए बिस्तर की मानसिकता का कारण-कार्य संबंध भीतर के दरवाजे जोर से खोल देता है. चित्रा मुद्गल का नारी-मन वैयक्तिक से निर्वैयक्तिक भावभूमि पर आकर समाज के 'कीचड़' को दिखाने लगता है. जयशंकर प्रसाद जी से शब्द लेकर कहें तो नारी की कथा नारी ही समझ सकती है, समझा सकती है. कहानी को निहायत मामूली ढंग से कहते-कहते चित्रा-मुद्गल यथार्थ-प्रतीकों के जंगल में उतार देती हैं और कहानी हमारे भीतर सामाजिक अपमान यातना विद्रूपता ओर विडंबना को लेकर गुर्राने लगती है. संवाद करने लगती है. यहां आर्थिक विषमताओं के वृक्ष हृदय को झटका देने लगते हैं.

संग्रह की नौ कहानियों से गुजरने के बाद यह तथ्य कुरेदने लगता है कि सामाजिक-आर्थिक विद्रूपताओं के ये बिंब इतिवृत्त में क्यों जकड़ दिए गए हैं. विवरण, वर्णन, इतिवृत्त, टिप्पणी, स्मृति-प्रसंग आदि अपनी संरचनात्मक अन्विति में भावुकतावाद का शिकार क्यों हो गए हैं. बेशक, यहां इतिवृत्त के रोमैंटिक अवयव शेष नहीं हैं पर मन:स्थितियों के उपद्रव अनगढ़ता पैदा करते हैं. भाषा में पात्र की बोली पर अनुकरण होने के कारण अनगढ़पन जरूर है पर चालू आधुनिकता के मुकाबले वह ताजी और सच्ची लगती है. बल्कि इन कहानियों की भाषा में एक धारदार 'आयरनी' का इस्तेमाल है जो इधर की कहानियों में बहुत कम देखने को मिलता है. इन में सपाटबयानी के साथ स्थिति की नाटकीयता काफी प्रभावी ढंग से उपजती है. एक उदाहरण 'इस हमाम में' कहानी का देखिए– "एक शख्स के इतने हिस्से कैसे कर दिए जाते हैं? –बेटी, बहू, पत्नी, मां नारी... पैदा होते ही उसे समझाना शुरू कर दिया जाता है कि उम्र के हर टुकड़े को दूसरों की सुविधाओं के अनुकूल अत्मसात कर जीने में ही उसका जीना है– एक निर्धारित स्वीकार... क्यों... आखिर क्यों?" (पृ. 94) पूरी कहानी में परिवेश पुकारने लगता है या फिर परिवेश ही कहानी में ढल जाता है. जब होता यह है कि कहानी अपनी अर्थापत्ति में सार्थक व्यंजनाओं से बजने लगती है. साधारण-सी कहानी असाधारण स्थितियों में पाठक को धकियाकर ले जाती है– "परंतु मैं हंस न सकी. शून्य दृष्टि में उसके कचरे के झाबे को घूरती भर रही." (पृ. 95) हमें भी अंजा की बात पर गंभीर होना पड़ता है.

'होना संपादक की पत्नी-एक लेखिका का', 'लेन' जैसी कहानियों में अन्तर्योजना की कमी है. फिर भी ये कहानियां कमजोर होते आत्मविश्वास को ललकार कर जगाती हैं और प्रश्नाकुलता से रौंदकर ही आगे बढ़ती हैं. कारण "उसके घर एक वक्त से दूसरे वक्त अंगीठी नहीं सुलगती. वह भला लेन लेने का मंसूबा बांधे भी तो किस बिनाह पर." (164) दरअसल इन कहानियों में समस्या की सीटी बजती रहती है. भीतर का ताप अपनी ताकत से थर्राहट भरता रहता है. कहना न होगा कि ये रुपवाद-कलावाद के सांचे में ढली कहानियां नहीं हैं. आर्थिक संघर्षों की मार से बेहोश जिंदगी की भरोसे से भरी आकृतियां, स्थितियां और गतिविधियां इन कहानियों की वैचारिक मुद्राएं हैं. सामाजिकता के गहरे सरोकारों से इन कहानियों का कथ्य फूटकर निकला है. आदमी के, समाज के दर्द से साक्षात्कार करानेवाली इन कहानियों से हिंदी कहानी समृद्ध हुई है और नए सर्जन की संभावनापूर्ण जमीन का संकेत भी इनमें मौजूद है. □

डा. कृष्णदत्त पालीवाल

इस हमाम में' : चित्रा मुद्गल, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 6 मूल्य-पैंतीस रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोटी कहानियां की बड़ी बात

रमेश उपाध्याय अपनी लंबी कहानियां के लिए चर्चित (या बदनाम) रहे हैं. तीन चार साल पहले 'सारिका' में ही उनकी कुछ छोटी कहानियां प्रकाशित हुई. सभी कहानियों की शुरुआत **'किसी देश के किसी शहर में...'** से होती थी. ये कहानियां आकार के अलावा भी रमेश उपाध्याय के शेष लेखन से भिन्न तर्ज की थीं. इनका फार्म भी फंतासी कहानी का था. फंतासी चूंकि मेरा भी क्षेत्र रहा है तो इन कहानियों ने मेरा ध्यान आकर्षित किया. अब इन सब कहानियों का संग्रह **'किसी देश के किसी शहर में'** नाम से प्रकाशित हो चुका है, इसलिए इन कहानियों पर बात की जा सकती है.

आम धारणा रही है (हालांकि मैं इस धारणा से कतई सहमत नहीं हूं) कि फंतासी शैली में जनवादी कहानियां नहीं लिखी जा सकतीं. रमेश उपाध्याय ने इसे तोड़ा है. इन कहानियों को ध्यान से पढ़ने पर हमारे सामने यह स्पष्ट हो जाता है कि इस फंतासी का यथार्थ के साथ किसी प्रकार का विरोध नहीं है बल्कि वास्तव में फंतासी यथार्थ का ही विस्तार है. इसके माध्यम से हम अपनी बात ज्यादा सुविधा से कह सकते हैं और जिस तरह जहां हमें चोट करनी हो वहां और अधिक ताकत से चोट कर सकते हैं. ये सारी कहानियां राजनीति के भ्रष्टाचार (**बोझ, समय**) दफ्तरशाही के पैंतरों, (**रोशनी, आग**), पूंजीवाद के शिकंजे (**हवा, मिट्टी**) आदि की ही कहानियां हैं.

यथार्थवादी और फंतासी के फार्म के तुलनात्मक अध्ययन के रूप में उन्होंने एक ही पात्र को लेकर दो कहानियां लिखी हैं—**नशा** और **प्यास**. रमेश फंतासी शब्द का प्रयोग करने से गुरेज करते रहे हैं इसकी जगह उन्होंने शब्द दिया है 'यथार्थवादी रचना प्रक्रिया'. इन दोनों कहानियों के बारे में वे कहते हैं— **''नशा में कहानी का वह प्रचलित 'यथार्थवादी रूप' अपनाया गया है, जिसमें कहानी के 'सच', 'सहज' 'विश्वसनीय' तथा 'प्रामाणिक' दिखाई देने पर जेर दिया जाता है, जबकि 'प्यास— में वह यथार्थवादी रचना प्रक्रिया अपनायी गयी है, जिससे कहानी में समाज की एक तस्वीर पेश करने के साथ-साथ समाज के मूल ढांचे को दिखाना भी संभव होता है.''** इनमें नशा जहां केवल एक ऐसे नलसाज की कहानी बनकर रह जाती है जो अपना स्वतंत्र धंधा छोड़कर एक दफ्तर बन जाता है और करता अब भी वही काम है (अफसरों और उनके दोस्तों के घरों में नलों की मरम्मत) पर अब उसे यह काम बेगारी में करना पड़ता है, पहले जहां वह घर का खर्च और अपने शाम के नशे के लिए ठीक ठाक कमा लेता था अब उतनी ही मेहनत के बावजूद उसकी तनख्वाह आठ-दस दिन चल पाती है और नशे के लिए उसे अपनी पत्नी से पैसे मांगने पड़ते थे, यानि यह एक व्यक्ति विशेष की कहानी बनकर रह जाती है. अफसरशाही के शोषण की ओर केवल हल्का-सा संकेत ही इसमें है. इसके विपरीत **प्यास** कहानी में उस नलसाज का एक सेठ नौकरी देता है ओर कहता है कि सारे शहर के नलों के जाल का नक्शा बनाकर उसे दे. इन नक्शों का उपयोग करके सेठ शहर के पूरे पानी को अपनी निजी गुप्त टंकियों में भर देता है और नलों से पानी की जगह आवाज आने लगती है.

अंग्रेजी में एक कहावत है जिसे हिंदी में कहा जा सकता है— 'अध्यापक हमेशा अध्यापक ही रहता है' रमेश उपाध्याय के साथ भी यह समस्या है. कारण चाहे जो भी रहे हों पर 83 पृष्ठों की कहानियों के साथ इस पुस्तक में 48 पृष्ठों की भारी-भरकम भूमिका है. इसके बिना काम चल सकता था क्योंकि जो बातें वे इस भूमिका में कहते हैं वे ये कहानियां ज्यादा बेहतर ढंग से कहती हैं.

सुरेश उनियाल

□ किसी देश के किसी शहर में (कहानी संग्रह) : रमेश उपाध्याय, प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, 21 ए दरियागंज, नयी दिल्ली-2 मूल्य : 30 रुपये

आधुनिक होने की विडंबना

अर्धपूंजीवादी-अर्धसामंती आर्थिक संरचना द्वारा परंपरागत जीवन और मूल्यविधान पर पड़ने वाले दबावों को झेलना और नये जीवन-संदर्भों में उन्हें अर्थ देना आधुनिकता का तकाजा है. भारत में पूंजीवादी विकास के बाधित होने से भारतीय समाज और भारतीय मानस में एक नयी तथा अभूतपूर्व जटिलता का समावेश हुआ है, जिसे समझने और व्याख्यायित करने की लगातार, कोशिशें की जा रही हैं. बटरोही की कहानियों में भी इसकी एक शिद्दत से की गयी (पर नाकाम) कोशिश हमें दिखाई देती है. पर यह नाकाम कोशिश ही उनकी रचनात्मक ऊर्जा का स्रोत है. (वैसे भी कामयाबी या नाकामयाबी से ज्यादा महत्वपूर्ण होती है—लगातार कोशिश) सामंती संस्कारों से मुक्त हुए बिना पूंजीवादी सामाजिक-आर्थिक-मानवी संबंधों को समझ पाना संभव भी नहीं है. अतएव ऊपरी या फौरी या कलात्मक तौर पर आधुनिकता का लहजा अपनाने से चिंतन और रचना का द्वैत उभर कर सामने आता है और चिंतन की धुंध के भीतर से रचना को देखने की मजबूरी यथार्थ को उसकी पूरी जटिलता और समूचे आयामों में उभरने नहीं देती हालांकि कई स्तरों पर टटोलते रहने की एक व्यग्रता का साफ पता भी चलता है. बटरोही के इस दूसरे कहानी-संग्रह की अधिकांश कहानियां इस प्रवृत्ति का शिकार हैं. इस तरह की रचनाओं का असर बहुत गहरा और सुदुरप्रसारी नहीं होता इकहरा और सामयिक होता है. ''हस्तांतरण'', 'नेक आदमी', 'प्रेत' 'किम्पुरुष', 'प्रतीपगामी', 'कटखने' 'काना लैम्पपोस्ट, 'सूराख' और 'कनकटा चश्मा' इसी तरह की कहानियां हैं. 'सड़क का भूगोल' और 'मन नाहीं दस बीस' ऐसी कहानियां हैं, जिनमें भिन्न-भिन्न शिल्प और वाचनशैली का प्रयोग करके कथाकार कलात्मक संतुलन पाने की तरफ कदम आगे बढ़ाता है और 'सड़क का भूगोल' में काफी हद तक कामयाब भी होता है. 'मन नाहीं दस-बीस' में यह संतुलन अपेक्षाकृत असहज तथा अतिरिक्त आयासों पर टिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ और यह अतिरिक्त आयास पाठ के रचना के बीच एक पैबंद की तरह लगता है. (इस कहानी में 'निवेदन' शीर्षक से कहानीकार द्वारा शीर्षक में निहित अर्थवत्ता को कहानी के बाहर प्रतिपादित करना इतना जरूरी तो न था). 'सड़क का भूगोल' में भी कथाकार मौजूद है, पर यहां वह 'उत्तम पुरुष' — वाचक के रूप में कथासूत्र में बंधा हुआ आता है—एक अलग इकाई की तरह या बाहर से हस्तक्षेप करता हुआ नहीं. इसलिए इस कहानी का कलात्मक संतुलन बिखरने नहीं पाया है. कथाकार न केवल यहां मौजूद है बल्कि वह रचना-प्रक्रिया के ऊपरी विवरणों का आवरण हटाकर बार-बार पाठक को वस्तुगत यथार्थ को उसके निजी अनुभवों से जोड़ने की कोशिश भी करता है. इस प्रकार वह पाठक का आत्मीय हो कर उसे लेखक की विवशताओं और सीमाओं से भी परिचित कराता चलता है. जबकि कहानी में उठाये गये कथानक और उसके भीतर से उभरते प्रश्नों को वह कहीं भी नजर-अंदाज नहीं कर रहा होता है. प्रयोगधर्मी कहानियों में 'सड़क का भूगोल' इस संकलन की सबसे मजबूत कहानी है—सबसे ज्यादा पारदर्शी फिर भी 'कुछ घंटे', 'क्यों' और 'घर कहां हैं?' जैसी कहानियों में संवेदना और वस्तुगत यथार्थ का केंद्रीय बिंदु जितनी सफाई और बेबाकी से उभरा है, उतना इस कहानी में नहीं.

वस्तुतः 'कुछ घंटे', 'क्यों' और 'घर कहां है?' का परिवेश और संवेदना रचनाकार की अपनी मानसिकता और मूल्यों के बहुत निकट और नितांत परिचित हैं.

इन कहानियों में मानवीय त्रासदी की तीक्ष्णता इनके पात्रों की असहायता के द्वारा और गहरी होती हैं. 'क्यों' और घर कहां है?' में (खासकर 'घर कहां है?' में) गहरे मानवी सरोकारों और अपनी असहायता के बावजूद मानवीय मूल्यों के लिए समाजविरोधी ताकतों का प्रतिरोध करने की भी एक तीखी ललक चित्रित हुई है. ये कहानियां कथाकार बटरोही की अपनी दुनिया और एक कथाकार के रूप में उनकी ताकत का परिचय कराती हैं. □

डा. माहेश्वर

सड़क का भूगोल' :बटरोही, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली-110002
मूल्य : तीस रुपये

यांत्रिक दुनिया में मानवीय संवेदना की तलाश

अमर गोस्वामी की ग्यारह कहानियों का संकलन 'हिमायती' वर्तमान परिस्थितियों में टूटते हुए मूल्यों और आम आदमी के जीवन में आ रहे बदलाव को लेकर यांत्रिक जीवन में मानवीय संवेदना की तलाश का एक सफल प्रयास है.

अमर गोस्वामी अपनी कहानियों के माध्यम से कहीं प्रत्यक्ष और कहीं अप्रत्यक्ष रूप से उन समस्त परिस्थितियों का विवेचन करने की कोशिश करते हैं जहां पर इंसान की सुप्त भावनायें दिख सकें. 'एक शाम' कहानी के माध्यम से वह शहरी अपंग मानसिकता को सफलता-पूर्वक प्रस्तुत करते हैं, जहां प्रतिवाद तो हैं, लेकिन प्रतिरोध नहीं है. पुलिस वाला बेबस रिक्शेवाले पर डंडे बरसा रहा है. लेकिन किसी में भी हिम्मत नहीं है कि पुलिस वाले को रोक सकें. लोगों की नपुंसक प्रतिक्रियाओं से यहां से अपरिचित आदमी अपमान और शर्म की अनुभूति से केवल झुक ही सकता है. इसी प्रकार 'लाचारी' कहानी में भी केवल एक तकनीकी भूल से विवश आदमी को टी.टी. द्वारा निरंतर अपमानित किए जाने के बावजूद उसे या तो लोगों से कोरी सहानुभूति मिल रही है या फिर वह लोगों के मनोरंजन का साधन बन रहा है. और यहां फिर वही अपरिचित व्यक्ति बाबू हरपाल सिंह के रूप में उसका साथ देता है. जानते हुए भी कि अगर उसने वे दो रुपये दे दिये तो उसे अपने गांव तक पैदल जाना पड़ेगा.

इस संकलन की सबसे महत्वपूर्ण कहानी है— 'पतझर का चेहरा'. मध्यमवर्गीय अभिजात्य परिवार सामाजिक और आर्थिक स्थिति के दबाव में किस प्रकार बिखर जाता है, 'पतझर का चेहरा' कहानी में खुलकर सामने आया है. समाज में दादू की स्थिति सम्मानजनक है लेकिन आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि अपनी सांवली बेटी के लिए वर खरीद सके. कई बार मासी मां को सजा-संवार कर लड़के और उसके साथ आए सम्मानित रिश्तेदारों के सामने लाया जाता रहा, जहां लंबे साक्षात्कार के बाद उन्हें वापस अपने कमरे में भेज दिया जाता था. मासी मां के पास अपनी व्यथा कहने के लिए भी तो कोई नहीं था, किससे वह अपनी निराशा कहतीं. परिणाम वही हुआ पहले मिर्गी के दौरे और फिर बाद में पूर्णाहुति. 'गुड़ियों की कहानी' भी कुछ इसी विषय पर लिखी अच्छी कहानी है. दहेज के कारण दिदिया पर उसकी ससुराल में अत्याचार हो रहे हैं, लेकिन उसके आदर्श भारतीय माता-पिता उसका सुख उसके ससुराल में ही मानते हैं और ससुराल वालों की धन की मांग जमीन बेच कर पूरी कर देते हैं और अंत में दिदिया को खाना बनाते हुए स्टोव से जल जाने की मौत को भी स्वीकार कर लेते हैं.

संग्रह की शीर्षक कहानी 'हिमायती' आज की शोषित व्यवस्था की परिचायक बनी है, तो मेहनतकश की भावनाओं का भी प्रतीक है.

गरीबी, बीमारी से अपंग हुए रिक्शे वाले चिराग सिंह के लिए उसके साथी हर संभव सेवा करने के लिए तत्पर हैं. लेकिन चिराग सिंह शायद अपने समाज की असमर्थता को समझता है, इसलिए वह अपनी दुनिया में सीमित रहना चाहता है. अन्य रिक्शे वाले उसकी मदद के लिए यूनियन के नेता लाल बाबू से प्रार्थना करते हैं जिसे लाल बाबू रुखाई के साथ ठुकरा देते हैं, लेकिन जब वह मर जाता है तो लाल बाबू उसकी अर्थी धूम-धाम से उठवा कर लोगों की सहानुभूति बटोरने में सफल रहते हैं.

इस संग्रह की अन्य कहानियां 'चीरघर', 'दिल्ली दूर है', 'फूल का नाम इतिहास', 'हमदर्दी', 'सुदामा की मुक्ति', 'बहंगिया', भी रोजमर्रा के इंसान की दास्तान हैं जहां पर कहीं आज की यांत्रिक दुनिया उसके भोलेपन पर हंस रही है.

अमर गोस्वामी का यह पहला संकलन है. हालांकि कहीं-कहीं पर अंत नाटकीय और उपदेशात्मक हो गए हैं, लेकिन फिर भी कहा जा सकता है कि इधर लिखी जा रही कहानियों की अपेक्षा उनमें शिल्प का कलात्मक संयम अधिक है.

राजेश कालिया

□ 'हिमायती' अमर गोस्वामी
वर्तिका प्रकाशन, मालवीय नगर, सतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एड्स इससे कैसे बचें

एड्स एक खतरनाक रोग है और यह अभी तक ला-इलाज है। बहुत सी जनता इससे भयभीत है तथा इसके बारे में बहुत सी अफवाहें हैं। लेकिन कोई भी स्वयं को इससे बड़ी आसानी से बचा सकता है। इसलिए आइए, हम कुछ आधारभूत बातों पर गौर करें।

एड्स क्या है?

एड्स "एक्वायर्ड ईम्यूनो-डेफिसिएन्सी सिन्ड्रोम" का संक्षिप्त शब्द है। यह विषाणुओं से होता है जो शरीर की स्वाभाविक सुरक्षा प्रणाली को नष्ट कर देते हैं।

यह रोग कैसे फैलता है?

एड्स के विषाणु इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति के रक्त या वीर्य के जरिए किसी व्यक्ति के शरीर में पहुंच सकते हैं।

अधिकांश मनुष्यों को एड्स के विषाणु इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति के साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित करने से लग जाते हैं। शेष व्यक्तियों को नशीली दवाओं के सेवन करने वाले व्यक्तियों को लगी सुई से ही प्रायः इंजेक्शन लगवाने के जरिए एड्स रोग लगता है। केवल कुछ थोड़े से ही मामलों में इस रोग से ग्रस्त व्यक्ति के रक्त-आधान (ट्रासफ्यूजन) के माध्यम से यह रोग फैलता है।

जो व्यक्ति विषाणु ले आते हैं, वास्तव में वे सभी एड्स रोग के शिकार नहीं होते। बल्कि जिस किसी व्यक्ति के विषाणु हैं वह उन्हें दूसरों पर छोड़ सकता है। फिर भी वे पूर्णतया स्वस्थ अनुभव करते हैं।

इन कामों से आपको एड्स नहीं होता

- सामान्य सम्पर्क जैसे हाथ-मिलाने, छूने और गले मिलने से।
- तरण-तालों में स्नान करने, जल-पान गृहों और अन्य सार्वजनिक स्थानों पर बैठकर खाने-पीने से।
- खांसने, छींकने और थूकने से।
- वस्त्र पहनने से।
- संडास पर बैठने, द्वार-दस्ता पकड़ने, भोजन, गिलासों और प्यालों का प्रयोग करने से।

आप एड्स के शिकार नहीं होते जब आप

- रक्त-दान करते हैं।
- अपने डाक्टर, दंत चिकित्सक या किसी अन्य स्वास्थ्य रक्षक कार्यकर्ता से इंजेक्शन लगवाते हैं या अन्य किसी प्रकार का उपचार कराते हैं।

आपको बचने के लिए क्या करना चाहिए?

- अजनबी के साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित न करें क्योंकि इसमें सदैव जोखिम बना रहता है। आपको मालूम नहीं कि शायद अजनबी इस रोग से पीड़ित हो।
- गुदा मैथुन (अप्राकृतिक यौन-सम्बन्ध):-इसमें अत्याधिक जोखिम होता है और इससे बचना चाहिए।
- जितने अधिक लोगों से यौन-सम्बन्ध स्थापित करेंगे, उतना अधिक जोखिम होगा।
- नशाखोरों की इंजेक्शन सुइयों का इस्तेमाल न करें। जो नशाखोर नशीली दवाओं के आदी हो जाते हैं और इसे नहीं त्याग सकते, उन्हें इसे ध्यानपूर्वक नोट कर लेना चाहिए।

याद रखें

एड्स एक ऐसा रोग है जिसके बारे में जोखिम नहीं उठाना चाहिए। यह ला-इलाज है। एड्स पर नियंत्रण पाना स्वयं व्यक्ति पर निर्भर करता है।

अधिक जानकारी के लिए

आप सहायक महानिदेशक (एड्स), स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय, निर्माण भवन, नई दिल्ली- 110 011 को लिख सकते हैं।

आप एड्स का उपचार नहीं कर सकते।
लेकिन आप इससे निश्चित रूप से बच सकते हैं।

केन्द्रीय स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो,
स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय, कोटला रोड,
नई दिल्ली- 2 द्वारा जारी

davp 88/349 Hindi

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी का विकास चाहता कौन है?

हिंदी दिवस' के अवसर पर पटना में राजभाषा विभाग, बिहार सरकार की ओर से 13 एवं 14 सितंबर, 1988 को संगोष्ठी का आयोजन किया गया. संगोष्ठी में विचार्य विषय 'राजभाषा: पूर्ण प्रतिष्ठा, कब और कैसे' का प्रवर्तन करते हुए विभाग के निदेशक डा. भगवती शरण मिश्र ने राजभाषा हिंदी को राष्ट्र की अस्मिता बताते हुए कहा कि हिंदी पर ही देश की सांस्कृतिक समृद्धि का भविष्य अवलंबित है. यह अतीव खेद की बात है कि स्वाधीनता-प्राप्ति के चार दशकों की दीर्घ अवधि के पश्चात् भी राजभाषा हिंदी पूर्णरूपेण सुप्रतिष्ठित नहीं हो पायी है. हिंदी के मार्ग में एक बड़ी बाधा यह भी है कि चिकित्सा, अभियंत्रण, विज्ञान आदि के लिए हम सुगम शब्दावली नहीं गढ़ पाए हैं.

बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी के निदेशक डा. बैकुंठ नाथ ठाकुर ने संगोष्ठी की स्तुत्य प्रयास बताते हुए कहा कि राजभाषा की प्रतिष्ठा का प्रश्न बहुत ही गंभीर है. इसकी प्रतिष्ठा तब तक नहीं होगी, जब तक हमारी मानसिकता में बदलाव नहीं आयेगा. तकनीकी ग्रंथों का हिंदी में अभाव है, यह कहना हकीकत से परे है. लोग हिंदी की दुरूहता की बात तो करते हैं, लेकिन अंग्रेजी की नहीं. हिंदी में गढ़े गये पांच लाख शब्द प्रयोग की प्रतीक्षा में हैं. आज के संदर्भ में राजभाषा का प्रश्न रोजी-रोटी से जुड़ा है.

वयोवृद्ध साहित्यकार डा. महेश्वरी सिंह 'महेश' ने कहा कि हिंदी की पूर्ण प्रतिष्ठा के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा हिंदी की क्षमता के प्रति हमारा निराधार अविश्वास भी है

दूसरे दिन 14 सितंबर को आयोजित संगोष्ठी की अध्यक्षता बिहार के पूर्व सचिव एवं केंद्रीय राजभाषा सचिव श्री कृष्ण कुमार श्रीवास्तव ने की. संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए लोकप्रिय कथा-मासिकी 'सारिका' के संपादक श्री अवधनारायण मुद्गल ने कहा कि सांस्कृतिक धरातल पर हम अधिक गुलाम हो गये हैं. हिंदी के आधिपत्य की बात इसलिए की जाती है कि अंग्रेजीवाले हिंदी का विकास तहेदिल से नहीं चाहते. भाषाई खतरे अंग्रेजी के चलते पैदा हुए हैं. राजभाषा हिंदी को पूर्ण प्रतिष्ठा दिलाने के लिए अंग्रेजी को हटाना बहुत जरूरी है. अंग्रेजी चतुर चालाक राजनीतिज्ञों और प्रशासकों की भाषा रही है. जिन्हें अपने सारे स्वार्थ अंग्रेजी में ही निहित नजर आते हैं. इस दृष्टि से देशी अंग्रेज बरतानी अंग्रेजों से ज्यादा खतरनाक हैं.

अपने अध्यक्षीय व्याख्यान में श्री श्रीवास्तव ने कहा कि हिंदी से ही देश का व्यक्तित्व उभरेगा. हिंदी के विकास में बाधक निहित स्वार्थी तत्वों को हम पहचान करें तथा उन्हें दूर करने की चेष्टा करें. जिस राष्ट्र की अपनी कोई भाषा नहीं होती, उसकी आवाज अनसुनी रह जाती है.

प्रस्तुति : सुरेंद्र प्रसाद जमुआर

हिंदी अकादमी, दिल्ली द्वारा संयोजित

हिंदी दिवस पखवाड़ा

दिल्ली की हिंदी अकादमी ने गत वर्ष की भांति इस वर्ष भी हिंदी दिवस समारोह पूर्वक मनाया. 14 से 29 सितंबर तक चलने वाले इस पखवाड़े में 'साहित्यकार निर्देशिका विमोचन,' 'उभरते स्वर काव्य गोष्ठी', 'प्रसाद जन्म शती गोष्ठी,' 'माखनलाल जन्म शती संगोष्ठी' तथा 'हिंदी संकल्प समारोह' का आयोजन किया. हिंदी दिवस का उद्घाटन उपराज्यपाल रोमेश भंडारी ने किया, मुख्य अतिथि जगप्रवेश चंद्र तथा विशिष्ट अतिथि कुलानंद भारतीय थे. अकादमी सचिव डा. नारायणदत्त पालीवाल के प्रयत्नों से हिंदी दिवस पखवाड़ा सफलता पूर्वक संपन्न हुआ

प्रस्तुति : बीथिका

पुरस्कार वितरण समारोह

आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी परिषद, बस्ती के तत्वावधान में आयोजित 'स्व. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, स्मृति कहानी प्रतियोगिता' का पुरस्कार वितरण समारोह स्थानीय शिवहर्ष किसान महाविद्यालय, बस्ती में संपन्न हुआ. इस अवसर पर नगर के प्रबुद्ध नागरिक, साहित्यकार पत्रकार एवं साहित्यानुरागी उपस्थित थे.

कार्यक्रम के प्रथम सत्र में 'आधुनिक हिंदी कहानी: चुनौतियां और अपेक्षाएं' विषय पर व्यापक चर्चा और बहस हुई.

कार्यक्रम के दूसरे सत्र में कहानी प्रतियोगिता में पुरस्कृत कहानियों का संक्षिप्त परिचय स्वयं कथाकारों द्वारा प्रस्तुत किया गया. कहानी प्रतियोगिता के निर्णायकों संजीव तथा डा. आनंद अस्थाना ने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया.

इस अवसर पर परिषद् ने जनपथ के ख्यातिनामा रचनाकार स्व. पं. माता दीन त्रिपाठी 'दीन' की स्मृति में भी जनपथ के छः नवोदित कथाकारों को भी क्षेत्रीय प्रतिभा प्रोत्साहन योजना के अंतर्गत सम्मानित किया. सत्र के अंत में संजीव और डा. आनंद अस्थाना ने पुरस्कार वितरण किया

प्रस्तुति : संजय द्विवेदी

पत्रकारिता और साहित्य का संबंध-संगोष्ठी

स्वर्गीय विद्यासागर वसिष्ठ की पांचवी पुण्य तिथि पर 'अग्रसर' द्वारा आयोजित पत्रकारिता विमर्श गोष्ठी में पूर्व निर्धारित प्रस्तावित विषय 'पत्रकारिता और साहित्य का संबंध' पर सर्वश्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, शोभा लाल गुप्त, अयोध्यानाथ बल, दिनेश निर्मल, अशोक लव, नरेंद्र लाहड़ु ने सार्थक बहस में हिस्सा लिया. संचालन डा. सुभाष वसिष्ठ ने किया.

प्रस्तुति : सतीश सागर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपकी बात

न है, न होगी

डा. पालीवाल के लेख 'भाषा: अस्मिता की पहचान' पर कुछ कहना जरूरी है, क्योंकि यह भ्रमित करने वाला है. पहली बात, 'हिंदी दिवस' मनाना ही अप्रासंगिक है. इसका एकमात्र उद्देश्य हिंदी संबंधी सरकारी पाखंड को फैलाना है. तर्क यह दिया जाता है कि 14 सितंबर, 1948 को संविधान में हिंदी को राष्ट्रभाषा (या राजभाषा) मान्य किया गया था. तब इसे 'राष्ट्रभाषा' (या राजभाषा) दिवस' की जगह 'हिंदी दिवस' के रूप में मनाने की क्या तुक है? क्या 14 सितंबर को, संविधान में, हिंदी को 'हिंदी भाषा' का दर्जा दिया गया था?

'हिंदी दिवस' के लिये तेरहवीं शताब्दी में जाना होगा और अगर 'हिंदी' नामांकन की निश्चित तिथि नहीं मिले, तो इसे हिंदी के पितामह अमीर खुसरो के नाम पर मनाना ही विवेक का सूचक होगा. 14 सितंबर को सिर्फ और सिर्फ 'राजभाषा दिवस' के रूप में मनाने का ही कोई औचित्य हो सकता है. क्योंकि इस दिन ही हिंदी को यह शर्मनाक—और राष्ट्रहित की दृष्टि से खतरनाक संवैधानिक झांसा दिया गया था कि— **'देवनागरी लिपि में हिंदी संघ की राजभाषा होगी!'**

खुद भारत सरकार ही इस दिन को 'राजभाषा दिवस' के रूप में नहीं मनाती. इसके दो स्पष्ट कारण हैं. एक, इससे हिंदी के 'राजभाषा' होने पर जोर पड़ने का खतरा है. दो, चूंकि संविधान में हिंदी को राजभाषा का दर्जा कहीं नहीं और कतई नहीं दिया गया है. संविधान में हिंदी को डंके की चोट पर मूर्खों की भाषा का दर्जा दिया गया है, क्योंकि सिर्फ मूर्ख ही दावा रख सकते हैं, कि हिंदी को संविधान में राजभाषा का गौरवपूर्ण दर्जा दिया जा चुका है.

डा. पालीवाल की हिंदीनिष्ठा असिग्ध हो सकती है, लेकिन भाषा के लिये सिर्फ निष्ठा ही नहीं, बल्कि यह ज्ञान भी जरूरी है कि शब्द को उसके अर्थ के विपरीत चलाना झूठ रचना है. 'होगी' का मतलब होगी ही होता है— 'है' या 'हो चुकी' नहीं. हिंदी, संविधान चलन में आने के चार दशक बाद भी, 'होगी' के ही हवाले है- 'हुई' नहीं है!... और अब आगे कभी होने की गुंजाइश ही हमेशा-हमेशा के लिये समाप्त की जा चुकी है.

'जब तक एक भी अहिंदी भाषी प्रांत असहमत होगा' की संवैधानिक घोषणा के बाद, भारत सरकार और सर्वोच्च न्यायालय दोनों ही हिंदी के राजभाषा होने के सवाल से पूरी तरह (और अपनी तरफ से सदा-सर्वदा के लिये) पल्ला झाड़कर अलग हो चुके हैं. अब अगर अगले सौ-पचास सालों के बाद कभी तमिलनाडु समेत बाकी के सारे हिंदीतरभाषी प्रांत स्वानुराग से सहमत हो भी गये, तो सिर्फ एक मिजोरम या नागालैंड की असहमति हिंदी को 'फिर बैतलवा डाल पर' की इसी हास्यास्पद तथा शर्मनाक नियति में ला पटकेगी; जहां कि उसे पिछले चालीस सालों से अंग्रेजी की जूठन पर रखा जा रहा है. बहुमत की संसदीय प्रणाली के दावेदारों की तथाकथित लोकतांत्रिकता का इससे बड़ा सबूत और क्या हो सकता है कि 'अल्पतम मत' को (भी) बाकायदे संवैधानिक मान्यता 'बख्शीश' की तरह दी गई हो. जहां एक भी सासंद के असहमत होने पर राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री को पद से बर्खास्त करने की व्यवस्था नहीं हो, वहां एक भी अहिंदीभाषी प्रांत की असहमति के संवैधानिक झांसे का क्या होगा?

डा. पालीवाल ने संविधान के जिस अनुच्छेद 343 का गद्‌गद् भाव से उल्लेख किया है, उसमें हिंदी के साथ सिवा धोखाधड़ी के और कुछ नहीं किया गया है. यह एक सामान्य नियम है कि पद से पात्रता निबद्ध होती है और पात्रता होने (वांछित अर्हताएं पूरी हो जाने) पर ही नियुक्ति की घोषणा की जा सकती है. लेकिन हिंदी के साथ यह हद दर्जे की शर्मनाक संवैधानिक धोखाधड़ी की गई कि 'राजभाषा होगी' घोषित करने के बाद, भारत सरकार को यह काम सौंपा गया कि वह हिंदी को 'राजभाषा' पद के योग्य बनाये. फिर चाहे इसमें दस-बीस-तीस-चालीस-सौ-पचास-हजार-बीस-हजार साल ही क्यों नहीं लगें.

भारत सरकार और सर्वोच्च न्यायालय, इन दोनों से यह सवाल बिलकुल किया जाना चाहिये कि जब हिंदी में पात्रता थी ही नहीं, तब उसे 'राजभाषा' घोषित किये जाने को सिवा संवैधानिक धोखाधड़ी के और क्या माना जाय? पात्रता घोषणा के बाद अर्जित करने की वस्तु नहीं हुआ करती है.

हिंदी के लिये भारत सरकार-द्वारा किये गये जिन कारनामों का जिक्र **डा. पालीवाल** ने किया है, वो पाखंड के अपरिहार्य अंग हैं. **अंग्रेजी को भारत की राजभाषा बनाये रखने के लिये हिंदी के नाम पर कुछ-न-कुछ कर्मकांड करते रहना भारत सरकार की बाध्यता है. हिंदी अंग्रेजी को कायम रख सकने का सर्वोच्च साधन है, क्योंकि अन्य किसी भी भारतीय भाषा में अस्तर बन सकने की क्षमता नहीं है.**

डा. पालीवाल क्षमा करेंगे कहने को कि हिंदी को सरकार ने विकसित नहीं, बल्कि विरूपित तथा विकृत किया है. भारत सरकार ने जो हिंदी तैयार की है, वह पत्थर का अचार है और उसे समझना हिंदी के बड़े-से-बड़े विद्वानों के लिये भी असंभव है. यह 'सरकारी हिंदी' दरअसल हिंदी की उस सहज तथा सर्वग्राही प्रकृति को नष्ट करके तैयार करायी गई है, जिसके आधार पर हिंदी राष्ट्रभाषा बनी थी और आज भी बनी हुई है. राष्ट्र के पैमाने पर देश के अट्ठानवे प्रतिशत लोगों के संवाद की भाषा कल भी हिंदी थी और आज भी हिंदी ही है. इस महादेश की जनता को राष्ट्रीय स्तर पर संबोधित अथवा आंदोलित कर सकने की क्षमता सिर्फ एक ही भाषा में है—**हिंदी में!** हिंदी की यह विराट अभिव्यक्ति-क्षमता ही भारत सरकार की राह का रोड़ा है, क्योंकि उसका सारा संवैधानिक तथा प्रशासकीय ढांचा ब्रिटिश हुकूमत के नुस्खों पर टिका है और इसे कायम रखने को ब्रिटिश रॉयल लैंग्वेज अंग्रेजी जरूरी है.

डा. पालीवाल एक अनुभवसंपन्न सरकारी अधिकारी हैं. उनसे बेहतर कौन जानेगा कि **सिर्फ वही सरकार अपने सारे केंद्रीय काम-काज सामान्य जनता की समझ में नहीं आने वाली भाषा में चलाती है, जिसे जनता को अंधेरे में रखकर राष्ट्र की संपदा की मनमानी लूट-खसोट कायम रखनी हो. अंग्रेजी इसी औपनिवेशिक लूट-खसोट का माध्यम है.**

जहां तक हिंदी में बच्चों को शिक्षा देने में झिझकने का प्रश्न है, भारत सरकार हिंदी को विकसित करते हुए जिस मुकाम तक पहुंचा चुकी है, उससे लोगों में यह दहशत छा गई है कि **हिंदी माध्यम से बच्चों को पढ़ाना उनका भविष्य नष्ट करने के सिवा और कुछ नहीं होगा.**

अंग्रेजी को इस देश के लोग अंग्रेजी साहित्य या ज्ञान-विज्ञान से प्रेम में गले नहीं लगाये बैठे हैं. भारत सरकार ने ऊंचे प्रशासकीय ही नहीं, अपने केंद्रीय संस्थानों के हिंदी अधिकारी के पदों तक के लिये अंग्रेजी को अपरिहार्य बना रखा है. भारत सरकार को 'अंग्रेजी दिवस' या 'अंग्रेजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पखवाड़ा' मनाने की कोई जरूरत नहीं. उसने अंग्रेजी को सारे केंद्रीय महत्व के राजकीय अप्रतिष्ठानों तथा कार्य-कलापों में अमरबेलि की तरह छा रखा है. 'पार्लियामेंट इंडिया' से लेकर 'सुप्रीम कोर्ट ऑफ इंडिया' तक अंग्रेजी का एकाधिपत्य है. हिंदी 'सड़क की भाषा' है, संसद की नहीं. चूंकि संविधान में अंग्रेजी को घोषित रूप से राजभाषा का दर्जा देने की गुंजाइश नहीं, इसलिये नाना प्रकार के चोर-दरवाजे कायम किये गए हैं—हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिये गए होने का संवैधानिक झांसा सबसे मुख्य चोर-दरवाजा है!

भारत सरकार ने, आजादी के इन चालीस वर्षों में, हमें फिर उसी मनोदशा में पहुंचा दिया है, जहां हम 'इंडियंस एंड डौग्स आर नॉट एलाउड' के दौर में थे! सुप्रीम कोर्ट, पार्लियामेंट और पी.एम. सेक्रेटरियट-जैसे न जाने कितने प्रभुसत्तावर्गीय प्रतिष्ठान हैं, जहां हिंदी हिकारत और प्रताड़ना की वस्तु है. जहां अंग्रेजी नहीं जाननेवालों के पास जानवरों की तरह मारे-मारे फिरने के और कोई रास्ता नहीं.

हिंदी दिवस, हिंदी पखवाड़े या विश्व हिंदी सम्मेलन हमारी राष्ट्रीय चेतना और सामाजिक अस्मिता पर अंग्रेजी के कोड़ों की फटकार को नैपथ्य में रखने के साधन-मात्र हैं. **ये एक संघातक छलावा हैं, क्योंकि इनकी आड़ में अंग्रेजी के प्रभुत्व के प्रति संभावित विद्रोह को सिर नहीं उठाने देने की कूटनीति खेली जाती है.** भारत सरकार ने निजी संस्थानों के द्वारा सरकारी तथा गैर-सरकारी, दोनों स्तरों पर अंग्रेजी को हटाने तथा हिंदी के प्रचार प्रसार की दिशा में लगातार चालीस सालों तक किस तरह कदम पर कदम उठाये हैं, यह तो हमें जरूर बताया है डा. पालीवाल ने, लेकिन मंत्रालयों, न्यायालयों तथा केंद्रीय सरकार के अन्य प्रमुख कार्यालयों में,हिंदी वालों पर पड़ने वाली उन लातों का जिक्र छिपा लिया है, जिनकी छाप हमारी पीठ पर साफ देखी जा सकती है!

जहां तक अंग्रेजी से जुड़े रहने के 'राजनीतिक कारणों' या 'अन्य विवशताओं' का सवाल है, हम फिर कहेंगे कि इसका एकमात्र कारण अंग्रेजी का भारत सरकार के केंद्रीय प्रतिष्ठानों तथा देश के बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों के काम-काज की सर्वप्रभुत्व-संपन्न भाषा होना है और इसके पीछे विवशता नहीं, बल्कि देश के अट्ठानबे प्रतिशत सामान्य जनों को अंधेरे में रखने तथा उनकी स्वाधीनता, अस्मिता और आकांक्षाओं को कुचलने का इरादा मौजूद है.

हिंदी के मामले में भारत सरकार का रुख चोर से चोरी करने और साहूकार से जागते रहने को कहने के दोमुंहेपन के सिवा और कुछ नहीं. इधर तो वह हिंदी को प्रेम की भाषा बनाने का मधुर राग अलापती है, उधर 'हिंदी के खतरे से सावधान रहो' का मृदंगम् बजाये जाने का बंदोबस्त करती है.

डा. पालीवाल इस सच्चाई पर क्यों पर्दा तानना चाहते हैं कि मौजूदा संविधान में हिंदी देश की 'राजभाषा' न है और न ही निकट भविष्य में होगी!

□ **शैलेश मटियानी, इलाहाबाद, (उ.प्र.)**

इतिहास से छेड़छाड़

'बहादुर शाह जफर पर चलाया गया मुकदमा न्याय के साथ खिलवाड़' में हंस जी ने लिखा है कि ''विजेता हमेशा विकसित लोगों को बदनाम करने के लिये उनके नेताओं पर झूठे मुकदमें चलाकर, न्याय का नाटक करके उन्हें सजा देता चला आ रहा है.'' दूसरे विश्व युद्ध में जर्मनी को हराने के बाद,-ऐसा ही एक नाटक अमरीकियों और अंग्रेजों द्वारा न्यूरेमबर्ग के मुकदमें में किया था और इसकी तुलना अंग्रेजों द्वारा चलाये गये बहादुरशाह जफर पर झूठे मुकदमे से की है. हंस जी की इतिहास को देखने की समझ पर तो सब को अफसोस होगा ही, साथ ही सारिका जैसी जन चेतना की पत्रिका का संपादक मंडल मानवता के विरुद्ध गंभीर अपराध करनेवाले नाजियों पर चलाये गये न्यूरेमबर्ग ट्रायल का जफर पर चलाये गये पाखंड पूर्ण मुकदमें से तुलना को किस रूप में देखता है यह चिंता का विषय है.

हाल ही में भोपाल में ऐसी ही एक बेहूदा तुलना पर भारी हंगामा हो गया था, जिसमें एक अधकचरे ज्ञानी ने राजा महेंद्रप्रताप सिंह और बरकतउल्ला भोपाली के नेतृत्व में बनी पहली निर्वासित सरकार की तुलना जगजीतसिंह चौहान की खालिस्तान निर्वासित सरकार से कर दी थी. सारिका जैसी राष्ट्रीय पत्रिका में इस प्रकार की अमानवीय तुलना पर 'हंस' के 'झाड़वाद' पर हमारा विरोध दर्ज करें. साथ ही सारिका को चाहिये कि यदि वह मानवता, शांति और युद्ध विरोध के प्रति प्रतिबद्ध है तो न्यूरेमबर्ग ट्रायल को विस्तार से छापे जिससे कि यह बताया जा सके कि मित्र राष्ट्रों द्वारा जर्मनी पर चलाया गया मुकदमा विजेता द्वारा विजित को बदनाम करने के लिये नाटक नहीं था बल्कि मानवता और शांति के विरुद्ध अपराध का पर्दाफाश करने का छोटा प्रयास था. यह नाजीवाद का खतरा आज भी नस्लवाद और रंगभेद के रूप में मौजूद है.

□ **लाखन सिंह भोपाल (म.प्र.)**

हमारी बातचीत

'सारिका' के नये अंक में डा. नामवर सिंह के साथ हुई 'हमारी बातचीत' 'कहानी खुराफात की जड़ है' में प्रूफ की अशुद्धियां देखकर आश्चर्य और क्षोभ दोनों हुआ. गलतियां ऐसी हैं, जिनसे अर्थ का अनर्थ होता है. कहीं पर लाइनें गायब हैं और कहीं पर एक ही पंक्ति दो अलग-अलग स्थानों पर सर्वव्यापी ईश्वर की तरह विद्यमान है. 'धर्मयुग' तो अपने परिवार की ही पत्रिका है. फिर भी उसकी जगह उसी परिवार की एक साहित्यिक मासिक पत्रिका उसका नाम 'धर्मयुद्ध' छापे,

इसी तरह कहानी की पत्रिका अगर 'कहानीकार' की जगह 'उम्मीदवार' छापने लगे तो इसे क्या कहना चाहिए?

बहरहाल, प्रूफ की ऐसी भयावह और दुर्दांत गलतियां देखकर मैं तो सन्न हूं. शायद आप भी कम दु:खी नहीं होंगे. गनीमत हो कि डा. नामवर सिंह अपने मुंह से ऐसे शब्द और ऐसे वाक्य निकलते देखकर लज्जित न हों.

□ **उदय प्रकाश, नयी दिल्ली**

बधाई

कथाकार-पत्रकार हरीश पाठक को उत्तर प्रदेश पत्रकारिता संस्थान के गणेश शंकर अभिव्यक्ति पुरस्कार-87 से सम्मानित किया गया है. इस अवसर पर 'सारिका-परिवार' की ओर से हार्दिक बधाई!

हिन्दी मे पत्राचार द्वारा गृह सज्जा सीखिए

इन्टीरियर डेकोरेशन

(सर्टीफिकेट एव हॉबी कोर्स)

- गृहसज्जा का तकनीकी ज्ञान प्राप्त करे
- सुविधानुसार घर बैठे खाली समय में अध्ययन करें
- आसान भाषा मे विशेषज्ञो द्वारा तैयार पाठ्यक्रम
- मंहगी पुस्तकें खरीदने की जरूरत नही
- कोर्स फीस का आसान किश्तों मे भुगतान
- कोई तकनीकी न्यूनतम योग्यता आवश्यक नही

विवरण के लिए जवाबी लिफाफा भेजे -

AID **एकैडमी ऑफ इन्टीरियर डेकोरेशन**
10A/14 शक्ति नगर, दिल्ली-110007.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या कोई बलवान मर्द खुद पीछे हट कर औरत को भार उठाने के लिए आगे करेगा?

एक समझदार, जिम्मेदार मर्द, हर काम में अपनी पत्नी का हाथ बटाता है। संसार की हर खुशी उसके कदमों में डालता है। और जब परिवार सीमित करने का आता है सवाल, वह समझता है कि स्त्रियों के मुकाबले, पुरुषों की नसबंदी है बहुत आसान।

इतनी आसान कि इसे आप्रेशन भी नहीं कहा जा सकता चंद मिन्टों में हो जाता।

आप्रेशन मेज से ही चल कर,
आध घंटे में घर वापिस।
हफ्ता दस दिन करें हल्का काम,
और फिर आराम ही आराम।

यह सुरक्षित साधन है। इससे अनचाहे गर्भ का डर हमेशा के लिए खत्म हो जाता है। इसमें पुरुष की काम ग्रंथियों को बिल्कुल नहीं छेड़ा जाता है। वह पहले की ही तरह शारीरिक सुख का भोग कर सकता है। बल्कि, अब बेफ़िक्र होकर ज़्यादा आनन्द से । इसमें न कोई परेशानी और न ही कोई झंझट।

फिर जो मर्द सचमुच करते अपनी पत्नी से प्यार, वो कैसे करें नसबंदी से इन्कार?

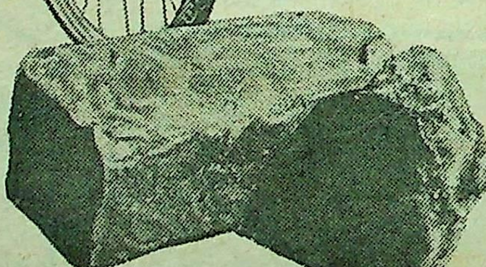

**याद रखें–
जरा सी सावधानी,
जिन्दगी भर आसानी।**

डी.ए.वी.पी. ८८/३४८

अपना परिवार सीमित रखें, इसका निर्णय आपके हाथ में।

**परिवार कल्याण से सम्बन्धित सूचना और सलाह के लिए
दिल्ली में 3016731 पर टेलिफोन करें।
(सभी कार्य दिवस सुबह 9.00 से सायं 5.30 बजे)**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डायमंड पाकेट बुक्स में

मुफ्त

पुस्तकालय

महिलाओं के लिये

एक सुनहरा अवसर हाथ से न जाने दें

डायमंड कुकरी गाइड

मुफ्त प्राप्त करने के लिये

अपने घर में अपनी लायब्रेरी योजना के सदस्य बनिये!

और 24/- की पुस्तकें 20/- में घर बैठे प्राप्त करें और पहली वी०पी० में 10/- की पुस्तक "डायमंड कुकरी गाइड" मुफ्त पायें। तरीका बहुत आसान है। 5/- सदस्यता शुल्क मनीआर्डर व डाक टिकट से भेजकर नीचे लिखा फार्म हमें भेज दें। हम आपको सदस्य बना लेंगे और 24/- की पुस्तकें 20/- की हर माह वी०पी० द्वारा भेजते रहेंगे।

सदस्यता कूपन

मुझे अपने घर में अपनी लाइब्रेरी योजना का सदस्य बना लें। सदस्यता शुल्क पांच रुपये मनीआर्डर/डाक टिकट के साथ भेजा जा रहा है (सदस्यता शुल्क प्राप्त न होने की स्थिति में आपको सदस्यता नहीं दी जायेगी) मैंने नियमों को अच्छी तरह पढ़ लिया है। मैं हर माह वी.पी. छुड़ाने का संकल्प करता/करती हूँ।

नाम ....

पिता का नाम ....

पता ....

डाकखाना ....

इस माह के नये उपन्यास

डायमंड पाकेट बुक्स प्रा. लि.
2715, दरियागंज, नई दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला अंक

उपहार अंक : दो

जैनेंद्रकुमार विशेषांक

कालजयी रचनाओं की संपूर्ण रचनाधर्मिता को समझने के संदर्भ में प्रकाशित 'सारिका' के गौरवशाली विशेषांकों की परंपरा में एक संग्रहणीय आयोजना...

कहानियां, उपन्यास, पत्र, संस्मरण, वक्तव्य, भाषण, और टिप्पणियां

- ☐ जैनेंद्र कुमार की अप्रकाशित, अल्पप्रसारित व प्रतिनिधि कथा-रचनाएं.
- ☐ दस्तावेजी पत्र जो पहली बार सार्वजनिक होंगे.
- ☐ जैनेंद्र जी का अब तक का अंतिम भाषण: राष्ट्र जीवन को मानव-नीति पर रखना सर्वथा असंभव है.
- ☐ जैनेंद्र के कथा-पात्रों का जीवंत संसार.
- ☐ संस्मरण : पचास साल पहले की तस्वीर का कागज पर उतरना.
- ☐ वरिष्ठ कथाकार विष्णु प्रभाकर द्वारा चुनी गयी जैनेंद्र जी की सर्वश्रेष्ठ कहानी.
- ☐ अपनी नजर में जैनेंद्र कुमार.

इंसान और रचनाकार जैनेंद कुमार

विचारक, दार्शनिक और खिलाड़ी जैनेंद्र कुमार

नव-वर्ष पर पाठकों, छात्रों, शोधार्थियों, अध्यापकों और रचनाकारों के लिए विशेष रूप से आयोजित एक अभूतपूर्व विशेषांक

- ☐ ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता कथाकार 'अज्ञेय' द्वारा जैनेंद्र कुमार से की गयी लंबी बातचीत... जो अपने आप में एक धरोहर है.
- ☐ 'त्यागपत्र' के संदर्भ में रचनाकार से कमल किशोर गोयनका की बातचीत.
- ☐ मेरे पिता जैनेंद्र : प्रदीप कुमार का आलेख.
- ☐ ऐसे हैं हमारे बाबा जी. जैनेंद्र जी के पौत्र व पौत्री के अनुभव.
- ☐ जैनेंद्र कुमार का कथाकार: क्या कहते हैं बाद की पीढ़ी के कथाकार...?: परिचर्चा, जिसमें भाग ले रहे हैं कई महत्वपूर्ण कथाकार.
- ☐ जब जैनेंद्र मैथिलीशरण गुप्त से मिले.
- ☐ द्विजेंद्र नाथ मिश्र 'निर्गुण', भैरव प्रसाद गुप्त, भीष्म साहनी, यशपाल और नरेंद्र कोहली के संस्मरण.

जैनेंद्र कुमार विशेषांक

साहित्य के अध्येताओं के लिए सहज, आत्मीय और अनिवार्य दस्तावेज.

सारिका जनवरी : 1989

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्व-प्रसिद्ध शृंखला

पुस्तक महल की 30 पुस्तकों का
एक अनूठा प्रोजेक्ट

मूल्य: 15/- प्रत्येक
डाकखर्च: 4/- प्रत्येक
एक साथ चार पुस्तकें
मंगाने पर डाकखर्च माफ

■ प्रामाणिक पाठ्य-सामग्री ■ प्रत्येक पुस्तक सैकड़ों दुर्लभ चित्रों से सुसज्जित ■ सरस कथा शैली ■ फोटोटाइप सैट ■ बढ़िया कागज पर ऑफसैट छपाई ■ बहुरंगी आवरण ■ वाजिब दाम

इस शृंखला का मूल उद्देश्य एक औसत पाठक को अंतर्राष्ट्रीय घटनाचक्र से जोड़कर उसकी चेतना को प्रबुद्ध करना है।

उदाहरणार्थ **रोमांचक कारनामे** में सरकंडे की नाव में की गई 13,000 मील की समुद्री यात्रा जैसी अनेक सच्ची कथाएं हैं तो **खोजें** में मिट्टी के तेल, पेनिसीलीन आदि खोजों के पीछे छिपे प्रयासों का रोचक विवरण है। **अनसुलझे रहस्य** में बरमूदा ट्राइएंगल से लेकर भूत-प्रेतों तथा रक्त मिलाकर शराब पीने वाली जातियों तक के रहस्य हैं तो **खेल और खिलाड़ी**, **101 व्यक्तित्व** व **वैज्ञानिक** क्रमशः जीवनी-प्रधान पुस्तकें हैं। **विनाश-लीलाएं** में प्रकृति के प्रलयंकारी रूप का चित्रण है तो **दुर्घटनाएं** में मानवीय भूलों से हुई मर्मांतक तबाहियों का लेखा-जोखा है। **गुप्तचर संस्थाएं**, **जासूस** व **जासूसी कांड** में मकड़े के जालों सी फैली जासूसी संस्थाओं तथा उनमें कार्यरत जासूसों की रोमांचकारी गतिविधियां हैं तो **प्रेरक-प्रसंग** किसी भी जहाज की तरह भटके मन के लिए प्रकाश-स्तंभ है।

कुल मिलाकर प्रत्येक पुस्तक अपने क्षेत्र से संबंधित सभी उल्लेखनीय पक्षों को उजागर करने वाला एक सचित्र **मिनि एनसाइक्लोपीडिया** है।

इस शृंखला में प्रकाशित पुस्तकें:
विश्व-प्रसिद्ध.... 1. खोजें 2. अनसुलझे रहस्य 3. रोमांचक कारनामे 4. युद्ध 5. 101 व्यक्तित्व 6. धर्म, मत एवं सम्प्रदाय 7. खेल और खिलाड़ी 8. रिकार्ड्स-I 9. रिकार्ड्स-II 10. वैज्ञानिक 11. विनाश-लीलाएं 12. दुर्घटनाएं 13. गुप्तचर संस्थाएं 14. जासूस 15. प्रेरक-प्रसंग 16. चिकित्सा-पद्धतियां 17. बैंक डकैतियां एवं जालसाजियां 18. जासूसी-कांड 19. क्रूर हत्यारे 20. सभ्यताएं।

तैयारी में/प्रैस में
• रोमांस कथाएं • अनमोल खजाने • दुस्साहसिक खोज-यात्राएं • राजनैतिक स्कैण्डल्स • राजनैतिक हत्याएं • भूत-प्रेत घटनाएं • सैनिक क्रांतियां • कुख्यात महिलाएं • अय्याश • महान क्रांतियां।

English versions available.
WORLD FAMOUS.... 1. Discoveries 2. Unsolved Mysteries 3. Adventures 4. Wars & Battles 5. 101 Great Lives 6. Religions, Doctrine & Sects 7. Disasters 8. Accidents 9. Civilizations 10. Scientists 11. Spies 12. Intelligence Agencies 13. Spy-Scandals

रेलवे, बस अड्डों व निकट के बुकस्टॉलों पर मांग करें। वी.पी.पी. से मंगाने के पते:–

पुस्तक महल. खारी बावली, दिल्ली-110006.
शोरूम: 10-B, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002.
ब्रांच आफिस: 22-2, मिशन रोड (शामा राव कम्पाउंड), बंगलौर-560027

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या?

'पराग ज्ञान कोश'!

एक ही पत्रिका में मनोरंजन और ज्ञानवर्धन भी! अरे वाह!

हां...हां...हॉकर से कह दो— पराग हर महीने जरूर देकर जाए.

पराग

बच्चों का सच्चा साथी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar